गुरु काव्य-चिंतन

डॉ० जयभगवान गोयल

मध्ययुगीन साहित्य के मूर्धन्य चिंतक एवं सिक्ख साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ० जयभगवान गोयल की अपनी निजी समीक्षा-दृष्टि है, जिसमें उदात्त मानवतावादी एवं सांस्कृतिक मूल्य चेतना के साथ परिष्कृत सौन्दर्य-बोध का सन्तुलित सामंजस्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में उन्होंने इसी दृष्टि से गुरु नानक देव, गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर व गुरु गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का निष्ठा व तटस्थता से अनुशीलन किया है।

आध्यात्मिक आनन्दानुभूति से युक्त गुरुओं की वाणी में जहाँ मानवीय चेतना को पार्थिव धरातल से ऊपर उठाकर ऊर्ध्वगामी बनाने की अपार शक्ति है, वहीं दशमगुरु के काव्य में अध्यात्म एवं वीरता का; भक्ति एवं शक्ति का अद्‌भुत समन्वय है; जो असत्य, अधर्म, अन्याय, अत्याचार, अनाचार, आसुरी शक्तियों एवं दुष्टों के विनाश तथा सत्य, धर्म, न्याय, सदाचार व शुभ-कर्मों की प्रतिपालना एवं संतों की रक्षा के लिए प्रेरित करता है। इन सभी प्रवृत्तियों का डॉ० गोयल ने विद्वत्तापूर्वक उद्‌घाटन एवं प्रतिपादत किया है।

गुरुओं की वाणी के कलात्मक-वैभव को प्रकट करने के लिए उनके अप्रस्तुत विधान, बिम्ब-योजना व छन्द-प्रयोग जैसे अछूते पक्षों के सौन्दर्य का भी बड़ी योग्यता से निरूपण किया गया है।

वस्तुतः, गुरुओं की वाणी के विविध पक्षों, आयामों एवं विशिष्टताओं की इतनी विशद, सूक्ष्म, गम्भीर एवं मौलिक मीमांसा अन्यत्र दुर्लभ है।

—प्रकाशक

"सतिगुरुओं की वाणी दैवीज्ञान एवं अन्तर्प्रज्ञाप्रसूत वाणी है। उसे सामान्य कविता की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। हमने अपनी समझ और अपनी उपयोगिता के लिए ही कविता के विभिन्न प्रतिमानों से उसकी मीमांसा की है।"

—लेखक

मध्य
साहि
अपन
मानव
परि

प्रस्तुत
देव, गु
के व्या
अनुशी

आध्या
वाणी
ऊपर
वहीं द
भक्ति
अधर्म,
एवं दुष्
व शुभ-
लिए प्रे
गोयल
है ।

गुरुओं
करने के
छन्द-प्र
योग्यता

वस्तुतः,
आयामों
गम्भीर

"सतिगु
वाणी है
जा सक
के लिए
मीमांसा

गुरु काव्य-चिंतन

डॉ० जयभगवान गोयल
यू० जी० सी० एमरेटस फैलो
पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
पूर्व-अध्यक्ष, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड

आत्माराम एण्ड संस
दिल्ली लखनऊ

मछ
सां
अप
मान
परि

प्रस्तु
देव,
के व्य
अनुश
आछय
वाणी
ऊपर
वहीं
भक्ति
अधर्म
एवं दु
व शु
लिए
गोयल
है।

गुरुओ
करने
छन्द-
योग्य

वस्तुत
आया
गम्भी

"सति
वाणी
जा स
के लि
मीमां

GURU KAVYA CHINTAN
by Dr. JAI BHAGWAN GOYAL

प्रकाशक : आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

शाखा : 17, अशोक मार्ग, लखनऊ

सर्वाधिकार : आत्माराम एण्ड संस

प्रथम संस्करण : 1995

ISBN 81-7043-278-2

मूल्य : 150.00

मुद्रक : प्रेम प्रिंटर्स द्वारा गौतम आर्ट प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रिय

पुष्पा

(धर्मपत्नी)

संजय

एवं

अजय

(पुत्र)

ऋचा

(पुत्री)

वंदना

एवं

तान्या

(पुत्रवधू)

अभिजीत

अर्चित

एवं

अधिराज

(पौत्र)

को

सस्नेह

विषयक्रम

१. क्रांतदर्शी गुरु नानक देव : नवीन युग-चेतना के अग्रदूत ७-४६

(क) गुरु नानक देव : व्यक्तित्व एवं कृतित्व—७; (ख) गुरु नानक की सूफियों से गोष्ठी—१७; (ग) गुरु नानक और कबीर की समकालीनता और सम्बन्ध—२०; (घ) गुरु नानक; एक नैसर्गिक कवि—२७; (ङ) गुरु नानक के काव्य में संगीतात्मकता—३१; (च) काव्य रूप—३२; (छ) गुरु नानक के काव्य में अलंकार, प्रतीक एवं बिम्ब—३३; (ज) गुरु नानक के काव्य में अप्रस्तुत-विधान—३५

२. सिक्खमत के प्रमुख स्तम्भ : गुरु अर्जुनदेव ४७-८५

(क) गुरु अर्जुनदेव का व्यक्तित्व एवं सिक्खमत को दृढ़ करने में उनका योगदान—४७; (ख) 'आदिग्रंथ' का सम्पादन—४९; (ग) कृतित्व—५२; (घ) अध्यात्म चिंतन—ब्रह्म का स्वरूप—५४, जीव—५९, मानववाद बनाम मानवतावाद—६५, सृष्टि-जगत—६७, शरीर एवं सांसारिक वैभव आदि—६८, माया—६९, कर्मफल एवं आवागमन—७१, हउमै—अहंकार—७२; हुकम—७३; गुरु—७४, सत्संग—७५, साधना मार्ग—७६, नाम-स्मरण ७९, योग व अन्य साधनाएँ एवं भक्ति-भावना का स्वरूप—८१; (ङ) सामाजिक एवं व्यावहारिक जीवन-दर्शन—८४

३. नवें गुरु श्री तेगबहादुर : वैराग्य और वीरता की प्रतिमूर्ति ८६-११५

(क) जीवन-वृत्त एवं व्यक्तित्व—८६; (ख) बलिदान की विशिष्टता—८७; (ग) गुरु तेगबहादुर की वाणी—९१; (घ) आध्यात्मिक विचार—९२; (ङ) वैराग्य भावना—९४; (च) गुरु तेगबहादुर की वाणी में बिम्ब प्रयोग—१०५; (छ) काव्यभाषा एवं काव्य-चेतना-११४

४. संत-योद्धा गुरु गोविन्द सिंह : एक तेजस्वी व्यक्तित्व ११६—२०४

(क) व्यक्तित्व—११६; (ख) काव्य-संसार—१२५; (ग) आध्यात्मिक विचार—१२५; —ब्रह्म का स्वरूप—१२६; अवतारवाद—१३०; 'जापु साहब' में ब्रह्म का स्वरूप—१३४, मानवतावाद-आत्मा का स्वरूप—१४१, पुनर्जन्म एवं आवागमन—१४२, सृष्टि-रचना—१४२, माया—१४३, साधना-पद्धति—१४३; जगत, ऐश्वर्य, अहंकार आदि—१४६ (घ) दशम गुरु की वीर भावना—१५१; (ङ) ऐतिहासिक वीर काव्य—'विचित्र नाटक'—१५३; (च) पौराणिक वीर-काव्य—१६०;—'रामावतार' : एक विशुद्ध वीर काव्य—१६१; 'कृष्णावतार'-युद्ध-प्रबन्ध—१६७; अन्य अवतार कथाएँ—१८३, गुरु गोबिन्द सिंह की शक्ति-साधना के प्रतीक—'चण्डीचरित-उक्ति-बिलास', एवं 'चण्डी चरित द्वितीय'—१८४, 'शस्त्रनाममाला', निष्कर्ष—(छ) दशमग्रंथ का छन्दशास्त्र—

नामानुक्रमणिका २०५

ग्रंथानुक्रमणिका २०८

१.

क्रांतदर्शी गुरु नानक देव : नवीन युग-चेतना के अग्रदूत

विलक्षण व्यक्तित्व

गुरु नानकदेव एक विलक्षण व्यक्तित्व के धनी महापुरुष थे। वे एक महान संत, निष्ठावान साधक, क्रान्तिदर्शी समाज-सुधारक, प्रगतिशील धर्म-प्रवर्त्तक तथा मानवतावादी चिंतक थे। आज भी उनका सन्देश उतना ही संगत और सार्थक है जितना तब था। उनके व्यक्तित्व और विचारधारा के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा जा चुका है, बहुत कुछ कहा जा चुका है, इसलिए कुछ भी ऐसा नया नहीं है, जो मैं कहना या लिखना चाहता हूँ। इतना अवश्य है कि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर हम अपनी-अपनी आस्थाओं, अपने-अपने परिवेश और चिन्तन के संदर्भ में पुनः-पुनः विचार करते हैं और उनसे नयी-नयी प्रेरणा और शक्ति, आस्था और विश्वास प्राप्त करते हैं। आज जिस द्वन्द्व और तनाव की स्थिति से हम गुजर रहे हैं, उसके निराकरण के लिए उनके चरित्र की महत्ता हमारे लिए और भी अधिक उपयोगी हो गयी है।

प्रत्येक महापुरुष का मूल्यांकन उसके युग के संदर्भ में करना ही अधिक समीचीन होता है। आज यद्यपि युग बदल गया है, परिस्थितियाँ और परिवेश बदल गया है, आस्थाएँ और विश्वास बदल गये हैं, दृष्टि और दिशा बदल गयी है, फिर भी आज के प्रसंग में भी उनकी प्रेरणा अति प्रासंगिक है—शायद और भी ज़्यादा। आज जिस अनास्था और अविश्वास, भौतिकता और स्वार्थ, चरित्रहीनता और चरित्रहनन, असामाजिकता और असमानता, मिथ्यात्व और अहंकार, भ्रष्टाचार और बेईमानी, मूल्यहीनता और छोटेपन के दौर से हम गुजर रहे हैं, गुरु नानक का जीवन और सन्देश हमें नया आलोक प्रदान करके हमारा समुचित मार्गदर्शन कर सकता है।

इतिहास के अनुसार गुरुनानक का जन्म अप्रैल के महीने में हुआ था। किन्तु, सिक्ख-परम्परा में उनका जन्म शरद् पूर्णिमा को माना जाता है। गुरु नानक के

जीवन पर आधारित अधिकांश जन्म-साखियों और महाकाव्यों में भी शरद्-पूर्णिमा ही उनकी जन्म-तिथि स्वीकार की गयी है। सम्भवतः, यह कल्पना उनके चारित्रिक गुणों को ध्यान में रखकर की गयी है, क्योंकि उनकी अक्षय कीर्ति चारों ओर ज्योत्स्ना-सी फैलती गई थी। उनकी इस कीर्ति का वर्णन भाई संतोखसिंह ने 'गुरु नानक प्रकाश' में इस प्रकार किया है :

श्री गुरु नानक कीरति रानी की सेज सुहाई आकास नहीं।
छाई नीलाम्बर सो नहिं स्यामता पास पिटारी न चंद तेही।

ता मध पाई म्रिगमद दीसत है न कलंक निसंक लही।
है कलका मलका की बिखेरी उड्गन पाति न जानी सही।

अर्थात्, यह जो सुन्दर, निर्मल आकाश दिखाई पड़ रहा है, यह आकाश नहीं है वरन् उनकी कीर्ति रानी की सुहावनी सेज है। वहाँ जो श्यामता दिखाई पड़ती है वह वास्तव में सेज पर बिछा नीलाम्बर है और चन्द्रमा उसके निकट रखी श्रृंगार की पिटारी है। चन्द्रमा में जो कलंक दिखाई पड़ रहा है वह वास्तव में उस पिटारी में रखी हुई सुगन्धित कस्तूरी है और चारों ओर बिखरे हुए जो तारागण हैं, वे उस सेज पर बिखरी हुई मल्लिका की कलियाँ हैं।

भाई गुरुदास ने गुरुनानक के यश का वर्णन करते हुए कहा है—

"सतगुरु नानक प्रगटिआ मिटी धुन्ध जग चानन होइआ—"

धुन्ध का समय भी प्रभात का होता है, जिसके निराकरण का कार्य प्रभात के बालसूर्य को करना होता है। उसकी किरणें भी चन्द्रमा-सी कोमल और उज्ज्वल होती हैं, यद्यपि उनमें उष्मा और प्रकाश होता है, लेकिन प्रचण्डता और प्रखरता तो उसमें भी नहीं होती।

गुरु नानक के पश्चात् उनके जीवन पर आधारित कई साखियाँ और महाकाव्य लिए गये, जिनमें 'गुरुनानक विजय', 'गुरुनानक प्रकाश' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने जहाँ एक ओर गुरुनानक का चरित्रांकन करते हुए उनके युग के संदर्भ में उनकी महानता का निरूपण किया है, वहाँ उन्होंने अपने युग के संदर्भ में भी इनकी चिंतनधारा का मूल्यांकन करते हुए, अपने युग की आवश्यकताओं के अनुरूप उन्हें एक नई अर्थवत्ता प्रदान की है। निश्चय ही, आज हम अपने युग की आवश्यकताओं, चुनौतियों और माँगों के अनुरूप उनसे नई प्रेरणा और दिशा प्राप्त कर सकते हैं।

धार्मिक एवं सामाजिक नव-चेतना का प्रवर्त्तन

यवनों के आक्रमण, धार्मिक कट्टरता और अत्याचारों से भारतीय जनता अत्यधिक त्रस्त एवं पीड़ित थी। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन एक संत कवि अनतदास ने इस स्थिति का यथार्थ वर्णन इस प्रकार किया है—

असुर राज चहुँ दिसि अँधियारा, आतंकि भरे लोगनि हैहैकारा।
दिवालै खंडी मसीत उसारहिं, निगमागम फांटि समुद तिराहीं।
चढ़ि-चढ़ि मारहि गाँव नरेसू, तिनके डरि उजड़ भयो देसू।
ऐसा दंद भयौ चहु देसा।...

गुरु नानक मध्ययुग के पहले और सम्भवत: अकेले धर्म-प्रवर्त्तक थे, जिन्होंने उस युग के राजनीतिक आतंक, अत्याचार, हिंसा और दमन के प्रति अपना असंतोष व्यक्त किया था। बाबर द्वारा ऐमनाबाद पर आक्रमण के अवसर पर जो हिंसा और अत्याचार हुए उनका लोमहर्षक वर्णन गुरुनानक ने किया और उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त की। गुरु नानक ने कहा था कि, "यदि शक्तिशाली शक्तिशाली से संघर्ष करता है तो बात कुछ समझ आती हैं, लेकिन अगर शक्तिशाली निरीह और असहाय व्यक्तियों का वध करे तो यह कोई न्याय नहीं है।" लोगों के दुख-दर्द से पीड़ित होकर वे ईश्वर को भी उलाहना देते हैं कि इतनी मार पड़ने पर भी उस प्रभु के मन में करुणा क्यों नहीं उमड़ी ?[1] इस युग के निर्दयी और नृशंस शासकों की तुलना सिंह, कुत्तों और कसाइयों से करते हुए वे उन शासकों के क्रूर कृत्यों की ओर संकेत करके उनके प्रति अपनी घृणा ही व्यक्त करते दिखाई पड़ते हैं।"[2]

सामान्यत: उस युग की जनता शासकों के इन अत्याचारों के प्रति अपने को सर्वथा असहाय समझती थी और इसीलिए उदासीन भी थी कि कोई भी राजा हो उन्हें क्या अन्तर पड़ता है, क्योंकि उन्हें तो अन्तत: गुलाम ही रहना है। गोस्वामी तुलसीदास ने मंथरा के माध्यम से उस युग की पराजित, नि:सहाय, दीनहीन जनता की इस मनोवृत्ति को इस रूप में प्रकट किया था—

"कोउ नृप होउ हमहि का हानी।...
चेरी छाडि होउ कि रानी।"

(रामचरितमानस : अ० काण्ड १६/३)

---

१. जे सकता सकते कउ मारे ता मनि कोसु न होई।१। रहाउ।
सकता सोहु मारे पै लगै खसम सा पुरसाई।
खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुस्तान डराइआ।
आपै दोसु न देई करता जगु करि मुगल चढाइआ।
एती मार पई कुरलाणै तै कि दरदु न आइआ।
करता तू सभना का सोई—(आसा महला-१)

२. (i) राजै सिंह मुकद्दम कुत्ते, जाइ जगाइन बैठे सुत्ते।
चाकर नहंदा पाईनह घाउ, रतु पितु कुति हो चटि जाहु।
× × ×
(ii) कलि काती राजे कसाइ।

भाई संतोख सिंह ने भी 'गुरु नानक प्रकाश' में लोगों की इस पराजित मनोवृत्ति का चित्रण मार्मिकता से किया है। गुरु नानक को जब मुसलमान बनाने के लिए सुलतानपुर की मस्जिद में ले जाया गया, उस समय वहाँ की जनता केवल इतना ही कह सकती थी—

"हिन्दू कोई न कहि सके, तुरकन तेज बिसाल।
परमेसर ही पत राखई सिमरहु दीन दयाल॥"

('गुरु नानक प्रकाश')

इससे भी यह पता चलता है कि इस युग की हिन्दू जनता में शासकों के अत्याचारों के विरोध में कुछ भी कहने अथवा कर पाने की शक्ति अथवा सामर्थ्य नहीं था। गुरु नानक उनकी इस मनःस्थिति और युग की उस व्यवस्था से अपरिचित नहीं थे और इसीलिए उन्होंने नई राजनैतिक चेतना जगाने का भरसक प्रयास किया। वे एक युग प्रवर्त्तक लोकनायक थे और राजनीतिक व्यवस्था के प्रति भी उसी प्रकार जागरूक थे, जैसे कि इस युग की धार्मिक और सामाजिक विसंगतियों के प्रति। उन्होंने अन्यायी और अत्याचारी शासकों का विरोध ही नहीं किया, वरन् यह भी स्पष्ट किया कि अच्छा सुलतान अथवा राजा कैसा होना चाहिए।

ब्रह्म की परिकल्पना में उन्होंने उसे 'निरभउ' और 'निरवैर' भी कहा है;[3] और मनुष्य को भी वह उसी ब्रह्म का रूप मानते है।[4] इससे यह संकेत मिलता है कि जब वह परब्रह्म 'निर्भय' और 'निरवैर' है, तो मनुष्य को भी उसी प्रकार 'निर्भय' और 'निरवैर' होना चाहिए। यह एक ऐसी विलक्षण अवधारणा है जिसके माध्यम से गुरु नानक युग की राजनीतिक-चेतना को एक नई दिशा देते प्रतीत होते हैं। इसी चेतना को आगे बढ़ाते हुए गुरुतेग बहादुर ने कहा था—

"भय काहू कउ देति नहि, नहि भै मानत आनि।
कहु नानक सुनि रे मना, गिआनी ताहि बखानि॥"

गुरु गोविन्द सिंह ने तीव्र राजनीतिक संघर्ष और विद्रोह के रूप में इस चेतना को अभिव्यक्ति दी थी और अन्याय और अधर्म के विरुद्ध **'धर्म-युद्ध'** का आवाह्न करते हुए घोषणा की थी—

"दसम कथा भागौत की भाखा करि बनाइ।
अवरू बासना नाहि प्रभु, **धरम जुद्ध को चाइ**॥"

(कृष्णावतार—२४९१)

---

३. १ओंकार सतिनामु करता पुरख अकाल मूरति अजूनी
निरभउ निरवैर सैभं गुरु प्रसादि।

४. ईश्वर अल्लाह नूर उपाइआ कुदरत के सब बंदे॥

निश्चय ही, यवन शासकों के अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध राजनीतिक-चेतना जगाने का जो महत्त्वपूर्ण कार्य गुरु नानक ने किया था, वह उनकी राष्ट्रीयता और मानवतावादी प्रवृत्ति का परिचायक है।

सामाजिक क्षेत्र में भी गुरु नानक सभी वर्गों की एकता, समानता और सामाजिक-न्याय के समर्थक थे। उस युग के सामाजिक जीवन में वर्ण और वर्ग भेद की इतनी विषमता थी कि सामाजिक समानता और एकता की कल्पना करना भी कठिन था।

गुरु नानक उन व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने सामाजिक अन्याय, असमानता और शोषण के विरुद्ध असन्तोष प्रकट करते हुए इसका विरोध किया और यह घोषणा की—"जो नीचों से भी अधिक नीच है नानक तो उनके साथ है। बड़े वर्ग के लोगों से उनका क्या वास्ता"—

"नीचां अन्दर नीच जाति नीचहू अति नीच।
नानक तिनके संग साथ, वड़ियाँ सिउ क्या रीस॥"

कबीर उनके समकालीन थे और उन्होंने भी सामाजिक असमानता के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की थी और कहा था कि "हाथी जैसा बड़ा जीव और चींटी जैसा छोटा जीव भी उसी प्रभु का रूप हैं। तब छोटे बड़े का भेद कैसा।"[५]

इसीलिए भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने सभी वर्गों के व्यक्तियों को समान रूप से अधिकार देते हुए कहा था, कि—

"जाति-पाँति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि को होई॥"

गुरु नानक की धारणा थी कि सामाजिक-विषमता के होते हुए सामाजिक-एकता की कल्पना सम्भव नहीं है। इसीलिए उन्हें संसार के सभी लोग अपने दिखाई पड़ते थे, कोई भी 'बाहरी-जीव' प्रतीत नहीं होता था।

"सभै साँझीवाल सदाहण कोई न दीसै बाहरा जीव।"

सामाजिक क्षेत्र में सामाजिक-विषमता, वर्ण-व्यवस्था तक ही सीमित नहीं थी, वरन् आर्थिक स्तर पर भी शोषण की प्रक्रिया विद्यमान थी, जिससे दो वर्गों के बीच की खाईं बढ़ती जा रही थी। एक ओर वह शोषक और संभ्रांत वर्ग था जो जीवन की सभी सुविधाओं और सम्पदाओं का उपभोग कर रहा था; दूसरी ओर वह दीन-हीन कृषक और मज़दूर वर्ग था जो दूसरे वर्ग के शोषण का शिकार था। गुरु नानक ने शोषण की इस पद्धति के विरुद्ध आवाज उठाई और भाई भागो और

५. "सांई के सब जीव है कीरी कुंजर दोए॥"

लालो के प्रसंग से यह सिद्ध किया कि वह उच्च वर्ग के उन व्यक्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते जो दूसरे का शोषण करते हों। अमीर वर्ग की दी हुई रोटियों को जब वह निचोड़ते हैं तो उनमें से खून टपकता है और जब गरीब आदमी की श्रम अर्जित सूखी रोटियों को निचोड़ते हैं तो उनमें से दूध निकलता है। इसी को दृष्टांत रूप में लेकर वह कहते हैं कि "यदि एक वस्त्र को खून का छोटा-सा धब्बा भी लग जाता है तो वह अपवित्र हो जाता है। उस मनुष्य की क्या गति होगी जो हमेशा दूसरों का खून चूसते है।"[६]

इस नृशंसतापूर्ण शोषण के प्रति घृणा उत्पन्न करते हुए वह पुनः कहते हैं—

"हक पराइआ नानका उसु सुअर उसु गाई।"

अर्थात्, दूसरों के हक को छीनना हिन्दुओं के लिए गाय के मांस खाने के बराबर है और मुसलमानों के लिए सूअर का मांस खाने के बराबर। कहना न होगा कि आर्थिक स्तर पर इस प्रकार का प्रगतिशील-चिंतन आधुनिक बोध का संकेत देता है। आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व गुरु नानकदेव ने शोषण के विरुद्ध मजबूती से और निर्भयता से अपनी आवाज उठाई थी।

गुरु नानक के समय देश की धार्मिक अवस्था बड़ी शोचनीय थी। अनेक प्रकार की पाखंडपूर्ण साधनाएँ तथा आडम्बरयुक्त कर्म-काण्ड प्रचलित थे, जिससे धर्म का वास्तविक रूप लुप्त हो गया था। इसीलिए गुरुनानक ने कहा था कि "धर्म पंख लगाकर उड़ गया है, झूठ की अमावस चारों ओर छाई हुई है, जिससे सत्य का चन्द्रमा कहीं दिखाई नहीं पड़ता—

"कलि काली राजे कसाई, धरमु पंख कर उडरिआ।
कूडु अमावस सचु चन्द्रमा दीसै नाहीं कहि चड़िआ॥"

उस युग में प्रचलित विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, मतों आदि की साधना-पद्धतियों के मिथ्यात्व और निरर्थकता पर आक्षेप करते हुए गुरु नानक ने उन्हें सत्य मार्ग दिखाने की चेष्टा की है। धार्मिक ग्रन्थ पढ़कर, संध्या करके, मूर्तियों की पूजा करके, समाधि लगाकर, गले में माला डालकर और मस्तिष्क पर तिलक लगाकर अपने को पंडित कहने वालों को समझाते हुए उन्होंने कहा था कि यह सब फोकट

---

६. जे रतु लगै कपडा जामा होइ पलीतु।
जे रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु।
(राग माझ)

कर्म है।[७]

गुरु नानक के अनुसार ब्रह्म को जानने वाला ही आदर्श ब्राह्मण है। वह स्वयं भी भवसागर से पार उतरता है और औरों को भी पार उतारता है—

"सो ब्राह्मणु जो ब्रह्मु बीचारै।
आपि तरै सगलै कुल तारै॥"

(राग धनासरी म० १ : स ७)

हरिद्वार में गंगा जल से पितरों को अर्घ्य देने वाले व्यक्तियों की निंदा करते हुए उन्होंने कहा था कि यदि यहाँ से तुम्हारे पितरों को जल पहुँच सकता है तो मेरी खेती को क्यों नहीं। उन्होंने इस बात का भी खंडन किया कि ईश्वर केवल पूर्व की ओर मुख करके प्रार्थना करने से मिलता है, या पश्चिम की ओर बैठकर नमाज़ पढ़ने से। मक्का के काज़ियों और मुल्लाओं को वह यह दिखा देते हैं कि काबा उधर ही घूमता जाता है, जिधर वह पाँव करते हैं। जिससे उन्हें यह सन्देश मिलता है कि खुदा केवल पश्चिम में ही नहीं है। वह तो सब दिशाओं में हैं। वह सब जगह, घट-घट में निवास करता है। वह उन्हें बताते हैं कि मेहर ही **'मस्जिद'** है, सिदक ही **'मुस्लिम'** है, शील ही **'रोजा'** है। अच्छा कर्म ही **'काबा'** हैं, सत्य पीर है और भला करना ही **'कर्म'** है। इन सबको ग्रहण करके ही एक **'अच्छा मुसलमान'** बना जा सकता है।

"मिहर मसीति सिदुक मुसला हकु हलालु कुराणु।
सरम सुनति सीलु रोजा होहु मुसलमानु।" (माझ की वार-२०)

इस युग में नाथ-योगियों का बड़ा प्रभुत्व था, जो शरीर में भस्म लगाकर, कानों को कटवाकर, किंथा धारण कर, हाथ में डंडा लेकर अलख जगाते हुए लोगों

---

७. पंडि पुस्तक संधिआ वादं।
सिल पूजसि बगुल समाधं।
मुखि झूठ विभूखण सारं।
गलि माला तिलक लिलाटं।
दुई धोती बसत्र कपाटं।
जे जाणसि ब्रह्म करमं।
सभि फोकट निसचे करमं (आसा की वार)
इस सम्बन्ध में कबीर तथा पलटू का कथन है—
(१) पढि-पढि पोथी जग मुआ, पंडित भया न कोई।
(कबीर)
(२) पढ़ि-पढ़ि क्या तुम कीना। पंडित अपना रूप न चीन्हा।
(पलटू)

को चमत्कृत कर रहे थे। नानक की नाथों और सिद्धों से अनेक बार गोष्ठियाँ हुईं। उन्होंने इन्हें बताया था कि योग बाह्य चिह्नों को धारण करने में नहींहै वरन् जो समान दृष्टि से सबको देखता है, आदर्श योगी वही है।

"एक दृष्टि करि समसरि जानै जोगी कहीए सोई (१)

योगी के वास्तविक रूप को स्पष्ट करते हुए उन्होंने समझाया था कि **सन्तोष** की **मुन्दा**', **'शरम-पत** की **'झोली'**, ध्यान की **'विभूति'**, **पवित्र शरीर** की **किंथा** और **योग-युक्ति** का **'डंडा'** धारण करना चाहिए और मन को जीतने से ही जग को जीता जा सकता है।

जोगु न खिंथा जोगु न डंडे जोग न भसम चडाइऐ।
जोगु न मुंदी मुंडि मुडाइए जोगु न सिंगी गाईए।
अंजन माहि निरंजनि रहीए जोग जुगति इव पाइऐ।
गली जोगु न होई।
मुंदा संतोख सरम गति झोली। धिआन की करहि विभूति।
खिंथा काल कुआरी काइआ, **जुगति डंडा** परतीति।
आई पंथी सगल जमाती **मन जीते जगु जीते**।

जगन्नाथ जी की आरती करने वाले लोगों से उन्होंने कहा था कि सच्चे भक्त के लिए आकाश आरती का थाल है, सूर्य चन्द्र दीपक, तारे मोती, मलय चंदन की सुगंध धूप, वायु चंवर तथा वन के सभी पुष्प फूल हैं—

"गगन में थालु रवि चन्द्र दीपक बने,
तारिका मंडल जनक मोती,
धूपु मलआनलो पवणु चंवरै करे,
सगल बनराई फूलत जोती।
कैसे आरती होई भवखंडना तेरी आरती
अनहदा सबद बाजंत भोरी (धनासरी सबद ९ महला १)"

उन्होंने साधुओं के एक आश्रम में देखा था कि कोई समाधि लगाकर बैठा हुआ है, कोई एक टाँग पर खड़ा है और कोई वृक्षों पर लटका हुआ है, कोई जल में खड़ा है तो कोई पञ्चाग्नि सेवन कर रहा है। नानक ने इन सब प्रकार की साधना-पद्धतियों के स्थान पर **'संत-सेवा'** और **'नाम-स्मरण'** करने को ही सच्ची साधना माना है। जनेउ धारण करने के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि सत्य, संतोष, संयम, दया, क्षमा आदि के धागों से बने हुए जनेउ को धारण करने में ही उसकी सार्थकता है।[८]

---

८. दइआ कपाह संतोख सूतू जतु गढी सतु वटु।
एहु जनेऊ का हइ त पांडे धतु।
ना एहु तूटै ना मलु लगै न एहु जलै न जाइ।
धनु सु माणस नानका जो गलि चले पाई।
(आसा दी वार)

वस्तुतः, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में जो भी विसंगतियाँ अथवा विद्रूपताएँ थीं, उनका परिष्कार करने का उन्होंने भरसक प्रयास किया। लेकिन, यहाँ उल्लेखनीय है कि पाखंडी धर्म-साधकों के प्रति उनमें असंतोष तो है, आक्रोश नहीं; विरोध है, विद्रोह नहीं; निषेध है, कटुता नहीं। वे प्रभात के सूर्य अथवा शीतल चन्द्रमा की कोमल किरणों से अन्धकार को हटाते प्रतीत होते हैं; दोपहरी के प्रचण्ड सूर्य की प्रखरता से नहीं।

'अहंकार' को त्यागने पर उन्होंने विशेष बल दिया है। गुरु नानक ने 'अहंकार' के विविध रूपों का बड़ी विशदता से वर्णन किया है। उनके अनुसार किसी को अपनी शक्ति का अहंकार है, किसी को अपने धन का अहंकार है, तो किसी को अपने कुल का। किसी को अपनी सुन्दरता का अहंकार है, तो किसी को अपने ज्ञान अथवा यश का। गुरु नानक ने इन सभी प्रकार के 'हऊमै' को त्यागने का आग्रह किया है और उसको त्यागने का सबसे बड़ा साधन है—सत्संगति, सेवा और नाम-स्मरण।

वस्तुतः, हिन्दू धर्म में व्याप्त विसंगतियों का निराकरण एवं परिष्कार करके हिन्दू धर्म की जिस रूप में गुरु नानक ने रक्षा की, उससे कोई भी उऋण नहीं हो सकता। यह उनका हिन्दू धर्म पर एक महान उपकार था। हिन्दू धर्म के प्रति उनके इस उपकार को स्वीकार करते हुए भाई संतोख सिंह 'गुरु नानक प्रकाश' व 'वाल्मीकि रामायण-भाषा' में लिखते हैं—

(क) जे जग में तन हिन्दू अहै सभि पै उपकार बिसाल कर्यो।
मानहि जे न अघी नहीं को सम जाइ निरैपद बीच पर्यो।
(नानक प्रकाश)

(ख) हिन्दू जनम हुई जौन उपकार न लखि भजै।
अधम कृतघन कौन तिस ते परे बिचारिए।
(वा० रामायण भाषा सर्ग-१)

निःसन्देह, हिन्दू होकर भी गुरु नानक का उपकार न मानने वाले से बड़ा कृतघ्न और कौन हो सकता है।

गुरु नानक ने सिद्धों, नाथों, योगियों, सूफियों और मुसलमानों के धर्म में व्याप्त विसंगतियों का भी परिष्कार करने का प्रयास किया और उन्हें समझाया कि **'सच्चा धर्म'** क्या है। वस्तुतः, गुरु नानक किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय के विरोधी नहीं थे। वे तो हर व्यक्ति को उसके **'सही धर्म'** का स्वरूप बताना चाहते थे। यदि कोई हिन्दू है तो **'अच्छा हिन्दू'** कैसे बना जा सकता है। कोई मुसलमान है तो **'अच्छा मुसलमान'** कैसे बन सकता है। सूफी एक **'अच्छा सूफी'** कैसे हो सकता है और योगी एक **'अच्छा योगी'** कैसे बन सकता है। गुरु नानक ने धर्म का मानवीय मनोवृत्तियों और आचरण से सम्बन्ध स्थापित किया और धर्म को जीवन के व्यापक

परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया। मानवीय मनोवृत्तियों का परिष्कार उनका मुख्य लक्ष्य था। अपनी मानसिक कुवृत्तियों के कारण ही मनुष्य अधर्मी, पापी, क्रूर, अत्याचारी और अन्यायी बनता है। इसलिए इन कुवृत्तियों की निन्दा करते हुए नानक कहते हैं—

"लबु कुत्ता कुडू चूहडा ठगि खाधा मुरदार।
पर-निंदा परमलु मुख सुधी अगनि क्रोध चंडाल॥

लोभ कुत्ते के समान है, **असत्य** 'चूहडे' के समान है, **ठगि** करना मुर्दा खाने के समान है, **परनिन्दा** दूसरों का मल खाने के समान है, और **क्रोध** चांडाल के समान है। वस्तुतः, गुरु नानक मनुष्य की भीतर के आत्मा को जगाकर उसके निजी सत्य का उद्‌घाटन करना चाहते थे। उसे अपनेपन का सही साक्षात्कार करवाकर धर्म के आदर्श मार्ग पर चलाना चाहते थे। उनके लिए धर्म का अर्थ है 'आत्म-बोध' और 'आत्म-परिज्ञान'। अनासक्ति, सन्तोष, सत्य, करुणा, दया, सेवा, त्याग और सदाचार उनके लिए धर्म के अभिन्न अंग थे, क्योंकि इन्हीं को धारण करने से नर से नारायण बना जा सकता है। उनका कहना था कि मानव का लक्ष्य मानव-सेवा, मानव-प्रेम और मानव-कल्याण होना चाहिए और यह शुद्ध वैयक्तिक आचरण तथा सामाजिक और व्यावहारिक जीवन में परिष्कार से ही सम्भव हो सकता है। इसीलिए उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि **अच्छा नौकर, अच्छा किसान** या **अच्छा व्यापारी** कैसे बना जा सकता है! उनके अनुसार '**ईश्वर में विश्वास** रख-कर निष्ठा से अपनी काम (नौकरी) करना चाहिए। शरीर रूपी खेत में, मस्तिष्क रूपी '**किसान**' को, **नाम का बीज** डालकर शुभ कर्मों की खेती करनी चाहिए। और **सत्य के घोड़े** पर बैठकर हरि **कथा-श्रवण** का **व्यापार** करना चाहिए।

वस्तुतः, गुरु नानक धर्म के व्यापक पक्ष के संस्थापक थे। वे 'मानव-धर्म' के पोषक थे। उनके लिए जीवन के 'उच्च नैतिक मूल्य' ही धर्म है। उन्होंने मात्र धार्मिक-साधना के रूप में धर्म को नहीं देखा; वरन् सारे सामाजिक संदर्भ में धर्म का प्रसार किया। आदर्शों को व्यावहारिक जीवन में ग्रहण करना और खण्डन की अपेक्षा सही मूल्य की पहचान पर ध्यान देना ही 'धर्म' का वास्तविक आदर्श है। धर्म को जीवन के हर क्षेत्र, हर पहलू और हर आचरण में उन्होंने देखा।

आज युग बदल गया है, लेकिन समस्याएँ आज भी वही हैं, जो पहले थीं। केवल उनका रूप बदल गया है। मनोवृत्ति नहीं बदली। समस्याएँ और भी उग्र हो गई हैं। स्वार्थ, हिंसा, लोभ, ईर्ष्या और अहंकार और अधिक बढ़ गये हैं और उनके स्वरूप में भी विविधता आ गई है। अतः, गुरु नानक के आदर्श आज पहले से भी अधिक सार्थक और उपयोगी हैं। अपने कल्याण के लिए, सामाजिक कल्याण के लिए और मानव के कल्याण के लिए। इसे ही ध्यान में रखते हुए गुरु नानक की भाई संतोखसिंह ने इन शब्दों में वन्दना की है—

तारे अनेक विवेक जहाज दे, खोलि दिये उर मोह कि तारे।
तारे बिसाल पखंडि प्रचंडि जे, आगे अरे तिन मान उतारे।
तारे बिलोचन ते दरसे उबरे सु असंख जथा नभ तारे।
तारे तरे अरू मारे मरे गुर नानक कीनि भए तम तारे।

× × ×

सरवोत्तम जन सरबदा सरबोपरि जसु चार।
जग गुर श्री नानक नमो धरनी पर सिर धारि।
पारब्रह्म करता पुरख श्री नानक अवतार।
दासन ब्रिद अनंद दें तिन पद बंदन धारि।

(गुरु नानक प्रकाश)

गुरु नानक की सूफ़ियों से गोष्ठी

गुरु नानक अपने समय के सबसे बड़े जागरुक लोकनायक, क्रान्तिकारी समाज-सुधारक तथा समन्वयवादी धर्म-प्रचारक थे। बाल्यकाल से ही उनमें संसार से विरक्ति एवं परमात्मा के प्रति आसक्ति का भाव विद्यमान था। भगवद्-भक्ति में अनुरक्त होकर उन्होंने छोटी अवस्था में ही सांसारिक मोहमाया को त्याग कर उदासी-वेश धारण किया और एक सत्यान्वेषी के रूप में धर्म-प्रचार करते हुए देश-विदेश के अनेक स्थानों का भ्रमण किया। उन्होंने ऐसी चार उदासियाँ ग्रहण कीं और इन उदासियों में वे विभिन्न धर्मों एवं मतों के साधकों से मिले और उनसे धर्म-चर्चा की। जिस समय नानक का प्रादुर्भाव हुआ उस समय उत्तर भारत की धार्मिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। अनेक आन्तरिक विरोधों एवं संघर्षों के परिणामस्वरूप हिन्दू धर्म जर्जर हो चुका था और उसमें अनेक बाह्याचारों, मिथ्याडम्बरों एवं पाखंडपूर्ण साधनाओं का प्रचलन था। बौद्ध धर्म भी अनेक शाखाओं-उपशाखाओं में विभक्त होकर विकृत एवं विशृंखलित हो चुका था। सिद्धों एवं नाथों का प्रभाव उस समय भी बना हुआ था और वे अपनी सिद्धियां दिखाकर लोगों को चमत्कृत एवं मोहग्रस्त किए हुए थे। यवन-आक्रमणों के साथ ही इस्लामी प्रभाव भी बढ़ने लगा था और उनके साथ बहुत से सूफ़ी फ़कीर भी भारत आ गए थे। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ७१३ ई० में सूफ़ी साधक मुलतान पहुँच गए थे और कई शताब्दियों तक पंजाब और सिंध सूफ़ियों के केन्द्र बने रहे। यहाँ वेदान्तियों, हठयोगी, गोरखनाथी, हीन-यानी साधकों एवं सिद्धों आदि के साथ भी उनका विचार-विमर्श हुआ। धीरे-धीरे सूफ़ी साधक सारे भारत में फैल गए। सूफ़ी साधक भारतीय साधना से प्रभावित भी थे और उसके प्रति सहिष्णु भी, इसीलिए उनका विशेष विरोध भी नहीं हुआ। मुइनुद्दीन चिश्ती, कुतुबुद्दीन काकी, शेख चिश्ती, निजामुद्दीन औलिया,

बाबा फरीद, अली कलंदर इस युग के प्रमुख सूफ़ी साधक थे और सिंध तथा पंजाब, विशेष रूप से मुलतान, इनके धर्म-प्रचार के प्रमुख केन्द्र थे।

गुरुनानक जब पंजाब, सिंध और बगदाद आदि की यात्रा पर गये तो सूफ़ी साधकों से उनकी भेंट होनी स्वाभाविक ही थीं। उनके साथ उनकी धर्म-चर्चा भी अवश्य हुई होगी।

'गुरु ग्रन्थसाहब' में जिस प्रकार गुरु नानक तथा सिद्धों की गोष्ठी का उल्लेख है वैसा स्पष्ट विवरण तो सूफ़ी-गोष्ठी का नहीं है; किन्तु गुरु नानक से सम्बन्धित जन्म-साखियों एवं प्राचीन काव्य-ग्रन्थों में इस प्रकार का विवरण निश्चय ही उपलब्ध है। इन विवरणों के अनुसार गुरु नानक जी मार्च, १५३० में मुलतान गए थे और वहाँ शम्स तबरेज़ की दरगाह पर अनेक सूफ़ियों से उनका मेल हुआ था। भाई संतोखसिंह ने भी 'गुरु नानक प्रकाश' में इस भेंट का विशद वर्णन किया है। उनके अनुसार शम्स तबरेज़ भी वहाँ मौजूद था। उसके अतिरिक्त वह वहबालहक तथा रुकनदीन भी उपस्थित थे। इस भेंट का विवरण इस प्रकार है कि जब गुरुजी वहाँ पहुँचे तो वहाँ के सभी पीर-फकीर दूध का एक कटोरा लेकर गुरुजी के पास आए। गुरुजी ने उनके आशय को समझते हुए चम्बे की एक कली उसके ऊपर रख दी, जो दूध के ऊपर तैरने लगी। इस तरह उन्होंने इन फ़कीरों को समझाया कि साधना वही श्रेष्ठ है, जिसमें साधक इस कली की तरह संसार से अलिप्त रहकर जीवन व्यतीत करे; उन्होंने इससे यह भी सूचित किया कि अनेक मत-मतान्तरों से भरे इस संसार में उनकी स्थिति भरे हुए दूध के कटोरे में समा जाने वाली और उसके ऊपर तैरने वाली इस कली के सदृश है। भाई संतोखसिंह के अनुसार गुरुनानक ने इन सूफ़ियों के साथ संसार की अनित्यता, माया, तप, मन-निरोध, आत्मज्ञान, नाम-स्मरण, संत-लक्षण, वासना के त्याग, साधु-संगति आदि विषयों पर विचार-विमर्श किया। गुरुजी ने उन सूफ़ी साधकों को, जिन्होंने तप करके अपने शरीर को सुखा दिया था, यह उपदेश दिया कि तप तापने से मन का निरोध नहीं होता, क्योंकि तपकर्त्ता मान और बड़ाई चाहता है, मन-रूपी सांप को वश में करने का मंत्र **'गुरु-शब्द'** है। यह संसार मृग-तृष्णा के जल के समान मिथ्या और असत्य है, संसार के व्यवहार भी स्वतन्त्र है। यह माया-रूप एवं 'रज्जु में सर्पवत्' भ्रमपूर्ण है। गुरुजी ने उन्हें यह उपदेश दिया कि बाहिगुरु का स्मरण करो, साधु-संगति में रहो, तब तुम्हें सुख प्राप्त होंगे। कवि ने यहाँ एक 'हाजर-नामे' का भी उल्लेख किया है जो गुरुजी ने सूफ़ियों को सुनाया था। 'हाजरनामे' के कुछ अंश इस प्रकार हैं :—

"हाजरा कऊ मिहर है; बिहाजरा कऊ विमिहर है, ईमान दोस्त है, बेईमान-काफर है, तकब्बर कहर है, गुस्सा हराम है। नफस शैतान है, गुमान लानती है, पसगबत का मुँह काला है, दियानतदार सुरखरीय है, बेदियानत

सियाहरोय है, अकिरतघण जरदरूप है, बदनीयत नापाक है, मोमदिल पाक है, बेहिरस औलिया है, हिरसमंद फाजरन है, दरोग दोजक है, सच्चु-भिस्तु है, दरद-बंद दरवेश है, बेदरद कसाई है" इत्यादि। यहाँ सूफ़ी साधना के बाह्य रूपों की समीक्षा करते हुए दया, ईमानदारी, विनम्रता; संतोष, सत्य, ध्यान, न्याय आदि का महत्त्व प्रदर्शित किया मया है और ईर्ष्या, क्रोध, अहंकार, असत्य, बेईमानी, क्रूरता, अत्याचार आदि की भर्त्सना की गई है।

नानक-वाणी में कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि बाबा फरीद के कुछ पदों को लेकर सूफ़ी साधकों से गुरु नानक का विचार-विमर्श हुआ था। उदाहरण के लिए फरीद ने एक स्थान पर कहा है कि मैं अपने शरीर को तंदूर की तरह तपाने को तैयार हूँ और हड्डियों को ईंधन की तरह जलाने को तैयार हूँ; यदि तप करते समय मेरे पाँव थक जाएँ तो मैं सिर के बल चलने को तैयार हूं, बशर्ते कि इससे मेरा प्रभु मिलन हो सके। यथा—

तन तपै तनूर ज्यूं, बालण हड्ड वलंण।
पैरी थक्का सिर-जुलाँ, जे मू पिरी मिलंन।

इसका उत्तर देते हुए नानक कहते हैं—

तन न तपाए तनूर जिऊं, बालण हड्ड न बाल।
सिर पैरी किआ फेडिआ, अंदर पिरी निहाल।

अर्थात्—न तो तन को तंदूर के सामने तपाने की आवश्यकता है और न ही हड्डियों को लकड़ियों की तरह जलाने की, उसे सिर और पाँव से चलने की भी आवश्यकता नहीं—अपने प्रियतम को तू अपने ही अन्दर देख।

इसी तरह फरीद ने एक स्थान पर कहा है—यौवन के समय तुमने प्रभु-स्मरण की नौका तैयार नहीं की, वृद्धावस्था में इन्द्रियों के वेग में फँस जाएगा, तब तैरना कठिन होगा। संसार केसू के फूल के समान सुन्दर प्रतीत होता है लेकिन इसे हाथ से छूने से हाथ जल जाता है। यथा—

बेडा बंधि न सक्यो बंधन के बेला,
भर सरवर जब उछलै तब तरन दुहेला,
हाथन लाई कसुभंडे जल जासी ढोला।

गुरु नानक का निम्न शब्द उपर्युक्त पद के संदर्भ में ही कहा गया प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें उक्त पद के प्रश्नों का एक-एक करके उत्तर दिया गया है। नानक का शब्द इस प्रकार है—

जप तप का बंधु बेडुला, जितु लंघहि बहेला।
ना सरवरु ना उछले ऐसा पंथु सुहेला।
तेरा एको नामु मजीठडा रता मेरा चोला,
साजन चले पिआरिया किउ मेला होई।

जे गुण होवहि गंठडी ऐ मेलेगा सोई।

अर्थात्—"हे मनुष्य, जप-तप का बेड़ा बाँध जिससे संसार-सागर को शीघ्रता से पार किया जा सके। नाम के द्वारा रास्ता ऐसा सुखदायी हो जाएगा, जैसे कि सागर का मार्ग होता ही नहीं, और यदि हागा तो उछाल नहीं मारेगा। हे हरि! तेरा एक नाम ही मंजीठी रंग है। हे प्रियतम, उस मंजीठी रंग में मेरा चोला पक्के रंग वाला हो गया है। प्रिय साजन प्यारियों की ओर चल पड़े हैं। किस प्रकार मिलाप होगा? यदि गाँठ में गुण हो तो वह प्रियतम उन्हें अपने में ही मिला लेगा।"

यहाँ गुरु नानक इन्द्रियों को वश में करके प्रभु-प्रेम के महत्त्व का ही प्रतिपादन कर रहे हैं।

कुछ ऐसे संकेत भी मिलते हैं कि बगदाद में भी गुरुजी की सूफ़ी फकीरों से भेंट हुई थी, जिसकी स्मृति अभी भी वहाँ की एक मस्जिद पर फारसी अक्षरों में अंकित है। एक बार गुरु नानक की भेंट सूफ़ी शाह शरफ़ से हुई। उसने गुरुजी से पूछा —तुम्हारी जाति और धर्म क्या है, गुज़र कैसे होती हैं? नानक बोले, "मेरा मत है सत्य-मार्ग, मेरी जाति भी वही है जो अग्नि और वायु की है, जो सबको समान समझती हैं। मैं वृक्ष और नदी की तरह दूसरों के लिए जीना चाहता हूँ; मेरी नज़रमें सब बराबर हैं। सूफ़ियों के गरीबी और पवित्रता के जीवन सें नानक बहुत प्रभावित थे। लेकिन, उनकी वेशभूषा की वास्तविक सार्थकता वह इस रूप में मानते थे कि मन को परब्रह्म के चरणों में अनुरक्त कर देना ही **लाल पोशाक** है, सत्य और दान **सफेद पोशाक** है। हृदय की कालिमा को दूर करना **नीली पोशाक** है। ध्यान बड़ा **जामा** है। संतोष ही **कमरबंद** और नाम धन और **यौवन** हैं —

रता पेनण मन रता सुपेदी सतुदान,
नीली सिआही कदा करणी पहिरणु पैर धिआनु
कमरबंद संतोख का धनु जोबन तेरा नाम।

वस्तुतः, गुरु नानक सहज-सात्विक भगवद्-भक्ति, पवित्र जीवन एवं शुद्धाचरण को 'धर्म' का मुख्य लक्ष्य मानते थे। इसलिए सूफ़ी साधक भी उनसे अत्यधिक प्रभावित हुए थे।

गुरु नानक और कबीर की समकालीनता और सम्बन्ध

मध्ययुगीन भारतीय जीवन को नई दिशा देने वाले संतों में गुरु नानक के साथ कबीर का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

'गुरु ग्रन्थ साहब' एक महान् एवं पवित्र आध्यात्मिक ग्रन्थ है, जिसमें गुरुओं की वाणी के अतिरिक्त रामानन्द, कबीर, रविदास, सैणा, पीपा, धन्ना, नामदेव, त्रिलोचन, जैदेव, बेणी, परमानन्द, सूरदास, सदना, भीखन, मीराबाई आदि १५

भक्तों तथा अनेक सिक्ख-सेवकों एवं भट्टों आदि की वाणी संकलित है।

गुरु नानक तथा कबीर का पारस्परिक सम्बन्ध एक ऐसा ज्वलन्त विषय है जिस पर अनेक विद्वानों ने विचार किया है। 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में कबीर की वाणी को काफी महत्व दिया गया है। इस विषय से सम्बन्धित अनेक पक्षों की मीमांसा अपेक्षित है। मुख्य विषय हैं—

१. कबीर जी कब हुए (उनका समय)
२. गुरु नानक और कबीर की भेंट के प्रमाण
३. गुरु नानक और कबीर के विचारों की समता
४. कबीर पर गुरु नानक का प्रभाव और कबीर पर भाषायी प्रभाव
५. कबीर पर गुरु नानक के प्रभाव के अन्तःसाक्ष्य से प्रमाण
६. कबीर पर गुरुनानक के समदर्शी प्रभाव
७. कबीर जी की पदवी के सम्बन्ध में गुरु वाणी के सन्दर्भ
८. कबीर-पंथियों तथा अन्यों के भ्रामक मत

ज्ञानी गुरुदित ने अपनी पुस्तक 'इतिहास गुरु ग्रन्थ साहब' में इन सभी विषयों की शोधपरक एवं विद्वत्तापूर्ण मीमांसा की है,[९] जो बहुत महत्त्वपूर्ण है।

वस्तुतः, गुरु नानक तथा कबीर भारत के मध्ययुगीन सांस्कृतिक इतिहास की ऐसी विभूतियाँ हैं, जिन्होंने न सिर्फ अपने युग में ही जन-जीवन को नया आलोक, स्फूर्ति एवं दिशा दी, वरन् आज भी वे लोक-चेतना को प्रभावित कर रहे हैं। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन एवं मूल्यांकन अनेक कोणों से बड़ी विशदता एवं गम्भीरता से हुआ है। कबीर तथा गुरु नानक के सम्बन्ध में उनके मतावलम्बियों द्वारा 'साखियों' एवं 'काव्य-रचनाओं' आदि के रूप में जो भी इतिवृत्त चित्रित हुए हैं, हम न तो उन सभी को यथार्थ सत्य मान सकते हैं और न ही उनकी सर्वथा उपेक्षा कर सकते हैं, क्योंकि ऐसे प्रसंग ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही सत्य न हों, तो भी उनसे इनकी लोकप्रियता एवं प्रभाव तो उजागर होता ही है। युग की चुनौतियों का सामना करने का साहस कबीर में भी था और गुरु नानक में भी। कबीर एवं गुरु नानक दोनों का विद्रोह कहीं अधिक व्यापक स्तर पर था, कहीं अधिक साहसपूर्ण और जोखिम-भरा था, कहीं अधिक महनीय था। वे अपने युग की सभी सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक विकृतियों से जूझे थे। वे युग में प्रचलित अनैतिकता, अन्याय, अनास्था और अविश्वास अथवा अन्धविश्वास आदि की चुनौतियों का साहसपूर्वक मुकाबला करके नैतिकता, न्याय, आस्था और विश्वास की स्थापना

---

९. दृष्टव्य : ज्ञानी गुरदित सिंह : इतिहास गुरु ग्रन्थ साहब, पृ० ४६-५४; ८२-९५, ५५-६१, ९६-१११, १२२-१२४; १२५-१२८, १२९-१३४, १३५-१३९, १४०-१६५

करना चाहते थे।

साहित्य-सृजन की प्रक्रिया में रचनाकार की संवेदनाओं, संस्कारों, परिवेश, मान्यताओं आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। कबीर तथा गुरु नानक दोनों के व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों से उनकी काव्य-चेतना के अन्तर को बखूबी समझा जा सकता है।

कबीर के जन्म के सम्बन्ध में सामान्य धारणा यही है कि वे एक विधवा, ब्राह्मणी के उदर से जन्मे थे और नीरू-नीमा नाम के जुलाहा दम्पत्ति ने उनका पालन-पोषण किया था। काशी जैसी 'सभ्य' नगरी में उन्हें आजीवन कुलीन ब्राह्मणों और सम्भवतः कुलीन मुसलमानों से भी किस प्रकार की उपेक्षा, तिरस्कार एवं घृणा का सामना करना पड़ा होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। उसने उनके व्यक्तित्व में यदि कटुता, तीखापन और क्षोभ भर दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। उनके स्वभाव का अक्खड़पन एवं प्रचण्डता तथा उनकी 'विद्रोही मुद्रा' उनके परिवेश से उत्पन्न अनुभवों की ही देन कहे जा सकते हैं।

'जीवन में भोगे हुए' इस कटु यथार्थ से उत्पन्न घृणा, असन्तोष एवं क्षोभ का उदात्तीकृत स्वर ही उनकी वाणी में सामाजिक एवं धार्मिक मिथ्याचारों, पाखण्डों, आडम्बरों, कुरीतियों आदि के खण्डन के रूप में व्यक्त हुआ है। अपने युग की दूषित सामाजिक एवं धार्मिक अवस्था से उन्हें स्वयं दो-चार होना पड़ा था, उन्होंने उसकी यातना और अभिशाप को स्वयं झेला था, इसीलिए उनकी अनुभूति में इतनी प्रामाणिकता है और अभिव्यक्ति इतनी सशक्त, तीक्ष्ण एवं तीव्र है। उनके व्यंग्यात्मक प्रहार इतने निर्मम और कठोर होते थे कि उनसे दूषित संस्थाओं के सत्ताधीश तिलमिला उठते थे।

इसके विपरीत गुरु नानक का जन्म एक कुलीन, प्रतिष्ठित एवं अपेक्षाकृत सम्पन्न परिवार में हुआ था। उनका पालन-पोषण भी स्नेह एवं संतोष के वातावरण में हुआ। पिता की डाँट-फटकार यदि कभी मिलती थी—तो स्नेह और हितभावना से ही। अपने समाज में भी उनकी यथोचित प्रतिष्ठा थी। कहीं भी निरादर, तिरस्कार या असंतोष का कारण नहीं था। गुरु नानक के सम्बन्ध में विविध 'साखियों' या काव्य-रचनाओं (यथा 'गुरु नानक प्रकाश', 'गुरुनानक विजय', 'महिमा-प्रकाश' आदि) में जो भी विवरण मिलते हैं, उनमें आरम्भ से ही उनका एक निर्लेप-अनासक्त, शान्त-विरक्त योगी एवं प्रभु-प्रेमी संत का सा चित्र उभरता है। उनके चरित्र में एक विलक्षण कोमलता, स्निग्धता, स्पृहणीयता, सौम्यता एवं संतोष है। कहीं कोई उद्विग्नता नहीं, कोई आक्रोश या क्षोभ नहीं। किसी भी व्यक्तिगत कारण से न वे दुःखी हैं, न उनको क्लेश है, न क्रोध, न विक्षोभ और न ही विरोध। यदि वे कहीं दुःखी दिखाई देते हैं तो मनुष्य की विश्वव्यापी यातना से, उसकी अभिशप्त नियति से।

यही कारण है कि उनकी वाणी में कहीं भी कबीर की भाँति रूखापन, तीक्ष्णता, कटुता अथवा कठोरता दिखाई नहीं देती। धार्मिक एवं सामाजिक विसंगतियों-विकृतियों की निरर्थकता का निरूपण उन्होंने भी बड़े विस्तार से किया है और उनके निराकरण का भी सशक्त प्रयास किया है, किन्तु ऐसा करते समय वे कहीं भी कबीर जैसी कटुव्यंग्योक्तियों के निर्मम प्रहार नहीं करते। वरन्, अत्यन्त सहज भाव से मिथ्याचारों की निष्फलता एवं निरर्थकता का प्रतिपादन करके सही मार्ग का निर्देश करते हैं। सच्चा योगी कौन है, सच्चा मुल्ला अथवा सूफ़ी कौन है ? सच्ची नमाज़ और आरती क्या होती है ? मस्जिद और मक्का से क्या अभिप्राय है ? गुरु नानक ने इनके सही आध्यात्मिक स्वरूप को समझाने की चेष्टा की है।

उन्होंने जीवन के प्रत्येक आचरण में धर्म के वास्तविक स्वरूप-सत्य—की प्रतिष्ठा कर सभी को उनका सही धर्म बताया है। इस प्रकार गुरु नानक ने खण्डनात्मक प्रवृत्ति की अपेक्षा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सही मूल्य की पहचान करके जीवन के प्रत्येक व्यवहार, कृत्य या आचरण को आध्यात्मिक, नैतिक अथवा मानवीय आधार प्रदान किया और व्यक्ति और समाज के लिए एक प्रकार की आचार-संहिता प्रस्तुत की।

ऐसे स्थलों पर कबीर की वाणी एक तेज़ छुरी हैं जो अन्तर में तीखी उतरती चली जाती है और कई बार घाव को और भी गहरा करने की संभावना रखती है, जबकि नानक की वाणी व्रण पर मरहम लगाकर ही उसे साफ करने की क्षमता रखती है।

गुरु नानक के जीवन पर आधारित कुछ महाकाव्यों में उनका जन्म कार्तिकी पूर्णिमा को माना गया है। निःसन्देह, उनकी वाणी और स्वभाव में शरतपूर्णिमा की सी मनोहारी शीतला और स्निग्धता है। कबीर का जन्म ज्येष्ठ की पूर्णिमा को माना जाता है जो उनके स्वभाव और वाणी की प्रचण्डता एवं कोमलता के समन्वय का परिचायक है।

गुरु नानक और कबीर काफी समय तक समकालीन रहे। कुछ विद्वानों का मत है कि उनकी भेंट भी हुई थी। सरदार गुरदित जी का कहना है कि कबीर गुरु नानक से बहुत प्रभावित हुए थे और 'वैष्णवी' कबीर को निर्गुण का उपासक बनाने का श्रेय भी गुरु नानक को ही है। अतः, इतना तो स्वीकारना ही पड़ेगा कि थे दोनों ही व्यक्ति परम संत एवं निष्ठावान् भक्त थे। दोनों ही निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और उनकी धार्मिक भावना एवं भक्ति-पद्धति में पर्याप्त समानता थी।

दक्षिण के वैष्णव भक्ति-आन्दोलन को उत्तरभारत में लाने का श्रेय रामानंद को ही दिया जाता है। लेकिन, उसे युग-परिस्थितियों के अनुरूप नवीन रूप देकर

तीव्रता से प्रसारित करने में कबीर तथा गुरु नानक ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जिस प्रकार दक्षिण के आलवार भक्तों ने घूम-घूमकर अपनी संगीत-माधुरी से वैष्णव भक्ति को एक आन्दोलन का रूप दिया था, ठीक उसी प्रकार कबीर तथा नानक ने भी स्थान-स्थान पर जाकर संगीत की स्वर-माधुरी का सहारा लेकर अपनी वाणी का प्रसार किया और भक्ति-आन्दोलन को समस्त उत्तर भारत में, एक जन-आन्दोलन का रूप प्रदान किया। गुरु नानक ने उस युग में प्रचलित प्रायः सभी धर्मों, मतों, सम्प्रदायों आदि के प्रमुख धर्म-स्थानों पर जा-जाकर उनके धर्म-गुरुओं, पंडितों, साधकों-अनुयायियों आदि से धर्म-चर्चा की तथा उन्हें अपने सिद्धांतों एवं भक्ति-पद्धति से प्रभावित किया। वस्तुतः, ये दोनों ही सही अर्थों में अपने युग के जन-नायक थे, तथापि गुरु नानक की काव्य-चेतना का क्षेत्र कबीर की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक था। कबीर ने प्रायः अपने युग की धार्मिक एवं सामाजिक स्थितियों पर ही अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं, जबकि गुरु नानक ने अपने युग की राजनैतिक दशा का भी यथार्थ चित्रण किया और एक नई राजनैतिक चेतना को जन्म दिया।

यद्यपि कबीर को सिकन्दर लोधी से अनेक कष्ट सहने पड़े थे और उन्होंने भगवान् को अपने भक्त की रक्षा करने के लिए धन्यवाद भी दिया, किन्तु सिकन्दर लोधी या अन्य किसी समसामयिक शासक के आतंक और अत्याचार के प्रति उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। इसके विपरीत गुरु नानक ने राजाओं, मुकद्दमों, सुलतानों आदि की निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता एवं अत्याचारों के प्रति तीव्र असंतोष प्रकट किया। उन्हें 'सिंह' और 'कुत्ते' कहकर उनकी पाश्विक वृत्ति की भर्त्सना की और उनके अमानुषिक कृत्यों के प्रति घृणा उत्पन्न की। ऐमनाबाद में बाबर ने निरीह जनता पर जो अत्याचार किये, उसकी भी उन्होंने तीव्र आलोचना एवं निन्दा की। उन्होंने इन आक्रमणकारियों अथवा अन्य शासकों के अत्याचारों के प्रति जो क्षोभ प्रकट किया, उसने एक नई राजनैतिक चेतना का स्फुरण किया, जिसने आगे चलकर गुरु गोबिन्दसिंह के समय में उनके विरुद्ध खुले विरोध का रूप धारण किया। 'हकु पराइआ नानका उस सूअर उस गाई' तथा 'जे रतु लगै कपडा जामा होइ पलीतु', 'जे रतु पीवहि माणसा तिनकिउ निरमलु चीतु' आदि पंक्तियों में गुरु नानक ने आर्थिक शोषण का भी विरोध किया है जबकि कबीर में इसका अभाव है। सामाजिक विषमता का निषेध एवं मानवीय समानता का निरूपण दोनों ने ही समान रूप से किया है।

परमात्मा के प्रति अपने प्रणय-भाव को दोनों ने ही निष्ठापूर्वक व्यक्त किया है। किन्तु, प्रभु की महिमा, उसके विराट् सौन्दर्य एवं प्रभुता आदि का वर्णन नानक में कबीर से कहीं अधिक मिलता है। ईश्वर के प्रति प्रणयानुभूति एवं विरहासक्ति कबीर में भी है, किन्तु प्रभु-प्रेम की तन्मयता, दैन्य एवं आत्म-समर्पण का भाव

नानक में कबीर से अधिक मात्रा में है। गुरु नानक ने मछली-नीर, चकवी-सूर, चातक-मेह आदि प्रेम-प्रतीकों के माध्यम से अपने प्रभु-प्रेम, मिलानुभूति तथा विरहाकुलता आदि का वर्णन बड़ी मार्मिकता से किया है। कबीर की रहस्यात्मक शब्दावली (विशेषतः उलटवासियाँ) बहुत ही जटिल एवं दुरुह है; जबकि नानक ने अत्यन्त सहजता एवं सरलता से अपनी साधना-पद्धति एवं रहस्यानुभूति को प्रकट किया है।

'नाम-स्मरण' को दोनों ने महत्त्व दिया है, किन्तु नाम की महिमा का वर्णन नानक ने कहीं अधिक विशदता से किया है। (जेता कीता तेता नाउ। बिणु नामै नाही को थाउ) 'प्रभु की कृपा' एवं 'कीर्तन' को भी नानक ने कबीर से अधिक महत्त्व दिया है।

'लौकिक एषणाओं' पर विजय प्राप्त करने की बात दोनों ने की है, किन्तु नानक ने उनका वर्णन अधिक विस्तार एवं स्पष्टता से किया है। प्रभु-भक्ति के लिए अहंकार-त्याग का महत्त्व भी दोनों ने स्वीकार किया है, किन्तु अहंकार तत्त्व (हउमै) के स्वरूप, भेद, कारण, परिणाम एवं त्याग के उपायों आदि का जितना विशद एवं व्यवस्थित निरूपण नानक ने किया है, कबीर में नहीं मिलता।

इसी प्रकार आध्यात्मिक साधनों में 'सेवा' का जितना महत्त्व नानक ने बताया है, कबीर ने नहीं बताया। सेवा, वंड खाणा, हउमै-त्याग गुरु नानक की साधना-पद्धति के अनिवार्य तत्त्व हैं। 'सेवा' से मनुष्य तन की शक्ति एवं सुन्दरता तथा कुल अथवा वैभव आदि के अहंकार से मुक्त होकर दैन्य-भाव को प्राप्त करता है, जिससे प्रभु-भक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

नानक ने (परमात्मा के) 'हुक्म' को भी अत्यधिक महत्त्व दिया है जबकि कबीर में इसका उल्लेख नहीं है। 'हुकम' तत्त्व का निरूपण नानक की अपनी विशेषता है—

हुकमि होवनि आकार हुकमु न कहिया जाइ।
हुकम रजाइ चलणा, नानक लिखिआ नालि।
हुकमि होवनि जीअ, हुकमि मिलै बडिआई।

आध्यात्मिक साधना के लिए मानवीय चेतना का परिष्कार आवश्यक है, और उसके लिए सत्य, ज्ञान, संयम, संतोष, सत्संगति आदि के महत्त्व का प्रतिपादन गुरु नानक तथा कबीर दोनों ने समान रूप से किया है।

दोनों साधकों ने 'सहज समाधि' पर अत्यधिक बल दिया हैं। गुरु नानक के अनुसार अन्तर्मन में प्रभु का समा जाना ही 'सहज समाधि' है—

जाके अंतर बसै प्रभु आइ।
नानक ते जन सहजि समाति।

इस तरह इन दोनों साधकों की अनेक दृष्टियों से तुलना की जा सकती है,

और इस तुलना में कई दृष्टियों से नानक कबीर के अग्रणी एवं अधिक प्रभावी दिखाई पड़ते हैं। ज्ञानी गुरदित्त सिंह ने 'इतिहास श्री गुरु ग्रंथ साहब' में भाई गुरुदास, राम प्रसाद त्रिपाठी, राम कुमार वर्मा, गोविन्द त्रिगुणायत, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्याम सुन्दर दास, गंगा शरण, चन्द्रवली पांडेय आदि विद्वानों तथा 'गुरु ग्रंथ साहब', 'परिचआ आनन्द दास', 'हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास' (नागरी प्रचारिणी सभा), 'सर्वे ऑफ इंडिया', 'कबीर ग्रन्थावली', 'कबीर दर्शन', 'कबीर-मंसूर, 'बीजक', 'कबीर चरित्र' श्री हरिदास महाराज की वाणी, गरीबदास की वाणी आदि ग्रंथों से उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि 'गुरु नानक तथा कबीर की भेंट हुई थी। कबीर की मृत्यु १५७५ वि० में हुई थी और वे ४९ वर्षों तक गुरु नानक के समकालीन रहे और गुरु नानक तथा कबीर के मिलने-जुलने का समय २० वर्षों से अधिक है।[10]

'गुरु ग्रंथ साहब' में संकलित कबीर की वाणी प्राचीन प्रामाणिक उपलब्ध वाणी है। उनकी इसी वाणी के अन्तर्गत कबीर की भक्ति-भावना के स्वरूप, कृष्ण तथा राम के प्रति उनकी आरम्भिक अवतारवादी भक्ति-भावना, उनके जीवनवृत से सम्बन्धित अनेक तथ्यों—(कि उनका जन्म काशी में तथा मृत्यु मगहर में ही हुई थी और वे जाति के जुलाहे थे—इत्यादि) का उद्घाटन होता है। अंतः साक्ष्य और बाह्य साक्ष्यों के आधार पर यह भी सिद्ध होता है कि कबीर को अनेक यातनाएँ दी गई थीं। जंजीरों में जकड़कर गंगा में डाला गया था, अग्नि में फेंका गया था और बंदी गृह में रखा गया था।[11]

कुछ विद्वानों ने इस धारणा का खण्डन किया है कि कबीर आरम्भ से निर्गुण-वादी थे। उनका कहना है कि कबीर आरम्भ में सगुणवादी थे, कृष्ण और राम के अवतारी रूप के भक्त थे। वे बाद में निर्गुणवादी बने, जबकि गुरु नानक आरम्भ से ही निर्गुणवादी थे और वस्तुतः वे ही पहले निर्गुणवादी भक्त थे।[12]

गुरु नानक कबीर से प्रभावित थे या कबीर गुरु नानक से ? यह भी विद्वानों में विवाद का विषय बना हुआ है। ज्ञानी गुरदित सिंह ने कबीर और गुरु नानक के सम्बन्धों पर विशदता से प्रकाश डालते हुए इन दोनों के अनेक पदों को आमने-सामने रखकर उनकी समानता दिखाई है। लेकिन, इतिहास, धर्मग्रंथों, साहित्यिक कृतियों आदि से अनेक तथ्य देकर प्रमाण और तर्क के आधार पर, युक्तियुक्त रूप में लेखक ने यह भी स्थापना की है कि कबीर गुरु नानक से अनेक रूपों में प्रभावित थे। इस संदर्भ में उन्होंने 'गोशटि गुरु बाबा नानक की गुसाई कबीर जी

---

१०. दृष्टव्य : ज्ञानी गुरदित सिंह : इतिहास गुरुग्रन्थ साहब, भाग-१, पृ० ४६-५४.
११. वही, पृष्ठ ५६
१२. वही।

नाले' को विस्तार से उद्धृत किया है और "नामा छीबा कबीर जोलाहा पूरे गुर ते गति पाई" आदि प्राचीन पदों से अपने मत की पुष्टि की है।

कबीर आरम्भ में निर्गुणवादी थे या सगुणवादी, उनके राम एवं कृष्ण अवतार-पुरुष थे या निर्गुण ब्रह्म के प्रतीक? वे गुरु नानक से प्रभावित थे या गुरु नानक उनसे? इन विषयों पर अभी भी टीका-टिप्पणी की जा सकती है, विवाद बना रह सकता है, लेकिन इससे कोई इकार नहीं कर सकता कि जो नई विपुल सामग्री तथा हवाले हमारे सामने आये हैं, उनकी सरलता से उपेक्षा नहीं की जो सकती। ये तथ्य सिक्ख गुरुओं, कबीर तथा अन्य संतों-भक्तों पर शोध करने वाले हिन्दी के विद्वानों के लिए चिन्तन का नया मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

गुरु नानक : एक नैसर्गिक कवि

"गुरु ग्रंथ साहब" में गुरु नानक के ९७४ पद एवं श्लोक संग्रहीत हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'जपुजी', 'बारहमाहा', 'आसा दी वार' एवं 'सिद्ध गोष्ठी।' 'जपुजी' सूत्रात्मक शैली में लिखी गई दार्शनिक रचना है, तथापि इसमें काव्यत्व का अभाव नहीं है। 'आदिग्रंथ' की सम्पूर्ण वाणी का सार 'जपुजी' में है तथा यह सिक्खमत के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने वाली सबसे महत्वपूर्ण रचना है। भाई संतोखसिंह ने 'गरब गंजनी' नाम से इसकी जो टीका की है, उससे पता चलता है कि इसमें विचार, अनुभूति एवं कला का सुन्दर समन्वय हुआ है। इसमें दोहा, चौपाई, तोटक आदि छन्दों एवं बहुत से अलंकार का प्रयोग हुआ है।

'बारहमाहा' में विभिन्न ऋतुओं एवं महीनों में प्रकृति के बदलते हुए रूपों का चित्रात्मक एवं सजीव चित्रण करते हुए उसके माध्यम से जीवात्मा की आध्यात्मिक विरहानुभूति, मिलनोत्कंठा एवं मिलनोल्लास आदि की अनुभूतिपरक एवं मार्मिक व्यंजना हुई है। इसमें जीवात्मा को सुहागिनी और परमात्मा को प्रिय के रूप में प्रस्तुत किया गया है और अन्त में ब्रह्म के मिलने से जीवात्मा की आनन्दानुभूति का सशक्त चित्रण हुआ है। इसमें प्रणय के संयोग और वियोग दोनों पक्षों की सुन्दर व्यंजना हुई है।

'गुरु ग्रंथ साहब' में विविध रागों में रचित २२ बारें हैं। गुरु नानक ने आसा, माझ, मलार राग में वार की रचना की है, जिनमें 'आसा दी वार' सर्वश्रेष्ठ हैं। 'वार' पंजाबी का एक विशिष्ट लोक-काव्य रूप है, जिसमें लोक कवि ढाढी-भाट वीरों की, प्रशस्तियों का ओजस्वी एवं भावपूर्ण शैली में गायन करते थे। गुरु नानक ने इस शैली का उपयोग नाम-स्मरण, गुरु-स्तुति, सदाचरण, आत्मशुद्धि, अहंकार-त्याग, बाह्याचारों के निषेध एवं सत्य, संतोष, क्षमा, दया आदि के महत्त्व का निरूपण करने के लिए किया है। सिक्ख-परम्परा में यह अत्यधिक धार्मिक महत्त्व की रचना है।

'सिद्ध गोष्ठी' में गुरु नानक ने सहज योग की महत्ता का प्रतिपादन किया है और मिथ्याडम्बरों की व्यर्थता का निर्देश करते हुए अहंकार के त्याग, पवित्र गार्हस्थ्य जीवन एवं नाम-स्मरण आदि के महत्त्व का निरूपण किया है।

गुरु नानक की सम्पूर्ण वाणी रागों में रचित है। उन्होंने १९ रागों में रचना की है।

नानकदेव एक स्वतन्त्र चिंतक, क्रान्तिकारी समाज-सुधारक एवं महान् साधक ही नहीं थे, वे एक उत्कृष्ट कवि भी थे। लेकिन, कविता उनके लिए उनके आध्यात्मिक चिंतन एवं अनुभवों की चित्रात्मक अभिव्यक्ति का एक माध्यम मात्र थी। वह साधन थी, साध्य नहीं। उन्होंने अपने को 'शायर' (कवि) कहा है—"नानक साइरू एव कहतु सचे परवदगारा" (धनासरी म० १)। ऐसा 'साइर' (कवि) जो अपने प्रियतम परवरदिगार के प्रेम में अन्दर और बाहर से भरपूर है, जिसने अपना सर्वस्व उसे अर्पित कर दिया है और आत्म-विभोर होकर ढाढी की तरह उसके गुणों की प्रशंसा करता है। वह एक ऐसा प्रेमी साधक है जो अकथ का कथन करता है—

"ढाडी कथे अकथु सबदि सवारिआ।"

इसलिए उनकी अभिव्यक्ति भी विलक्षण है। प्रभु-प्रेम से उत्प्रेरित होकर उनकी वाणी स्वतः कविता का रूप धारण कर लेती है। उन्होंने स्वयं उसे 'खसम की वाणी' कहा है, क्योंकि प्रभु स्वयं ही उनके मुख से बोलता रहा। वे वही गाते हैं जो प्रभु को प्रिय लगता है—

"जा तिसु भावा तद ही गावा।" (सोरठि म० १)

यही कारण है कि उनकी वाणी में सहजता एवं स्वाभाविकता है। गुरु नानक का व्यक्तित्व जैसा असाधारण और बहुमुखी था, वैसे ही उनकी शैली भी विचित्र एवं वैविध्यपूर्ण है। वे अपने सिद्धान्तों, आध्यात्मिक विचारों एवं अनुभवों को दूसरों तक पहुँचाना चाहते थे। अतः, प्रेषणीयता उनकी 'शैली' का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है। उन्होंने अपनी अनुभूति को अपनी विलक्षण वैयक्तिक शैली में अभिव्यक्त किया है। उसमें विषय, पात्र एवं परिस्थिति के अनुकूल विविधता है। उनके काव्य के उद्देश्य मुख्यतः तीन थे—एक : मानववादी सहज साधना-मार्ग की स्थापना करना; दो : रूढ़िग्रस्त मिथ्याडम्बरों से युक्त परम्परावादी धार्मिक संस्थानों का विरोध; तीन : प्रभु-प्रेम से अभिभूत अपनी आत्मानुभूति की अभिव्यंजना। उनकी शैली का रूप भी इन तीन सूत्रात्मक उद्देश्यों के अनुरूप त्रिविधात्मक था। 'जपुजी' जैसी रचनाओं में जहाँ वे ब्रह्म के स्वरूप, जीव, जगत्, माया, अहंकार, गुरु, नाम आदि से सम्बन्धित अपने आध्यात्मिक विचारों का निरूपण करते हैं वहाँ शैली सूत्रात्मक, संयत एवं सुगठित है। छोटी-छोटी तुकों में अपूर्व अर्थवत्ता एवं अर्थ-गाम्भीर्य है। एक-एक शब्द विस्तृत व्याख्या

की अपेक्षा रखता है। यही कारण है कि 'जपुजी' के कई भाष्य कालांतर में लिखे गये। कई तुकें तो सूक्तियों का रूप धारण कर चुकी हैं (२) जहाँ वे किसी अन्य मत, सम्प्रदाय या धर्म के पाखण्डों, मिथ्याचारों आदि की समीक्षा करते है, वहाँ शैली व्याख्यात्मक एवं व्यंग्यपूर्ण है। उसमें तीखापन एवं चुभन भी है। 'आसा दी वार' ऐसी ही रचना है। 'बारहमाहां' एवं 'तुखारी' में जहाँ वे अपनी वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यंजना करते हैं, शैली माधुर्यपूर्ण, प्रवाहयुक्त एवं गीतात्मक है। उनकी शैली में कहीं भी अस्वाभाविकता, चमत्कार अथवा कृत्रिमता नहीं है। उनकी अनुभूति तथा अभिव्यंजना में अद्‌भुत सामंजस्य है। शैली भावों का अनुकरण करती है। कहीं भी उन्होंने शैली को प्राथमिकता नहीं दी। ब्राह्मणों, मुल्लाओं एवं अन्य मतावलम्बियों की पाखण्डपूर्ण साधना-पद्धतियों एवं मिथ्याचारों की भर्त्सना उनके पूर्ववर्ती साधकों-नाथों, सिद्धों एवं सन्तों—ने भी की, लेकिन नानक की विशिष्टता यह है कि उनकी शैली में भर्त्सना एवं व्यंग्य होते हुए भी संयम एवं मर्यादा से काम लिया गया है। यथा—

(क) "पडि पुसतक संधिआ बादं।
सिल पूजसि बगुल समाधं।
मुखि झूट विभूखण सारं।"

(ख) "माणस खाणे करहि निवाज। छुरी बगाइन तिन गलि ताग।"

(ग) "अखी न मीटहि नाक पकडहि ठगण कउ संसारू।"

यहाँ वे पाखंडी साधकों की भर्त्सना अवश्य करते हैं, पर सौजन्य एवं मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते। कबीर की कटुतापूर्ण उक्तियों से इनकी तुलना करने से हमारे कथन की पुष्टि हो सकती है।

नानक ने अनेक स्थानों की यात्राएँ की थीं। वे जहाँ भी जाते थे वहाँ के लोगों को अपनी बात सरलता और सहजता से समझाना चाहते थे। यह भी एक कारण है कि उनकी शैली वैविध्यपूर्ण है और उसमें व्यापकता है। जिस प्रकार वे विचारों से रूढ़िवादी नहीं थे वरन् प्रगतिशील थे, इसी तरह उनकी शैली भी पुरानी लकीरों को पकड़कर नहीं चलती, वरन् समय, श्रोता, विषय एवं स्थान के अनुरूप अपने रूप-रंग बदल लेती है। उनकी शैली विविध काव्यरूपों, अनेक प्रकार के मुहावरों, विस्तृत शब्द-भण्डार, विभिन्न छन्द-पद्धतियों एवं लयों आदि से भरपूर है।

भाषा की दृष्टि से भी गुरु नानक कट्टरपंथी नहीं थे। उनमें ब्राह्मणों द्वारा व्यवहृत संस्कृत या संस्कृतनिष्ठ परिनिष्ठित भाषा के प्रति कोई आग्रह नहीं था। उनमें साधारण जन की मातृ-भाषा के प्रति अनुराग था। यही कारण है कि जहाँ भी वे जाते थे, वहाँ के जन-साधारण की, जिनके विषय में या जिनके लिए वे अपनी बात कहते थे, भाषा और मुहावरों को अपनी वाणी में समाविष्ट कर लेते

थे। भाषा उनके लिए अभिव्यक्ति का एक माध्यम-मात्र थी। इसीलिए उन्होंने उसकी स्पष्टता, सहजता, बोधगम्यता एवं व्यावहारिकता की ओर अधिक ध्यान दिया। उसमें स्थान, विषय, भाव, परिस्थिति, पात्रों एवं श्रोताओं के अनुरूप विविधता है।

साधारणतः, उनकी भाषा को पूर्वी पंजाबी कहा जाता है लेकिन उसमें दिखाइआ, मरता, जाता, मिलाइआ, जैसे 'खड़ी बोली' के; जीराणि जैसे 'गुजराती' के; हंमी बंभा डुमणी, मंजु कुपजी, मैंडा, आपनडे आदि 'लहंदा' के; गुरुडा आदि 'सिंधी' के शब्दों के अतिरिक्त पश्चिमी पंजाबी, रेख्ता, पूर्वी हिन्दी, ब्रज एवं फारसी आदि भाषाओं के शब्द भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। फारसी का उन्हें अधिक ज्ञान नहीं था। अतः, हिन्दी और फारसी के मिश्रित शब्द ही अधिक मिलते हैं, जिन्हें तद्भव रूप में ग्रहण किया गया है। कहीं फारसी शब्दों को हिन्दी के साँचे में ढाला गया है और कहीं हिन्दी के शब्दों को फारसी रूप देने का प्रयत्न किया हैं। यथा—

यक अरज गुफतम पैसि तो दर
गास कुन करतार।
हका कबीर करीम तू बे एब परवरदगार।

कुल मिलाकर उनकी भाषा को भी संतों भी भाषा की तरह 'सधुक्कड़ी' या 'संत-भाषा' कहा जा सकता है। उन्होंने न तो व्याकरण के नियमों की अधिक चिंता की है, न शुद्धता की। तत्सम शब्दों का मोह भी उन्हें नहीं है। उन्होंने तद्भव रूपों को ही अधिक अपनाया है, जनता की बोली को अपनी बोली बनाया है। भाषा में भावों के प्रकाशन एवं उन्हें संप्रेषित करने की अद्भुत क्षमता है, प्रवाह है और प्रवाह है। अपूर्व शालीनता, संयम, शिष्टता एवं मर्यादा है।

"जिउ गूंगे मिठिआई, सुआन पूछि जिउ, बाह पसारि, ठउर न पाइनी, मुहकाला, पति खोई, जो बीजे सो खावणा, जनमु गवाइआ आदि सैंकड़ों मुहावरों एवं 'दुख दारू सुखु रोग भइया', 'अंजनु तैसा अंजीए जैसा पिरू पावै', 'कलरि खेती बीजीए किउ लाहा पावै' आदि लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा अत्यन्त समर्थ, भावव्यंजक, व्यावहारिक एवं लोकप्रिय बन गई है। उनके अनेक वाक्य साधारण जनता में सूक्तियों के रूप में प्रवेश पा गए हैं। सामाजिक एवं नैतिक जीवन के आदर्शों, जीवन के अन्य अनेक क्षेत्रों एवं व्यापारों, आध्यात्मिक सिद्धान्तों, प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण आदि से सम्बन्धित अनेक तथ्य इन सूक्तियों में समाविष्ट हैं। कुछ सूक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

१. न जीउ मरे, न डूबे तरै।
२. झूठा इहु संसार किनि समझाइए।
३. भै बिन कोई न लंघसि पारि।

४. हीरे जैसे जनमु है, कउडी बदले जाइ।
५. सोई मउला जिनि जगु मउलिआ।
६. बिनु तेल दीवा किउ जलै।
७. आपि बीजि आपे ही खाई।
८. बिणु नावै नाही को थाऊ।
९. जोरू न जीवणि मरणि न जोरू।
१०. सूरज एको रुति अनेक।
११. माइया माइया करि मुए, माइआ किसे न साथि।

संगीतात्मकता

गुरु नानक की काव्य-शैली का एक विशिष्ट गुण है—उसकी माधुर्यपूर्ण संगीतात्मकता। संगीत एवं कविता का अभिन्न सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से मान्य रहा है। राजशेखर ने तो कविता और संगीत को माँ सरस्वती के दो स्तनों के समान कहा था, जिनका पावन दुग्ध पान कर संगीतकार संगीतकार बनता है और कवि कवि। हमारा अधिकांश मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य संगीतात्मक है। नाथों, योगियों, सिद्धों, संतों एवं भक्तों की वाणी मे संगीत का प्रचुर प्रयोग हुआ है। गुरु नानकदेव को संगीत की प्राप्ति नैसर्गिक रूप से हुई थी। यही कारण है कि संगीत की मधुर धारा उनकी वाणी में निरन्तर प्रवहमान है। संगीत का जो माधुर्य नानक की वाणी में है, वह शायद ही किसी अन्य संत कवि में होगा। उनकी कविता तालबद्ध, तुकान्त एवं संगीतबद्ध है। रबाबी मरदाना हर समय उनके साथ रहता था। मरदाना साज़ पर सुर निकालता था और गुरुदेव रच-रच कर कविता गाते थे। इस तरह कविता और संगीत गंगा-यमुना की तरह साथ-साथ चलते थे। उनकी कविता रागों में बँधी हुई, शास्त्रीय संगीत पर आधारित है। उसमें लोक-संगीत का भी समावेश किया गया है और लोक-धुनों को भी शास्त्रीय रूप दे दिया गया है। यह काव्य-शिल्प को उनकी एक विशिष्ट देन है। 'आदि ग्रंथ' में ३१ राग आये हैं। इनमें से नानक-वाणी में १९ राग प्रयुक्त हुए हैं जिनके नाम ये हैं—

सिरी, माझ, आसा, गूजरी, बड़हंस, सोरठि, धनासरी, तिलंग, सूही, बिलावल, रामकली, मारू, तुखारी, भैरव, बसंत, सारंग, मलार, प्रभाती, मालकौंस। इनमें प्रमुख रूप से प्रयुक्त होने वाले राग हैं भैरव, मालकौंस, सिरी। गुरु नानक देव ने अपने काव्य में संगीत का उपयोग बड़ी कुशलतापूर्वक किया है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने भाव अथवा विषय के अनुरूप ही रागों का प्रयोग किया हैं। भावो में और रागों में अद्भुत समरसता है। रागों के प्रयोग से भाव-व्यंजना में तीव्रता, प्रभाव और प्रेषणीयता की अभिवृद्धि हुई है। उदाहरणार्थ,

विरह की वेदनापूर्ण मनःस्थिति का वर्णन 'तुखारी' राग में किया गया है, जो इस तरह की भाव-व्यंजना के लिए अत्यधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ है। यथा—

पिर घर नहीं आवै
मरीए हावे
दामन चमक डरावै।
सेज अकेली
खरी दुहेली
मरन भइया दुख माही।

इसी प्रकार सृष्टि की व्यापकता, उषा-काल में उसके अद्‌भुत सौन्दर्य एवं शान्त वातावरण के चित्रण के लिए 'आसा राग' तथा आनन्द और उल्लास की अभिव्यंजना के लिए 'बसंत राग' का उपयोग अत्यधिक रसोत्कर्षक एवं प्रभाव-पूर्ण सिद्ध हुआ है। अनुप्रास एवं समुचित वर्ण-योजना द्वारा नाद-सौन्दर्य उत्पन्न करके संगीतात्मकता की संवृद्धि भी यत्र-तत्र की गई है। यथा—

अनहदो अनहदु बाजै रुण झुण कारे राम।
मेरा मनो मेरा मनु सता लाल पिआरे राम।

गुरु नानकदेव ने अपने काव्य में प्रायः संगीत की लयों का ही आधार ग्रहण किया है, छन्द-विधान की ओर इतना ध्यान नहीं दिया, तथापि उनकी सम्पूर्ण वाणी रागों में नहीं है। उनकी प्रमुख रचना 'जपुजी' किसी विशिष्ट राग में बद्ध नहीं है और न ही वह सारी गायी जा सकती है। उसका विषय ही ऐसा है कि उसे राग में गाये जाने की आवश्यकता नहीं। सम्भवतः, इसीलिए गुरुजी ने यहाँ संगीत के उपयोग का आग्रह नहीं दिखाया। उनकी अधिकांश रचना पदों में है, और उनमें मिश्रित छन्दों से युक्त पद भी हैं। इन पदों में दोहा, दुवैया, उपमान, निसानी, अरिल्ल आदि छन्दों का उपयोग किया गया है, यद्यपि अन्य कवियों की भाँति उन्होंने छन्दों के नामों का उल्लेख नहीं किया है। कई-कई पदों को एकत्र कर उन्हें चउपदा (चार पदों वाला), अष्टपदी (आठ पदों वाला), सोलहा (सोलह पदों से युक्त) नाम दिया गया है। मात्राओं आदि के प्रयोग में उन्होंने सर्वत्र स्व-तंत्रता से काम लिया है।

काव्यरूप

गुरु नानकदेव ने अपनी जन्म-भूमि पंजाब में लोकप्रचलित वार, बारहमाहा आदि काव्य-रूपों में ही अपनी काव्य-रचना की है। ये काव्य-रूप यहाँ विशिष्ट भावों की अभिव्यंजना के लिए प्रचलित थे। जैसे 'वार' वीर-रसात्मक गेय-कथाएँ होती थीं और 'बारहमाहे' लौकिक विरह-काव्य। किन्तु, गुरु नानकदेव ने इन सभी काव्य-रूपों को अपने आध्यात्मिक भावों की अभिव्यंजना का माध्यम बना

कर इनके कलेवर को व्यापकता प्रदान की। साहित्य के क्षेत्र में यह एक क्रान्तिकारी कदम था और पंजाब के परवर्ती कवियों ने इसका खुलकर अनुकरण किया।

अलंकार, प्रतीक एवं बिम्ब विधान

अपने सूक्ष्म चिन्तन एवं रहस्यानुभूति को चित्रात्मक और मूर्तिमान करने के लिए गुरु नानकदेव ने अनेक प्रतीकों, बिम्बों एवं अलंकारों का भी सहारा लिया है। विषयासक्त पुरुषों के लिए 'दादुर', ब्रह्मवृत्ति के लिए 'कमल', विषयों के लिए 'सिवार', संतों के लिए 'वणजारिया' और भक्ति के लिए 'लाहा' (लाभ), जीवात्मा के लिए 'काला हिरण, भंवरा, मछली, नहर; परमात्मा की भक्ति के लिए 'दही बिलोना', सांसारिक विषयों में लिप्त रहने के लिए 'जल मथना', वृद्धावस्था के लिए 'चौथा प्रहर', जीव के लिए 'खेत' यम के लिए 'खेत काटने वाला', वृद्धावस्था के सफेद बालों के लिए 'तालाब में हंसों का उतरना' एवं सत्संग के लिए 'सरवरि' आदि प्रतीकों का चयन उनकी कल्पना-शक्ति, सूक्ष्म निरीक्षण एवं सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचायक है। सभी प्रतीक भाव-व्यंजक, सजीव, सार्थक, चित्रात्मक एवं कवित्वपूर्ण हैं और प्रायः साधारण जीवन से लिए गए हैं; इसीलिए सर्वग्राह्य हैं।

उनके काव्य सें सुन्दर, सजीव, बिम्ब भी बहुलता सें मिलते हैं। बिम्ब प्रायः पारिवारिक जीवन एवं प्राकृतिक दृश्यों से लिए गये हैं और वे भावों को मूर्तिमान करने में अत्यधिक सहायक हुए हैं।

सभी संत-कवियों ने अपने आध्यात्मिक चिंतन एवं अनुभवों की चित्रात्मक अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों से भी काम लिया है। गुरु नानकदेव ने भी रूप-रंग रहित निराकार परमतत्त्व के स्वरूप, आत्मा और परमात्मा की एकरूपता, सृष्टि-रचना के रहस्यों, ससार की अनित्यता, माया के प्रसार, नाम की महिमा, परमात्मा के साक्षात्कार एवं 'गूंगे की मिठिआई' की भाँति अकथ एवं अनिर्वचनीय मिलन-आनन्द आदि के निरूपण के लिए उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, उल्लेख आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है। गुरु नानकदेव ने दरबारी कवियों की भाँति शास्त्रीय आधार लेकर अलंकारों का चमत्कारी प्रयोग कहीं नहीं किया। अलंकार उनकी वाणी में भावाभिव्यंजना के अभिन्न अंग बनकर अनायास ही आ गये हैं। उसके लिए उन्हें कोई प्रयास नहीं करना पड़ा। वैसे 'गरब गंजनी' में भाई संतोखसिंह ने विशेष, उल्लेख, स्वभावोक्ति, भाविक, परिसंख्या, विशेषोक्ति, उत्तर, पुनरुक्तिवदाभास, काव्यलिंग, दीपक, परिकर, पर्यायोक्ति, संभावना, विभावना; वीप्सा, अर्थान्तरन्यास, हेतु, चित्र, अनगुन, कारणमाला, यमक, उपमा, श्रुत्यनुप्रास, छेकानुप्रास, रूपक, प्रेयसवत्, रसवत्, रूपकातिशयोक्ति, विनोक्ति, संसृष्टि, पर्याय, मीलित, काव्यार्थापत्ति, ललित,

अधिक, समुच्चय, सम, विधि, दृष्टान्त, ऐतिह्य, विकश्वर, सार, श्लेष, प्रहर्षण, एकावली, विरोध, विषम आदि कोई ५० अलंकारों का निरूपण किया है, जो 'जपुजी' में आए हैं। भाई संतोखसिंह ने 'जपुजी' की कई तुकों में चार-पाँच अलंकार भी निकाल दिखाए हैं—लेकिन हम समझते हैं कि ऐसा करने से भाई संतोखसिंह का अपना आचार्यत्व ही स्थापित होता है, अन्यथा हम नहीं समझते कि गुरु नानकदेव ने सोच-समझकर ऐसी तुकों की रचना की हो जिनमें कई-कई अलंकार आये हों। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि अलंकारों के ज्ञान का प्रदर्शन करना गुरुजी का लक्ष्य नहीं था। वे तो आध्यात्मिक चेतना में सराबोर एक नैसर्गिक गायक थे; फिर अनुभूति के मूर्तिमान होने की प्रक्रिया में कोई अलंकार आ जाए अथवा कोई प्रतीक। उनकी अलंकार-योजना स्वाभाविक, सहज, उत्कृष्ट, समर्थ, औचित्यपूर्ण एवं सरस है। उन्होंने सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक किया जो विषय को अधिक स्पष्ट एवं सजीव बनाने में तथा भावाभिव्यंजना के उत्कर्ष में अत्यधिक सहायक हुए हैं।

गुरु नानक की वाणी में रूपक अलंकार का सर्वाधिक सफल प्रयोग हुआ है। परमतत्त्व की महानता, सर्वव्यापकता, आत्मा एवं परमात्मा के सम्बन्ध, जीव, शरीर, मन, हृदय, संसार, परलोक आदि का प्रतिपादन प्रायः रूपक अलंकार के माध्यम से ही हुआ है। रूपकों की योजना में वे अत्यन्त सजग और सचेष्ट हैं। डॉ० जयराम मिश्र ने ठीक ही कहा है कि "जीवन के साधारण व्यापारों से रूपक चुनकर उनमें अपूर्व आध्यात्मिकता, सांकेतिकता और गंभीरता भर दी है। रूपकों के माध्यम से उन्होंने गूढ़ातिगूढ़ एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों के सुलझाने का प्रयत्न किया है। सिक्का ढालने, किसान, रास, नृत्य, दूध जमाने, दही मथने एवं आरती आदि के सामान्य जीवन से गृहीन रूपक अत्यन्त हृदयग्राही, अनुभवयुक्त, कवित्व-पूर्ण एवं कलात्मक हैं। इन रूपकों में इनके पांडित्य, अनुभव एवं कल्पना की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है।" उनके अलंकार-प्रयोग के कुछ उदाहरण देखिए—

कलि काती राजे कसाई धरमु पंखु करि उडरिया।
कूड अमावस सचु चन्द्रमा दीसै नाही कह चडिआ।
काइआ नगरी इहु मनु राजा।
तनु हटडी इहु मनु बणजारा।
इह भवजलु जगत सबद गुर तरीए।
जिहवा डेडी इहु घटु डाबा।
एको हाटु साहु सपना सिदी।
बणजारे इक भातो।

प्रभु के भिन्न-भिन्न रूपों की कल्पना, उसकी अनेकरूपता का निरूपण

'उल्लेख' के माध्यम से इस प्रकार किया गया है—

आपे रसिआ आपि रसु, आते खावण हारु।
आपे होवै चोलड़ा आपे सेज भतारु।
आपे जाल मणकडा, आपे अंदरि लालु।
आपे बहुविधि रंगुला, सरबीए मेरा लाल।

शब्दालंकारों में अनुप्रास ही ऐसा है जिसका सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। लेकिन, यहाँ भी उन्हें प्रयास नहीं करना पड़ा। वे भी उनकी संगीतात्मक अभिव्यक्ति में लय एवं भावों के उत्कर्ष में सहायक होकर ही आए हैं। वे कुछ चमत्कार भी उत्पन्न करते हैं परन्तु भावों के प्रवाह में कहीं भी बाधा उपस्थित नहीं करते। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

वेखण कउ परपंच कीआ।
पंच परमेसर पंच परधान।
अलाह अलख् अगंम।
कादर करणहारु करीमु।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके सभी अलंकार उनके भावों के अन्तरंग साथी होकर उनकी व्यंजना में सहायक होकर अनायास ही आये हैं। इसके लिए उन्हें प्रयास नहीं करना पड़ा। उनसे उनकी शैली में परिष्कार भी आया हैं और गाम्भीर्य भी। इनसे उनकी शैली की शक्ति एवं प्रभाव में वृद्धि हुई है।

गुरु नानक के काव्य में अप्रस्तुत विधान

प्रत्येक कलाकार अपने व्यक्तित्व और अनुभूतियों की विशिष्टता के अनुरूप अपने अभिव्यक्ति-मार्ग का अन्वेषण और निर्धारण करता है। मन के गहनतम अनुभव-सत्यों को सार्थक अर्थवत्ता प्रदान करने के लिए तथा संवेदनाओं के तीव्रतम सम्प्रेषण के लिए अप्रस्तुत-विधान अत्यधिक उपयोगी उपकरण है। अप्रस्तुत-विधान का आधार ऐसे साम्यों की खोज होती है जिनके माध्यम से आन्तरिक सूक्ष्म संवेदनाओं को मूर्त्तरूप देकर अधिक प्रभावात्मक रूप में व्यंजित किया जा सके। वस्तुतः, किसी अनुभूत्यात्मक आन्तरिक संवेदना की समुचित अभिव्यंजना के लिए "जब हमारी भाषा पंगु और अशक्त-सी बनकर मौन धारण करने लगती है, जब अनुभव-कर्ता के विविध भाव-शिला के चतुर्दिक टकराने वाले स्रोतों की भाँति फूट निकलने के लिए मचलने-से लगते हैं; ऐसी दशा में हम उनकी यथेष्ट अभिव्यक्ति के लिए उनके साम्य की खोज अपने जीवन के विविध अनुभवों में करने लगते हैं और जिस किसी को भी उयुपक्त पाते हैं, उसका प्रयोग करके उसके मार्ग से अपनी भाव-धारा को प्रवाहित कर देते हैं।"[13] ऐसे जटिल एवं

१३. परशुराम चतुर्वेदी—'कबीर साहित्य की परख', पृ० ४२

अपूर्व अनुभव-सत्यों को, जिन्हें अभिव्यक्ति के प्रचलित माध्यमों से सम्प्रेषित न किया जा सके, व्यक्त करने के लिए कवि की सृजनात्मक प्रतिभा समर्थ अर्थ-ऊर्जा से युक्त उपयुक्त अप्रस्तुत-योजना की सहायता लेती है। ये अप्रस्तुत विशिष्ट चेतना-क्षमता से युक्त प्रत्यक्ष पदार्थ होते है जो कल्पना को अधिक शक्ति एवं सक्रियता से नियोजित करते हैं और भावों और विचारों को वहन करने में समर्थ होते हैं। इसलिए यह आवश्यक हैं कि अप्रस्तुत सादृश्यों मे रूप, आकार, भाव अथवा प्रभाव का साम्य होना चाहिए। वे अनुकूल प्रभाव के सम्प्रेषण में समर्थ हों।

गुरु नानक देव सृजनात्मक प्रतिभा-सम्पन्न एक श्रेष्ठ कवि थे। गुरु नानक ने आध्यात्मिक तत्त्वों, सामाजिक आचरण, धार्मिक तथ्यों एवं व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभूति की व्यंजना सजीवता से चित्रित करने के लिए, उनको तीव्रता से प्रमाता को, (जो मुख्यत: जन-साधारण है) सम्प्रेषित करने के लिए अप्रस्तुतों का बहुतायत से प्रयोग किया है। उनके काव्य में अप्रस्तुत का प्रयोग मुख्यत: उपमा, रूपक, व्यतिरेक अथवा प्रतीकों आदि के माध्यम से हुआ है। अपने सूक्ष्म आध्यात्मिक चिंतन एवं अनिर्वचनीय रहस्यानुभूति को मूर्तिमान करने के लिए गुरु नानक ने प्राय: रूपकों एवं प्रतीकों को ही माध्यम बनाया है। उनका सारा काव्य संश्लिष्ट एवं सुरुचिपूर्ण उपमान-योजना से भरपूर है। औचित्यपूर्ण अप्रस्तुत-विधान ने उनके काव्य को सौष्ठव, सार्थकता एवं प्रभावात्मकता प्रदान की है।

अप्रस्तुत विधान यद्यपि कल्पना मिश्रित होता है, पर उसकी सार्थकता बहुत-कुछ कवि की अनुभूति की गहराई और अनुभव के विस्तार-क्षेत्र पर निर्भर होती है। अनुभूति के अनुरूप अपने अनुभव क्षेत्र से ऐसे साम्यों का चयन करना कि प्रमाता पर अनुकूल प्रभाव पड़े, कवि की सृजनात्मक प्रतिभा, कलानिपुणता एवं बौद्धिक-परिष्कार का परिचायक होता है।

जीवन की अस्थिरता, संसार की असारता, शरीर की नश्वरता, मनुष्य-जन्म, मन, हृदय, ईश्वर की अरूपता, नित्यता, आत्मा के स्वरूप, ब्रह्म एवं जीव के सम्बन्ध, गुरु-महिमा, नाम की महिमा, सत्संग, परलोक, सत्य, संतोष, सदाचार, संयम, प्रभु-मिलन, नाम की महिमा, साधना के विभिन्न सोपान, अकथनीय रहस्यानुभूति आदि सूक्ष्म एवं गूढ़ रहस्यात्मक अमूर्त तत्त्वों को मूर्तिमान् बनाकर चित्रित करने के लिए गुरु नानक जी ने जल, कूप, तेल, रहट, हीरा-मोती, छार, रोगी, कल्लर-भूमि, तरुवर, गाय, चात्रिक, मेंह, कंचन, लोहा, सुहाग, सारंग, कोकिला, मछली, भ्रमर, हाथी, बगला, हंस, मुरगाई, कुत्ता, कसाई, सिंह, सूर्य, चन्द्रमा आदि अनेक मूर्त्त पदार्थों को अप्रस्तुत के रूप में प्रयुक्त किया है।

हरि-भक्ति, सत्य, दान, पवित्रता, हरि-ध्यान, संतोष, नाम, ब्रह्म-ज्ञान, प्रतिष्ठा, प्रभु-कृपा आदि के महत्त्व का प्रतिपादन विशिष्ट अर्थ-ऊर्जा से युक्त

साम्यों के माध्यम से, देखिए, कितनी कुशलता और समर्थता से किया गया है—

रता पैनणु मनु रता सुपेदी सतु दानु ।
नीली सिआही कदा करणी पहिरणु पैर धिआनु ।
कमर बंद संतोख का धनु जोबन तेरा नाम ॥२॥
(सिरी, महला ।)

अर्थात्, "मन को (परमात्मा के चरणों में) अनुरक्त कर देना लाल पोशाक है। सत्य और दान सफेद पोशाक है, (हृदय की) कालिमा को दूर करना ही कमर-बंद और तुम्हारा नाम ही धन और यौवन है।"

इसी प्रकार बाजीगर (संसार को सच्चा समझ कर पापों का संग्रह करने वाला भ्रमों में फंसा मनुष्य), हाथी की चाल (जवानी की मस्ती), मृग (खोटा व्यापार करने वाला फाँसी में फँसकर पीछे से पछताने वाला), रहट (संसार का क्रम), हीरा (मनुष्य-जीवन की सुन्दरता), नट्आ (माया-मोह में लिप्त मनुष्य, अनेक वेश धारण करने वाला मोह-ग्रस्त जीव), भ्रमर (चंचल मन), छार (मनुष्य-शरीर), मुरगाई (हरिनाम में लीन संसार-सागर को पार करने वाला गुरुमुख), रोगी (नाम-विहीन मनुष्य), कोकिला की मधुर वाणी (चंचल यौवन), जले हुए तिल (जो खेती में डालने से पैदा नहीं होते—ब्रह्म को विस्मृत किये हुए जन) कल्लर केरी कंध (दुहागिन स्त्री,—ईश्वर-विमुख जीव), बाज (काल, यम), पक्षी (मनुष्य), गाय (परम सत्य को पालने वाला), गोइल-गोइली (ग्वाले की भाँति फेरा-मात्र डालना—संसार की अस्थिरता), मकड़ी (अपने द्वारा रचित पाखंडों में फंसा मनुष्य), जल-मीन (आदर्श प्रेम के लिए), हिव-हिम (जिसमें नाम-रूपी बीज नहीं जमता या गुरु-उपदेश से शान्ति), स्वामी, नाथ, गुसाई, शाह (ईश्वर की सर्वोपरि सत्ता के लिए), खसम, कंत, वर, भतार, पिर, प्रीतम, शहु, लाल (ईश्वर-जीव के संबंध के लिए), हीरा, मोती, लाल, (ईश्वर की बहुमूल्य सुन्दरता) आदि उपमान उनकी सुरुचि एवं अर्थ-सम्पन्न कवित्व-शक्ति के परिचायक हैं।

गुरु नानक का अनुभव-क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक था। उन्होंने अपना बाल्य-जीवन गाँव और प्रकृति के संसर्ग में बिताया, सहज ढंग से गृहस्थ जीवन की मर्यादाओं को निभाया, व्यापार किया, सुलतान के यहाँ नौकरी की और फिर चार उदासियाँ लीं, जिनमें उन्होंने अपने युग की राजनैतिक शक्तियों और उनके अत्याचारों तथा आतंक को, सामाजिक कुरीतियों एवं विकृतियों को, धार्मिक मिथ्याचारों तथा पाखंडों को एवं आर्थिक विषमताओं को देखा-परखा, देश-विदेश के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया, विविध धर्मों; मतों के पंडितों, साधकों से मिले और उनसे विचार-विमर्श किया, समाज और धर्म के विभिन्न पक्षों का साक्षात्कार कर उन पर अपने सुचिन्तित प्रगतिशील विचार प्रकट किए और एक निष्ठावान्

साधक का जीवन व्यतीत किया । उनके अप्रस्तुत-विधान की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उन्होंने अपने उपमान जीवन के उन्हीं क्षेत्रों से लिए, जिन्हें उन्होंने अपने वैयक्तिक अनुभव की शिला पर रगड़ कर परखा था और उनके स्वभाव अथवा तात्विक गुणों से वे भली-भाँति परिचित थे। यही कारण है कि वे उपमान एक नई अर्थ-ऊर्जा लेकर उनके काव्य में प्रयुक्त हुए हैं।

उनकी उपमान-योजना की सामग्री के मूल स्रोतों का विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि उन्होंने देश-कालानुरूप सहज और सामान्य वस्तुओं को ही उपमान-रूप में अधिक चुना है। जन-साधारण के नित्य प्रयोग में आने वाली वस्तुएँ, प्रकृति के दृश्यमान पदार्थ, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, कृषक-जीवन, घरेलू जीवन, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक व्यवस्था, खनिज पदार्थ, पौराणिक एवं लोक-परम्परा आदि से सम्बन्धित उपमान सामान्य लोक-चेतना को प्रभावित करने के लिए समर्थ एवं सहज-ग्राह्य सिद्ध हुए हैं। गुरु नानकदेव जिन-जिन स्थानों पर गये और जिस-जिस तरह के लोगों से मिले, वहीं से उन्होंने अपने उपमानों का चयन किया और उनके माध्यम से अपने सुचिन्तित तथ्यों का सक्षमता से प्रतिपादन किया। उनकी अप्रस्तुत सामग्री व्यवहार-जगत् के साथ-साथ भाव-जगत को भी चित्रित करती हैं और कवि की मानसिक चेतना को प्रतिबिम्बित करती है। तत्कालीन निरंकुश एवं अत्याचारी शासकों, सामन्तों आदि के प्रति गुरुजी के मन में अत्यधिक घृणा थी। अपनी इस जुगुप्सा को उन्होंने समाज में चिर घृणा के पात्रों कुत्ते, सिंह, कसाई आदि के सादृश्यों के द्वारा इस प्रकार व्यंजित किया है—

(क) राजे सीह मुकद्दम कुत्ते, जाई जगाइन बैठे सुत्ते।
चाकर नहदा पाइन्हि घाउ, रतु पितु कुति हो चटि जाहु।
(मलार की वार, श्लोक १२)

(अर्थात्—राजे सिंह के समान (सिंहक) और चौधरी कुत्तों के समान लालची हो गए हैं)। वे सोती हुई प्रजा को जगाकर (उनका माँस भक्षण कर रहे हैं)। (राजाओं के)। नौकर अपने तीव्र नाखूनों से घाव करते हैं और लोगों का खून कुत्तों (मुकद्दमों) के द्वारा चाट जाते हैं।

(क) कलि काती राजे कसाई धरमु पंखु करि उडरिया।
कुडू अमावस सचु चन्द्रमा दीसै नाहीं कह चडिआ।
(माझ की वार, महला 1, श्लोक ३५)

अर्थात्—"कलियुग छुरी है, राजे कसाई है, धर्म अपने पंखों पर उड़ गया है, झूठ-रूपी अमावस्या है, सत्य का चन्द्रमा कहाँ उदय हुआ है ?"

इसी तरह सिद्धों, नाथों, सूफियों, मुसलमानों, ब्राह्मणों के मिथ्याचारों का खंडन करते हुए साधना के वास्तविक सत्य स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिए

भी उन्होंने ऐसे ही सादृश्यों का चयन किया है, जो वांछित भावों का प्रतिपादन करने में समर्थ हैं। मुसलमानों व योगियों की बाह्य मर्यादा का खंडन करके आतंरिक शुभ गुणों का अभिनंदन भी उन्होंने किया है। मुद्रा, झोली, विभूति, कंथा, डंडा आदि धारण करना योगियों के बाह्य चिह्न हैं। गुरु नानक का कथन है कि आन्तरिक साधना के लिए इन बाह्य वेशों की कोई आवश्यकता नहीं है। आध्यात्मिक कार्यों के सम्पादन से आन्तरिक योगी बना जा सकता है। यहाँ इन तथ्यों का प्रतिपादन इस प्रकार किया है—

(क) मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन दी करहि विभूति।
खिथा कालु कुआरी काइआ, जुगति डंडा परतीति।
आई पंथी सगल जमाती मनि जीते जगु जीतु ॥२८॥ जपुजी।

(हे योगी !) संतोष एवं श्रम अथवा लज्जा को (कान में पहनने की) मुद्रा बनाओ, प्रतिष्ठा (पतु) की झोली (धारण करो), (परमात्मा के) ध्यान को (शरीर में मलने) की विभूति बनाओ। काल के वशीभूत हो जाने वाले शरीर की ही कंथा (खिथा) बनाकर धारण करो। इसे कुमारी की भाँति पवित्र रखो। युक्ति और विश्वास को ही डंडा बनाओ। सारी जमात (समूह) को एक समझना—यही तुम्हारा 'आई पंथ' है।

साम्य-विधान

संतोष लज्जा	मुद्रा
प्रतिष्ठा	झोली
ब्रह्म-ध्यान	विभूति
पवित्र शरीर	खिथा
युक्ति और विश्वास	डंडा
सारी जमात (जन साधारण)	आई पंथ

(ख) मुसलमानों में मस्जिद, मुसल्ला, कुरान, सुन्नत, रोज़ा आदि का विशेष महत्त्व है। यहाँ भी गुरुजी ने इन पदार्थों के समकक्ष आन्तरिक गुणों को धारण करने का उपदेश दिया है। यथा—

मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलालु कुराण।
सरम सुनति सीलु रोज़ा होहु मुसलमान।
करणी काबा सचु पीरू कलमा करन निवाज।
(वार माझ १, पृ० १४०)

अर्थात्, "दया को मस्जिद (बनाओ), श्रद्धा को मुसल्ला (जिस पर बैठकर नमाज पढ़ी जाती है) और हक की कमाई को कुरान (बनाओ)। (बुरे कामों के प्रति) लज्जा को सुन्नत (मानो), शील-स्वभाव को रोज़ा (बनाओ)—इस तरह मुसलमान बनो। शुभ कर्मों को रोज़ा, सच्चाई को पीर, सत्कर्मों को कलमा और

नमाज बनाओ।'

साम्य-विधान

दया	मस्जिद
श्रद्धा	मुसल्ला
हक की कमाई	कुरान
लज्जा	सुन्नत
शील	रोज़ा
शुभ कर्म	रोजा
सच्चाई	पीर
सत्कर्म	कलमा

(ग) जगन्नाथपुरी में धूप, दीप, पुष्प, चँवर आदि से प्रभु की आरती करने वाले पंडितों को वास्तविक आरती का अर्थ समझाते हुए गुरुजी ने कहा है—

गगन में थालु रवि चंद दीपक बने
तारिका मंडल जनुक मोती।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे
सगल बनराई फुलंत जोती।
(धनासरी, म० १/१)

(हे प्रभु, तुम्हारी विराट् आरती के निमित्त) आकाश-रूपी थाल में सूर्य और चन्द्रमा दीपक बने हुए हैं और तारामंडल (उस थाल में) मोतियों के रूप में जड़े हैं। मलय-चंदन की सुगन्ध (तुम्हारी आरती की) धूप है। वायु चंवर कर रहा है। हे ज्योतिस्वरूप! वनों के खिले हुए सारे पुष्प (तुम्हारी आरती के) फूल बने हुए हैं।)

साम्य-विधान

आकाश	थाल
सूर्य-चंद्र	दीपक
तारे	मोती
मलय-चंदन की सुगंध	धूप
वायु	चंवर
वन के सभी पुष्प	फूल

निःसन्देह, इन साम्यों के विधान के माध्यम से गुरुजी योगियों, मुसलमानों एवं पंडितों को आन्तरिक साधना के रहस्य को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से समझाने में सफल हुए हैं और उनकी बाह्य साधना-पद्धति का खण्डन भी तीव्रता से, पर विनम्रता से, कर सके हैं।

एक ही व्यक्ति या पदार्थ के विविध गुणों, स्वभाव आदि को चित्रित करने के

लिए अनेकरूपात्मक अथवा विविध भाव-प्रभावों से सम्पन्न सादृश्यों की भी योजना की गई है। जैसे ब्रह्म की सर्वोपरि सत्ता, शक्तिमत्ता, सौन्दर्य, उज्ज्वलता, अनंतता, विशालता को चित्रित करने के लिए स्वामी, मउला, पातसाहि, सुलेमान, साहिब, गुसाई (राजसी सत्ता से), खसम, कंत, वर, भतार, पिर, प्रीतम, (पारिवारिक सत्ता एवं प्रेम-सम्बन्ध से), ठाकुर, साहब, स्वामी (धार्मिक सत्ता से), माली, वणजारा, कृषक, तरुवर, कमल, चंदन, सागर, दरिया (प्राकृतिक क्षेत्र से) आदि उपमान प्रयुक्त हुए हैं। इनमें हिन्दुओं, मुसलमानों, ब्राह्मणों अथवा अन्य मतावलम्बियों, सभी के जीवन क्षेत्र से लिए गए उपमान गुरुजी की व्यापक मानव-भावना एवं मानव-एकता के विश्वास को भी प्रकट करते हैं। ब्रह्म-ईश्वर सभी के लिए एक-सा है, ब्राह्मण हो या मुसलमान, इसीलिए वह स्वामी भी है और मउला भी, गुसाई भी है और शाह भी, मीआँ भी है और ठाकुर भी। वह तरुवर के समान सभी का आश्रय है और माली के समान सभी का पालक है। वह प्रकाश है, ज्योति है। वह सभी के लिए अमूल्य और सभी भक्तों के लिए खसम, प्रीतम, पिर सदृश है, हीरा-मोती है।

इसी तरह आत्मा के अनादि एवं सूक्ष्म रूप को मूर्त्त करने के लिए अथवा उसकी अमरता, उज्ज्वलता आदि को उजागर करने के लिए हंस, सुहत, पखेरू आदि का; गुरु के लिए बोहिथ (संसार-सागर से पार करने वाला), सागर (गुणों में विशालता एवं गंभीरता की व्यंजना के लिए), दरिया (निर्मलता एवं जिज्ञासुओं के मल धोने वाले के अर्थ में), सरवर (मुक्तिदाता), तीर्थ (पवित्र करने वाला), वृक्ष (मन-वांछित फल देने वाला अथवा छाया देनेवाला), पारस (मन को शुद्ध करने वाला), दीपक (मन को प्रकाशित करने वाला); प्रभु-प्रेमी जीव के लिए सुहागिन, कामिनी, लाल रत्ती एवं गौरी; माया-ग्रस्त जीव के लिए पत्थर, सैलु; मन के लिए माणक, मोती, राजा, जोगी, मन्दर, हाली, कुंजर, मैंगल, पंखी; शरीर के लिए कागद, उद्यान, आरणु, हटड़ी, धरती, गागर, नगरी; संसार के लिए सागर, धुएं की धवल, काजल की कोठड़ी आदि अप्रस्तुत प्रस्तुतों के विविध गुणों, स्वरूप, स्वभाव अथवा क्रियादि को स्पष्ट करने में पूरी तरह सक्षम हैं।

ऐसे उपमानों के प्रयोग से कवि ने युग-दशा का भी चित्रण कर दिया है। उस युग में राजा की सत्ता कितनी निरंकुश और सर्वोपरि होती थी, स्त्री के लिए पुरुष (पति) का क्या स्थान था और धार्मिक क्षेत्र में गुरु का कितना महत्त्व था, आदि की झलक यहाँ मिल जाती है। इन उपमानों से यह भी पता चलता है कि सद्गुण-सम्पन्न दयालु सुलतान अथवा पातशाह भी कवि के लिए उतने ही सम्मान के पात्र हैं जितने नाथ, ठाकुर एवं स्वामी। इनसे यह भी संकेत मिलता है कि कवि की दृष्टि में पातशाहों, सुलतानों, शाहों एवं स्वामियों का ईश्वर के समान दाता एवं दयालु होना अपेक्षित है। स्त्री के लिए कवि ने पतिव्रत धर्म का आदर्श प्रस्तुत

किया है और उसके प्रेम को प्रभु-प्रेम के सदृश कहा है। गुरु नानक की उपमान-योजना से उनके प्रकृति-प्रेम और मानव-प्रेम का भी पता चलता है, क्योंकि अधिकतर उपमान या तो प्रकृति से लिए गए हैं या सामान्य लोक-जीवन से।

गुरु नानक ने किसी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की प्रभावशाली व्यंजना के लिए अनेक साम्यों का भी विधान किया है। प्रभु-प्रेम गुरु नानक के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषय है। इस तथ्य का प्रतिपादन कवि ने मछली-नीर, चकवी-सूर तथा चात्रिक-मेह के परम्परा-प्रसिद्ध उपमानों के माध्यम से बड़ी खूबी से किया है। यथा—

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीत करि जैसी मछुली नीर ।२। (सिरी, पृ० ६०)
रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीत करि जैसी चकवी सूर ।२। (सिरी)
रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीत करि जैसी चात्रिक मेंह ।३। (सिरी)

कहीं-कहीं एक ही तथ्य की व्यंजना, एक ही उपमान की संयोग एवं वियोग की दो अवस्थाओं के माध्यम से की गई है। जिज्ञासु साधकों की प्रभु-प्रेम से सम्बद्ध स्थिति का निरूपण जल और मीन की उभयात्मक स्थितियों के द्वारा इस प्रकार किया गया है—

(क) संयोगात्मक—जिउ सीना जल माहि उलासा।
नानक हरि रसु पी त्रिपतासा ।८। (गउडी १, पृ० २२६)

(ख) वियोगात्मक—जिउ मीना बिन पाणीए, तिउ साकुत मरै पिआस।
तिउ हरि बिनु मरिए रे मना, जो बिरथा जावै सासु।
(सोरठि १, पृ० ५९७)

एक ही साम्य से कवि ने अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का प्रतिपादन भी बड़ी सहजता से किया है। उदाहरणार्थ—जल और कमल के सादृश्य का आधार लेकर, देखिए, किस कुशलता से निम्न तथ्यों का निरूपण किया गया है—

(क) जिउ जल अंतरि कमलु विगसी,
आपे बिगसी घिआइया। मारू १, पृ० १०३६
(जल में कमल की भाँति प्रभु संसार में विचरता है, विकसता है।)

(ख) रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि—
जैसी जल कमलेहि। (सिरी १, पृ० ५९)
जल-कमल की प्रीति की भाँति प्रभु-प्रेम है।

(ग) जिउ जल महि कमल अलिपतु है ऐसी बणत बणई (वार मलार।)
(जल में कमल की भाँति जीव को संसार से अलिप्त रहना चाहिए।)

एक ही उपमान को कवि ने कई-कई अर्थों में भी प्रयुक्त किया है। जैसे हीरे को ब्रह्म एवं हरिनाम के लिए; सागर को गुरु, ब्रह्म, संसार के लिए; दरिया और वृक्ष को गुरु और ब्रह्म के लिए; तीर्थ को नाम और गुरु के लिए; बोहिथ को

गुरु और नाम के लिए; बणजारे को जीव और प्रभु के लिए; मोती को ब्रह्म, नाम, मन के लिए तथा सरोवर को सत्संग और गुरु के लिए प्रयुक्त किया गया है। लेकिन, कहीं भी अर्थ में दुरूहता, दुर्बोधता, अस्पष्टता अथवा शिथिलता नहीं आने पाई। जहाँ जिस विशिष्ट अर्थ में किसी उपमान का प्रयोग किया गया है, वह उसी अर्थ को स्पष्टता से उजागर करता है और प्रस्तुत के अनुकूल प्रभाव को तीव्र करता है। इस प्रकार उनकी वैविध्यपूर्ण उपमान-योजना से अराजकता नहीं आयी, वरन् इससे उनकी काव्य-कुशलता का ही परिचय मिलता है।

गुरु नानकदेव के काव्य में प्रयुक्त सभी उपमानों का आधार सादृश्य या साधर्म्य है। यह सादृश्य कहीं रूप, आकार और गुण पर आधारित है और कहीं भाव पर। उनके काव्य में प्रभाव-साम्य पर आधारित अप्रस्तुत-विधान के भी बहुत-से उदाहरण मिलते हैं। गुण, भाव एवं प्रभाव-साम्य पर आधारित अप्रस्तुतों के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

गुण-साम्य

काम क्रोध काइआ कउ गाले।
जिउ कंचन सुहागा ढाले। (रामकली १, पृ० ८३२)

भाव-साम्य

धातु मिलै फुनि धातु कउ
सिफती सिफती समाई (सिरी, १/११८)

प्रभाव-साम्य

जिउ मीना जल माहि उलासा, नानक हरि रसु पी त्रिपतासा॥
(गउड़ी १, पृ० २२६)

इस तरह के सादृश्यों पर आधारित अप्रस्तुत से ही काव्य में रमणीयता, सम्प्रेषणीयता एवं प्रभावात्मकता की वृद्धि होती हैं। गुरु नानक के काव्य में एक भी स्थल ऐसा नहीं मिलेगा, जहाँ सादृश्यों में अनुकूल गुण, धर्म, प्रभाव आदि का ध्यान न रखा गया हो। गुरु नानक ने अमूर्त्त भावों की अभिव्यंजना के लिए मूर्त्त उपमानों का संयोजन ही अधिक किया है, जो अगोचर वस्तु के रूप, गुण आदि के प्रत्यक्षीकरण में अत्यधिक सहायक हुए हैं।

लोभ, असत्य, पर-निन्दा, क्रोध आदि सूक्ष्म कुवृत्तियों की भर्त्सना देखिए गुरुजी ने मूर्त्त सादृश्यों के माध्यम से कितनी सजीवता एवं तीव्रता से की है—

लबु कुत्ता कूड़ू चूहडा ठगि खाधा मुरदारु।
परनिन्दा पर मलु मुखसुधी अगनि क्रोध चंडालु॥१॥
(सिरी, महला १/१)

अर्थात्—"लालच कुत्ता है, झूठ भंगी है, ठगकर खाना मृत पशु खाना है,

पराई निन्दा मानो मुँह में मैल है, क्रोध की अग्नि ही चाण्डाल है।"

भारतीय काव्य की सुदीर्घ परम्परा में चातक, मेघ, समुद्र, भ्रमर, कमल, सूर्य, चकवी, चन्द्रमा, मछली, नीर, मृग, विद्युत आदि उपमानों की ऐसी विशाल निधि विद्यमान है, जो भावों के मूर्तिमान करने में अथवा रसोत्कर्ष में अत्यधिक सहायक रही है और ये उपमान अपने में एक विशिष्ट अर्थवत्ता समाविष्ट किए हुए हैं। गुरु नानकदेव ने भी अपने काव्य में परम्परायुक्त ऐसे बहुत-से उपमानों का प्रयोग किया है। पर जिस रूप में गुरुजी ने इनका प्रयोग किया है, उन पर उनके निजी अनुभव-समृद्ध व्यक्तित्व की गहरी छाप है। प्रत्येक प्राचीन उपमान में नवीन अर्थ-ऊर्जा दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ, 'मछली' अथवा 'मीन' भारतीय काव्य में प्रयुक्त प्रसिद्ध उपमान है, जो प्रेम की दृढ़ता को व्यंजित करने के लिए अधिक प्रयुक्त हुआ है, लेकिन गुरुजी के काव्य में एक स्थान पर 'मछली' एक तुच्छ जीव के रूप में आयी है, जो प्रभु के विराट्ता-रूपी सागर की थाह नहीं ले सकती। इसी तरह 'बणजारे' के माध्यम से प्रभु के न्यायी रूप को प्रकट (पूरा तौलने वाला) किया गया है। 'कृषक' खेती में नाम का बीज डालने वाला है। यहाँ ईश्वर 'भ्रमर' है, जो सर्वत्र मंडरा रहा है (सर्वव्यापक है)। शरीर को 'नगरी' के समान कहा गया है—ऐसी नगरी जिसमें काम, क्रोध आदि पाँच चोरों का निवास है; अथवा ऐसा 'आरण' (अरण्य) है जिसमें काम-क्रोध आदि की अग्नि जल रही है। हृदय को 'कमल का छाबा' (जिह्वा डंडी इह घट छाब) कहना भी उनकी मौलिक कल्पना की देन है। निश्चय ही इन परम्परायुक्त उपमानों का इस रूप में संयोजन उनकी नूतन कल्पना-शक्ति एवं सर्जनात्मक काव्य-प्रतिभा का परिचायक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु नानक ने अपनी बिम्ब-विधायिनी कल्पना-शक्ति, व्यापक अनुभव एवं गहन अनुभूति के बल पर अपने काव्य में ऐसे समर्थ अप्रस्तुतों का संयोजन किया है जो भाव की सहज प्रतीति में, रस के उत्कर्ष में, विचारों की स्पष्टता एवं सूक्ष्मानुभूति को मूर्तिमान करने में अत्यधिक सहायक हुए हैं। अधिकतर उपमान सामान्य लोक-जीवन से लिए गए हैं, इसलिए उनमें स्वाभाविकता एवं सजीवता है। इनके प्रयोग से उनके काव्य में प्रभावात्मकता, संप्रेषणीयता एवं आकर्षण की वृद्धि हुई है। सामान्य मानव-जीवन की पहुँच के भीतर के पदार्थों पर आधारित होने के कारण वे बोधगम्य एवं सहज सम्प्रेषणीय हैं। उक्त भाव की प्रतीति इनसे तत्क्षण हो जाती है। उसके लिए न तो ऊँची कल्पना से काम लेना पड़ता है और न ही अधिक बौद्धिक श्रम करना पड़ता है। व्यावहारिक जीवन से सम्बद्ध होने के कारण उनकी प्रकृति, स्वभाव, रूप, गुण, प्रभाव हमारा जाना-पहचाना है, उनमें तनिक भी जटिलता या दुरूहता नहीं है। मैं समझता हूँ कि गुरु नानकदेव की काव्य-कला की यह बहुत बड़ी विशेषता है

कि इतने सामान्य, व्यावहारिक लोक-जीवन से गृहीत अप्रस्तुतों के माध्यम से वे इतने सूक्ष्म, गंभीर एवं महत्त्वपूर्ण तथ्यों का इतनी सहजता एवं रमणीयता के साथ चित्रण कर सके हैं। नानक एक नैसर्गिक कवि थे, ये उपमान भी उनकी रचना-प्रक्रिया में सहज रूप से ही समाविष्ट हो गए हैं। उसके लिए उन्हें बौद्धिक या कल्पनात्मक श्रम नहीं करना पड़ा। यह सहज, नैसर्गिक सौन्दर्य उनकी अप्रतिम विशेषता है, जो बहुत कम कवियों में देखने को मिलती हैं। कबीर जैसे सन्तों एवं बहुत-से सिद्धों ने अपनी सूक्ष्म रहस्यानुभूति की अभिव्यंजना के लिए जिस तरह अटपटे, दुरूह एवं जटिल अप्रस्तुतों का विधान करके कूट-काव्यों की रचना की है, उनसे उनके साम्प्रदायिक विचारों को गोपनीयता ही मिली है, सहजता और स्वाभाविकता उनमें नहीं है। जबकि गुरु नानक ने वैसी दुरारूढ़ कल्पना का कहीं सहारा नहीं लिया। उपमान उनके भी नवीन और मौलिक हैं, पर उनके अर्थ भी पूरी तरह स्पष्ट हैं। नानक तो जनता के कवि थे, उन्हीं की बोली में, उन्हीं के जीवन के उपमानों से उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति की। उनमें उनकी मंगलमय भावना एवं सौन्दर्यमयी कला-प्रतिभा का संस्पर्श है। उनकी उपमान-योजना में जो वैविध्य है, उससे उनके भाव-जगत् की व्यापकता एवं विशदता का परिचय मिलता है। इनके माध्यम से वे अपने अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी अनुभवों को यथार्थता एवं सजीवता से प्रकट करने में बहुत सफल रहे हैं। उनके उपमान वस्तु या भाव के प्रभाव को तीव्रता से अनुभव करा सकने की शक्ति रखते हैं और अगोचर, अरूप और अमूर्त्त का आकर्षण मूर्त्त-रूप में प्रत्यक्षानुभव करा सके हैं।

गुरु नानक के उपमान उनकी मानसिक चेतना के सही प्रतिबिम्ब हैं। उनसे प्रकृति-प्रेम, मानव-प्रेम, लोक-मंगल की भावना, अत्याचार और अन्याय के प्रति घृणा, अध्यात्मवादी दृष्टिकोण, सामाजिक एवं धार्मिक विकृतियों की भर्त्सना, प्रगतिशील जीवन-दृष्टि, उदारता एवं दयालुता आदि गुणों का भी परिचय सहज ही मिल जाता है। ये उपमान उनकी निष्ठा, विश्वास एवं आदर्शवादिता के सूचक हैं। वे प्रेरणादायक हैं और औचित्यपूर्ण भी। उनमें चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता, नवीनता, ताज़गी एवं मार्मिकता है। गुरु नानक की रचना का मुख्य उद्देश्य, जन-साधारण की मनोवृत्तियों का परिष्कार करना था। उनके उपमान भी ऐसे ही है, जो परिष्कार और उन्नयन के परिचायक हैं। वस्तुतः, गुरु नानक के उपमान उनकी अद्भुत कल्पना शक्ति, विस्तृत भाव-भूमि, व्यापक अनुभव-क्षेत्र और परिष्कृत मानसिकता के परिचायक हैं। निश्चय ही उन्होंने अपनी मौलिक अप्रस्तुत-योजना द्वारा काव्य-क्षेत्र को समृद्ध एवं समुन्नत किया है।

अन्त में हम यही कहेंगे कि गुरु नानक किसी विशेष स्कूल के कवि नहीं थे, वे महान् नैसर्गिक कवि थे। उनकी काव्य-शैली भी किसी परम्परा, रूढ़ि या शास्त्र

की बंधी-बंधाई पद्धति पर चलने वाली नहीं थी। वह अनुभूति का अनुकरण करती है। वह व्यावहारिक है और उसमें भावों को संप्रेषित करने की अद्‌भुत क्षमता है। वह सहज भी है और सुन्दर भी; स्वाभाविक भी है और सरस भी। वह उनके व्यक्तित्व का सच्चा दर्पण है। 'शैली ही व्यक्ति है' (Style is the man) जर्मन विद्वान् वफन की यह उक्ति गुरु नानक की काव्य-शैली पर पूर्णतः घटित होती है।

२.

सिक्खमत के प्रमुख स्तम्भ : गुरु अर्जुनदेव

गुरु नानक के पश्चात् सिक्खमत को विकसित एवं सुदृढ़ करने का श्रेय गुरु अर्जुनदेव को है । इसीलिए उन्हें सिक्खमत का दूसरा स्तम्भ माना जाता है। गुरु अर्जुनदेव ने गुरुमत के प्रचार और प्रसार का ही कार्य नहीं किया वरन् सिक्खमत को अपनी एक अलग पहचान देते हुए उसके संगठन को भी मज़बूत किया। गुरु अर्जुनदेव एक सुयोग्य धर्मगुरु ही नहीं थे, वरन् एक **लोकहितकारी** समाज सेवी, निष्ठावान भक्त, मेधावी मनीषी एवं समर्थ कवि भी थे। भाई गुरुदास ने उनकी प्रशंसा में जो कुछ लिखा है वह सर्वथा सार्थक एवं संगत है । वे लिखते हैं—

अरजन काइआ पलट के मूरति हरि गोविन्द सवारी।
दल भंजन गुरु सूरमा बड़ जोधा बहु **परउपकारी**।

गुरु अर्जुनदेव का जन्म १९ वैशाख सम्वत् १६२० (१५ अप्रैल, १५६३ ई०) को गोइंदवाल में हुआ था। उनके पिता श्री रामदास चौथे गुरु थे और तीसरे गुरु अमरदासजी उनके नाना थे। इसलिए आध्यात्मिकता और प्रभु-भक्ति उन्हें पारिवारिक विरासत के रूप में प्राप्त हुई। वे गुरु रामदास के सबसे छोटे पुत्र थे। प्रिथिचंद और महादेव दोनों उनके बड़े भाई थे। परन्तु, इनके विनम्र एवं सौम्य स्वभाव, हरिभक्ति में निष्ठा, पितृ-प्रेम एवं गुरु-श्रद्धा, संगठन-क्षमता, गम्भीर चिन्तनशीलता एवं नैसर्गिक काव्य-प्रतिभा आदि को देखकर गुरु रामदास ने इन्हें ही गुरगद्दी पर प्रतिष्ठित किया। इनके बड़े भाई प्रिथिचंद इसे सहन नहीं कर सके। सत्ता का लोभी प्रिथिचंद ईर्ष्या एवं द्वेषवश जीवन भर इनका प्रबल विरोध करता रहा और उनके अनिष्ट में जुटा रहा। गुरु अर्जुनदेव को संवत् १६३६ (सन् १५८१) मे गुरुता प्राप्त हुई थी, लेकिन प्रिथिचंद उनके गुरु रूप में स्थापित होने में निरन्तर बाधाएँ उपस्थित करता रहा। यही नहीं, उसने उनके पुत्र हरगोविन्द को मरवाने के भी अनेक प्रयास किए, जिससे उनके पश्चात् गुरुता उसके

परिवार में आ सके। अपने इन प्रयत्नों में असफल होने पर उसने लाहौर और दिल्ली के शासकों से मिलकर उनके विरुद्ध षड्यन्त्र किया, जिसके परिणामस्वरूप अन्ततः संवत् १६६३ (सन् १६०६) में लाहौर के शासक द्वारा अनेक कठोर यातनाएँ देकर उनकी अमानुषिक हत्या कर दी गई और इस तरह गुरु अर्जुनदेव गुरु-परम्परा के प्रथम शहीद बने।

गुरु अर्जुनदेव की मृत्यु के कारणों के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं। सिक्ख-परम्परा के अनुसार लाहौर के सूबेदार का एक सरदार चंदूशाह भी उनकी मृत्यु का कारण बना था क्योंकि गुरु अर्जुनदेव ने अपने पुत्र हरगोबिन्द के लिए उसकी कन्या का सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया था, जिससे खिन्न होकर उसने शासकों को उनके विरुद्ध भड़काया। इस घटना का एक राजनैतिक कारण भी माना जाता है और कहा जाता है कि जहाँगीर गुरु अर्जुनदेव से इसलिए रुष्ट था क्योंकि गुरु अर्जुनदेव पर खुसरो की सहायता का आरोप लगाया गया था। कुछ विद्वानों का मत है कि जहाँगीर धार्मिक दृष्टि से अकबर जैसा उदार नहीं था। वह गुरुमत के बढ़ते हुए प्रभाव से बहुत चिंतित था, इसलिए वह चाहता था कि या तो गुरु अर्जुनदेव को इस्लाम के प्रभाव के अन्तर्गत ले लिया जाए अन्यथा उन्हें नष्ट कर दिया जाए। 'तुजके जहाँगीरी' से इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि गुरु अर्जुनदेव को जहाँगीर की अनुदार, संकुचित एवं असहिष्णु धार्मिक भावना का शिकार होना पड़ा था।

गुरु अर्जुनदेव की शहीदी सिक्ख-इतिहास की एक लोमहर्षक घटना है। उन्हें बन्दी बनाकर जब लाहौर के शासक मुर्तजा खाँ को सौंपा गया, तो वहाँ उन्हें अमानुषिक यातनाएँ दी गईं। उन्हें गर्म सलाखों से जलाया गया। गर्म रेत पर लिटा दिया गया, उबलते हुए पानी और तपते हुए कड़ाहे से तेल डालकर उनके शरीर को जलाया गया। लेकिन, गुरु जी अपने प्रण पर अटल रहे और अपने आदर्शों के लिए अनेक कष्ट सहते हुए शहीदी प्राप्त की। उनका यह बलिदान उनकी नैतिक शक्ति, पवित्र जीवन के प्रति निष्ठा और अदम्य साहस का परिचायक है। इस घटना ने सिक्ख-इतिहास को एक नया मोड़ दिया और उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हुए। गुरु अर्जुनदेव ने आत्म बलिदान देकर सिक्खमत को नया जीवन प्रदान किया और साहस, दृढ़ता, निर्भीकता, संघर्ष और बलिदान की परम्परा को जन्म दिया। उनके पुत्र और गुरुता के उत्तराधिकारी गुरु हरगोबिन्द दो तलवारें धारण करने लगे, जिनमें से एक अध्यात्म की प्रतीक थी, दूसरी शक्ति की और इस तरह सिक्खमत में अध्यात्म के साथ-साथ शौर्य की परम्परा का प्रवर्त्तन हुआ और शक्ति संघटन की प्रवृत्ति का प्रारम्भ होता है।

सिक्खमत को दृढ़ करने में योगदान

गुरु अर्जुनदेव ने सिक्खमत के सिद्धान्तों के प्रचार के साथ-साथ इसके आध्यात्मिक विचारों एवं सामाजिक आदर्शों को व्यवहार में प्रयुक्त करने पर बल दिया। उन्होंने धर्म-प्रचारार्थ अनेक स्थानों का भ्रमण किया; अनेक लोक-कल्याण-कारी कार्य किये; सरोवर, कुएँ, बावलियाँ खुदवाईं, नगर बसाये, व्यापार-व्यवसाय, कला-शिल्प और कृषि को प्रोत्साहन दिया, मसंदों की नियुक्ति की; धर्म-शालाएँ बनवाईं; सिक्खमत को उसका स्थायी धर्म-ग्रंथ और उपासना केन्द्र प्रदान किया तथा नित्य गुरुवाणी पाठ, कीर्तन और सत्संगति की प्रथा चलाई। इससे सिक्खमत को एक समुचित व्यवस्था मिली और उसका विधिवत विकास होने लगा। सिक्खों को अपने धर्माचरण में दृढ़ रहने के संस्कार एवं प्रेरणा मिली। अतः, उनके अनुयायियों की संख्या निरन्तर बढ़ने लगी और सिक्खमत एक शक्ति-शाली सम्प्रदाय के रूप में स्थापित हो गया। इनके समय में पेशावर से दिल्ली तक सिक्खमत का प्रभाव था। अमृतसर नगर की संरचना, हरि-मंदिर का निर्माण तथा 'आदिग्रन्थ' का सम्पादन सिक्खमत को उनकी महत्वपूर्ण देन है, जिनसे सिक्ख-मत ने अपनी निजी विशिष्टता और पहचान प्राप्त की। अमृतसर नगर की रचना का कार्य यद्यपि अकबर द्वारा भेंट की गई भूमि पर गुरु रामदास द्वारा आरम्भ किया गया था, किन्तु गुरु अर्जुनदेव ने इस नगर को उन्नत एवं समृद्ध किया और वहाँ अनेक व्यवसायों की व्यवस्था की। अमृतसर में ही १५८८ ई० में इन्होंने 'हरि मंदिर' की नींव डाली और इसकी पहली ईंट प्रसिद्ध सूफ़ी फकीर मियाँ मीर से रखवाई गयी, जिससे उनकी धार्मिक उदारता का परिचय मिलता है। 'हरि-मंदिर' मानववादी भावना का प्रतीक था। उसके चार द्वार इस तथ्य के द्योतक थे कि यह मंदिर चारों वर्णों के लिए, चारों दिशाओं से खुला हुआ है तथा कर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं योग इन चारों मार्गों से प्रवेश पाकर हरि-भक्ति और प्रभु-प्रेम द्वारा प्रभु को पाया जा सकता है। गुरु अर्जुनदेव द्वारा निर्मित 'हरि-मंदिर' सिक्खों की आस्था और विश्वास का केन्द्र था और उनका मुख्य उपासना स्थान है।

'आदिग्रंथ का' सम्पादन

'आदिग्रंथ' सिक्खमत को गुरु अर्जुनदेव की सबसे महत्त्वपूर्ण देन है। किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय की स्थायी सत्ता बनाने में उस धर्म के धर्मग्रंथ का विशेष महत्त्व होता है। सिक्खमत का ऐसा कोई 'धर्मग्रंथ' पहले से नहीं था। गुरु अर्जुनदेव सिक्खमत को व्यवस्थित एवं सुदृढ़ करने के लिए अनेक प्रयास कर रहे थे। सिक्ख-मत को स्वायत्तता प्रदान करने के लिए उन्होंने एक ऐसे ग्रंथ की रचना का संकल्प किया, जिससे सिक्खधर्म के सिद्धान्तों का विस्तार से प्रतिपादन हो सके और वह

सिक्खों के लिए स्थायी प्रेरणा का स्रोत बन सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपनी तथा पूर्व गुरूओं की प्रामाणिक वाणी का संकलन करने का निश्चय किया, क्योंकि सिक्खमत में 'गुरुवाणी को गुरु रूप और गुरु को वाणी रूप' स्वीकार किया गया है। गुरुओं की प्रामाणिक वाणी को अप्रामाणिक वाणी से अलग करके सुरक्षित रखा जा सके, उससे सिक्खमत के सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में सहायता मिल सके। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उन्होंने भाई गुरुदास को यह कार्य सौंपा, जो गुरुवाणी के ज्ञाता, काव्य के पारखी और दर्शन के विद्वान् थे। अमृतसर के निकट एक निर्जन एवं एकान्त स्थान पर 'आदिग्रंथ' के सम्पादन का कार्य आरम्भ किया गया, जोकि १६०४ ई० में पूर्ण हुआ। इसके पूर्ण होने पर इसें 'हरि-मंदिर' में स्थापित किया गया और बाबा बुड्ढे को इसका प्रथम ग्रंथी नियुक्त किया गया। इस ग्रंथ की रचना से सिक्खों ने अपार हर्ष, उल्लास और आनन्द प्रकट किया। 'आदिग्रंथ' में गुरु अर्जुनदेव तथा उनसे पूर्व के चार गुरुओं की वाणी के अतिरिक्त १२वीं से १७वीं शती तक के १५ प्रमुख संतों—भक्तों की, या १७ भाटों की तथा कुछ अन्य रचनाएँ संकलित हैं। बाद में गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा इसमें गुरु तेगबहादुर की वाणी को भी सम्मिलित करके इसे 'गुरु ग्रंथ साहब' का नाम दिया गया और १७०८ में उन्होंने गुरु-परम्परा समाप्त करके 'गुरु ग्रंथ साहब' को ही गुरु मानने का आदेश दिया। 'गुरु ग्रंथ साहब' के १४३० पृष्ठ हैं। इसमें सर्वाधिक वाणी गुरु अर्जुनदेव की है और इसमें उनके २२१८ पद संकलित है।

'आदिग्रंथ' का सम्पादन अत्यन्त जटिल एवं श्रमसाध्य कार्य था। इसकी सबसे बड़ी समस्या वाणी का संकलन करना और उसकी प्रामाणिकता का निर्धारण करना था। इस सम्बन्ध में कई मत प्रचलित हैं कि गुरु अर्जुनदेव ने पूर्व गुरुओं की वाणी कैसे और कहाँ से प्राप्त की। सिक्ख-परम्परा के अनुसार गुरु अर्जुनदेव ने गुरु-वाणी की एक पाण्डुलिपि बाबा मोहन से प्राप्त की थी तथा कुछ वाणी गुरु-सिक्खों से सुनकर लिखी थी, जिन्हें कुछ पद स्मरण थे। कुछ विद्वानों का मत है कि पूर्व गुरुओं की वाणी का संकलन उन्हें गुरु गद्दी के साथ ही प्राप्त हुआ था। उसी के आधार पर उन्होंने यह ग्रंथ तैयार किया। इसी प्रकार संतों की वाणी के संकलन के सम्बन्ध में भी कई धारणाएँ हैं। भाई संतोख सिंह कृत 'गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार कबीर, नामदेव आदि संतों ने स्वयं सूक्ष्म रूप में उपस्थित होकर अपनी वाणी लिखवाई थी। मैकालिफ का मत है कि 'विभिन्न संत सम्प्रदायों के अनुयायियों से संतों की वाणी एकत्रित की गयी थी।' कुछ लोग यह भी मानते हैं कि संतों की वाणी भी उन्हें परम्परागत रूप से पूर्व गुरुओं से प्राप्त हुई थी। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि यह निर्णय गुरु अर्जुनदेव को ही करना था कि किस-किस संत कवि की वाणी को 'आदिग्रंथ' में स्थान देना है और उनके कौन से पद लेने हैं। 'आदिग्रंथ' में जयदेव, नामदेव, शेखफरीद, त्रिलोचन, रामानन्द,

कबीर, पीपा, सधना, सेन, धन्ना, रविदास, बेनी, परमानन्द, भीखन एवं सूरदास की रचनाएँ संकलित हैं। लेकिन, उनकी सम्पूर्ण वाणी को यहाँ नहीं लिया गया है। किसी संत के तो एक या दो पद ही लिए गये हैं जबकि कुछ के पद पर्याप्त संख्या में आये हैं। जयदेव के २, त्रिलोचन के ४, रामानन्द, सधना, सेन, परमानन्द एवं भीखम का एक-एक, वेणी के ३ तथा धन्ना के केवल ४ पद लिए गये हैं जबकि रविदास के ४१, फरीद के पद और श्लोक १३४ तथा कबीर के २९२ पद और २४९ श्लोकों को स्थान दिया गया है। भाटों के भी १२३ पद हैं। यह चयन कर पाना सरल नहीं था। इन संतों के जिन पदों को 'आदिग्रंथ' में स्थान दिया गया है, उसके चयन का मुख्य आधार गुरुमत के विचारों से समानता ही हो सकता था और इसके लिए गुरु अर्जुनदेव को कितना विशद अध्ययन और अनुशीलन करना पड़ा होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। उनके सम्मुख विपुल सामग्री रही होगी, किन्तु सूक्ष्मता से उसका अनुशीलन करके समुचित एवं उपयोगी सामग्री का ही चयन किया गया।

यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि इन कवियों की रचना को अपने 'धर्मग्रंथ' में स्थान देकर गुरु अर्जुनदेव ने अपनी धार्मिक उदारता तथा मानववादी दृष्टि का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया है। इन कवियों में विभिन्न धर्मों, मतों, जातियों, वर्गों एवं क्षेत्रों के लोग सम्मिलित हैं। हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। सूफी भी हैं और वैष्णव भी। निर्गुण धारा के कवि भी हैं और सगुणधारा के भी। ब्राह्मण भी हैं और हरिजन भी। इस रूप में 'आदिग्रंथ' का सम्पादन गुरु अर्जुनदेव की सामाजिक समानता एवं राष्ट्रीय भावना का भी परिचायक हैं।

'आदिग्रंथ' का सम्पादन कार्य भी बड़ी कुशलता से वैज्ञानिक पद्धति पर किया गया है। सम्पूर्ण वाणी को विभिन्न रागों में निबद्ध किया गया है और फिर उन्हें एक विशेष योजना के अन्तर्गत क्रम-व्यवस्था में रखा गया है। समस्त गुरुवाणी क्रमशः सिरी, माझ, गौडी, आसा, गूजरी, देवगांधारी, बिहागड़ा, बड़हस, सोरठ, धनासरी, जैतसरी, टोडी, बैराडी, तिलंग, सूही, बिलावल, गौंड, रामकली, नटनराइण, माली-गौड़ा, मारू तुखारी, केदारा, भैरव, बसंत, सारंग, मलार, कानडा, कल्याण, जैजैवंती एवं प्रभाती इन ३१ रागों में विभक्त की गई है। पहले विशिष्ट, राग में गुरु नानक (महल्ला-१) की वाणी आती है, फिर क्रमशः दूसरे (महल्ला-२) तीसरे (महल्ला-३), चौथे, (महल्ला-४), पाँचवें (महल्ला-५) एवं नवें गुरु (महल्ला-९) की वाणी रखी गई हैं। उसके पश्चात् सन्तों एवं भक्तों आदि की। आरम्भ सिरी राग से किया गया है जोकि बड़े रागों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है और समाप्ति प्रभाती राग से होती है। रागों की व्यवस्था भाव, विषय, मनःस्थिति एवं समय के अनुरूप की गयी है। वैज्ञानिक ढंग से राग के अन्तर्गत एक पदे, द्विपदे,

त्रिपदे, चौपदे, छः पदे, पंचपदे, अष्टपदियाँ, सोलिहे, छंत, वार आदि के क्रम से वाणी रखी गयी है। पद छोटे भी हैं और बड़े भी। इनकी तुकों के आधार पर ही इन्हें ये नाम दिये गये हैं। प्रत्येक राग में किसी गुरु की कितनी वाणी है तथा उसमें कितने एकपदे, द्विपदे, चउपदे आदि हैं, इसकी संख्या भी साथ-साथ दी गयी है। इन रागों के अन्तर्गत पहरे, वणजारा, बारहमाहा, दिनरैणि, बिरहड़े, पट्टी, करहले, वावन अखरी, सुखमनी, थिति, घोड़ियां, अलाहणियां, आरती, अनदे, सद्, सिद्धगोसटि, अंजुलिया, जापु, सोलहे, वार, गाथा, फुनहे आदि कुछ अन्य शीर्षकों से भी वाणी आई है। गुरुजी ने संगीत शास्त्रीय नियमों का कठोरता से पालन नहीं किया, वरन संगीत की देशी विधि को अधिक अपनाया गया हैं। वस्तुतः, 'आदिग्रंथ' की मनोहारी संगीतात्मकता एवं लयात्मक विशिष्टता के कारण इसे अब 'गुरुमत संगीत' की संज्ञा भी दी जाने लगी है। गुरुजी ने संगीत की सार्थकता भी प्रभुप्रेम के गायन से मानी है।

वस्तुतः, 'आदिग्रंथ' की सम्पादन पद्धति से गुरु अर्जुनदेव की साहित्यिक प्रतिभा, व्यापक अध्ययन, मौलिक चिंतन, मानववादी एवं समन्वयवादी उदार दृष्टि, संगीत शास्त्रीय विशद ज्ञान आदि का भरपूर परिचय मिलता है। काव्य की विविध शैलियों एवं विभिन्न काव्यरूपों से भी वे भली-भाँति परिचित थे और किस काव्य शैली को और किस काव्य रूप को किस राग में प्रस्तुत करना उचित होगा, इसकी उन्हें सम्यक जानकारी थी। गुरुजी को रागों की प्रवृत्ति का भी पूर्ण ज्ञान था और मनुष्य की आध्यात्मिक साधना में क्रमिक विकास की प्रक्रिया को ध्यान में रखकर ही उन्होंने उसके अनुरूप रागों की क्रम-व्यवस्था की है, जो श्रोता के मन पर तद्नुरूप अमिट प्रभाव डालती है। निस्सन्देह, 'आदिग्रंथ' का सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं धार्मिक दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। यह भक्ति, ज्ञान, वैराग्य से परिपूर्ण रचना है और प्रभुप्रेम की पवित्र एवं निश्छल अनुभूतियों की इसमें मार्मिक व्यंजना हुई है। यह सिक्ख इतिहास, संस्कृति और परम्परा का प्रतीक ग्रंथ है और इसने सिक्खों के सामाजिक एवं धार्मिक आचार का निर्देशन करके उन्हें एक सूत्र में बाँधने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यह सिक्खों की साहित्यिक परम्परा का स्रोत एवं उनके सांस्कृतिक एवं बौद्धिक चिंतन का प्रकाश स्तम्भ है। निश्चय ही समाज और साहित्य को गुरु अर्जुनदेव की यह एक विलक्षण एवं अद्वितीय देन है।

कृतित्व

गुरु अर्जुनदेव की वाणी उपर्युक्त जिन शीर्षकों के अन्तर्गत रखी गई है उनमें 'बारहमासा' में बिरहणी जीवात्मा की बारह महीनों में होने वाली मनःस्थिति का चित्रण किया गया है। इसका मुख्य विषय आध्यात्मिक है जिसमें यह प्रति-

दादित किया गया है कि अटल सुहाग परब्रह्म के वियोग के कारण ही जीवात्मा को वर्ष के बारह महीनों में कष्ट सहना पड़ता है। जैसे--आषाढ़ के विषय में कहा गया है कि यह महीना उन्हीं के लिए तपता है जो प्रभु का नाम स्मरण नहीं करता।[1] इन पदों में आध्यात्मिक प्रेमानुभूति की व्यंजना बड़ी सरल और सरस शैली में की गई है। इनमें प्रभु मिलन के उपाय और प्रेरणा तथा मिलन अनुभूति के सुख की झलक भी मिलती है।

'बावन अक्षरी' यद्यपि वर्णमाला के बावन वर्णों के आधार पर लिखी रचना है, पर इसका विषय भी आध्यात्मिक चिंतन, प्रभुभक्ति, नाम के महत्त्व एवं गुरु स्तुति से सम्बन्धित है। गुरुजी ने गउडी, गूजरी, जैतसरी, रामकली, मारूबसन्त रागों में कुछ 'वारें' भी लिखी हैं जिनका विषय भी प्रभु का गुणगान करना है और हरि के प्रति अपनी भक्ति को प्रदर्शित करना है। इन 'वारों' में अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है और भाषा के विविध रूपों (ब्रज, पंजाबी) के दर्शन होते हैं। पहले पहरे के अन्तर्गत पाँच पद आए हैं, जिनमें मानव जीवन के—शैशव, यौवन, जरा, मृत्यु आदि पाँच सोपानों का वर्णन करते हुए मानव जीवन की विभिन्न स्थितियों का चित्रण तथा नाम महिमा के महत्त्व का निरूपण किया गया है। 'थिति' में व्रत उपवास आदि बाह्य कर्मकाण्डों की निन्दा करते हुए नाम-स्तुति के महत्त्व को दर्शाया गया है। इसी तरह 'दिन रैणी' में भी हरि स्मरण की प्रेरणा दी गई है। 'बिरहड़े' में मनुष्य को सांसारिक धन सम्पति आदि से अनासक्त होकर संतोषी जीवन व्यतीत करते हुए प्रभु स्मरण की प्रेरणा दी गई है। 'फूनहे' में भी माधुर्य भाव से ओतप्रोत पद हैं जिनमें जीवात्मा की अपने प्रिय परमात्मा के प्रति आकुलता आदि की अभिव्यंजना की गई है। यह पंजाबी लोक-गीतों की पद्धति पर लिखी गई रचना है।

गुरु अर्जुन देव की सबसे प्रमुख और महत्त्वपूर्ण रचना है 'सुखमणि' जो गोड़ी राग में लिखी गई है। यह सूत्रात्मक शैली में रचित एक लम्बी रचना है जिसमें ब्रह्म, जीव, माया, सृष्टि आदि के स्वरूप का चिंतन करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि वास्तविक सुख क्या है और मनुष्य उस सुख की उपलब्धि कैसे कर सकता है। गुरुजी के अनुसार प्रभु सभी सांसारिक सुखों का प्रदाता है और ये सब सुख भी नाम स्मरण, गुरुसेवा, साधु-संगति, अहंकार के त्याग एवं विनम्रता ग्रहण करने से प्राप्त होते हैं। ब्रह्म की अनन्तता, अद्वैतता एवं सर्वशक्तिमत्ता, शरीर और संसार के मिथ्यात्व आदि पर प्रकाश डालते हुए गुरुजी ने अहंकार के त्याग, सत्संगति, नामस्मरण, हुकम (गुरु-कृपा) एवं गुरु के महत्त्व तथा माया जनित कष्टों एवं सांसारिक दुःखों से त्राण पाकर

---

१. आषाढ़ तपदा तिसुलगै हरिनाहुन बिति पासि पृ० 134

शाश्वत सुख एवं अनंत आनंद कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इसका प्रतिपादन किया है। गुरुजी ने सरल भक्ति मार्ग का निरूपण करते हुए सभी लौकिक पार-लौकिक सुखों की प्राप्ति हरि-स्मरण से मानी है। प्रभु-नाम सुखों की मणि है और सुखों का भंडार 'नाम' से ही उपलब्ध होता है और प्रभु-स्मरण से सब दुःखों, कष्टों, संताप एवं आवागमन का नाश होता है।[२]

वस्तुतः, 'सुखमणि' में आध्यात्मिक और व्यावहारिक सुखों की प्राप्ति के साधनों का विस्तार से निरूपण किया गया है। यह रचना परम तत्त्व से तादात्म्य हेतु आध्यात्मिक प्रवृत्ति की प्रेरणा देती है और व्यावहारिक जीवन में सुख और शान्ति के लिए समाधान प्रस्तुत करती है तथा सुखी जीवन के प्रति आस्था जगाती है। आत्मा को आध्यात्मिक चिंतन और प्रभु-भक्ति से शान्ति, आशा और सुख प्राप्त होता है और व्यावहारिक जीवन में विनम्रता और दीनता मनुष्य कों सुखी बनाते हैं। गुरुजी ने मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए 'सचुकरनी' और 'सचुकथनी' पर भी विशेष बल दिया है।

वस्तुतः, गुरु अर्जुन देव के सभी पदों एवं रचनाओं का मुख्य और केन्द्रीय विषय आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित है। उनके पदों में पुनः-पुनः और भिन्न-भिन्न रूपों में अथवा भिन्न-भिन्न दृष्टांतों एवं रूपकों के माध्यम से ब्रह्म, जीव, जगत-सृष्टि, माया आदि के स्वरूप; सांसारिक वैभव, ऐश्वर्य, शक्ति एवं सम्बन्धों की नश्वरता; भोग-विलास की व्यर्थता; काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा एवं अहंकार आदि के त्याग; सत्य, संयम, सन्तोष, क्षमा, दया, विनय, परोपकार आदि को धारण करने; साधु-संगति एवं सत्संगति के महत्त्व; गुरु, गुरुकृपा एवं गुरु-उपदेश के महत्व; नामस्मरण; दुष्कर्मों के त्याग एवं शुभ-कर्म करने; आवागमन एवं अन्य दुखों से मुक्ति के उपाय; सुख-दुख-अपमान, स्तुति-निन्दा से ऊपर उठकर हरि-गुणगाथा करते हुए शान्ति-सुख की उपलब्धि के उपायों आदि का विशदता से प्रतिपादन किया गया है।

गुरु अर्जुनदेव ने ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण विविध पदों में विस्तारपूर्वक किया है। उनके अनुसार परब्रह्म परमेश्वर, अगम, अगोचर, अलख, अकाल मूरति, अजूनि, निरभय निरवैर, सत्य, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, शक्तिमान, सर्जक, सर्वोच्च, सर्व समर्थ है। सब स्थानों में सभी दिशाओं में, यहाँ-वहाँ, घर-घर में,

---

२. प्रभु के सिमरनि दुखु जन नसै।
प्रभु के सिमरनि काल पर हसै।
प्रभु सिमरन कुछु विघन न लागे।
प्रभु के सिमरन भउ न आये।
प्रभु के सिमरन दुख न संतायें।

सर्वत्र वही व्याप्त है। उसी एक का सर्वत्र प्रसार है। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। उसी की ज्योति का सब ज्योतियों में विस्तार है। पशु-पक्षी, जल-थल, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा सबका वही निर्माता है। वही निर्गुण भी है और सगुण भी। समस्त जग-रचना प्रभु ने आप ही की है। आप ही वह सारे जगत में व्याप्त है उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। जगत के आदि में भी आप ही था, अब भी आप ही है। जगत के अन्त में भी आप ही रहेगा। आप ही अपने सुख स्वरूप में टिका होता है, अपनी शोभा सुनने वाला भी वह आप ही है, यथा—

दुख भंजन निधान अमोले।
निरभउ निरवैर अथाल अतोले।
अकाल मूरति, अजूनी सभौ···।
सदा संगी हरि रंग गोपाला।

(माझ म० ५/४/६/१६)

× × ×

पार ब्रह्म अपरंपर देवा।
अगम अगोचर अलख अभेवा।
दीन दइआल मधुसूदन निसतारे।
गुरमुखि संगी क्रिसन मुरारे।
बड समरथ सदा दातारा॥

(माझ म० ५/४/६/१३)

× × ×

निरंकार आकार आपि निरगुन सरगुन एक।
एकहि एक बखानबो नानक एक अनेक॥

(गउड़ी बावन अखरी महला-५)
श्लाकु-पउड़ी-२

× × ×

आपहि कीआ कराइआ आपहि करनै जोगु।
नानक एको रवि रहिआ दूसर होआ न होगु।
आदि मधि अंति निरंकारं।
आपहि सुनं आपहि सुख आसन।
आपहि सुनत आप ही जासन।
आपन आपु आपहि उपाइओ।
आपहि बाप आप ही माइओ।

(गउडी बावन अखरी म०-५)
श्लोकु पउड़ी-१

वही निराकार, अगोचर, अगम, अकाल, अलख-निरंजन भी है और वही

गोविन्द, हरि, केशव, दामोदर, कृष्ण, गोपाल, मुरारि, श्याम, मुकुन्द, मधुसूदन, लक्ष्मीपति और राम भी हैं। यथा—

जपि मना तू राम नराइनु गोविंदा हरि माधो।
धिआइ मना मुरारि मुकंदे करीए करल दुख फाधो।
सिमरि मना दामोदर-दुख हरू मैं भंजन हरिराईया।
करुणामै समरथु सुआमी घट-घट प्राण अधारी।
गुण गाऊ मना अचुत अविनासी सभते ऊच दईआला।
विसंभरू देवनकउ एकै सरब करै प्रतिपाला।

(गउडी ३ म० ५/सलोकू/३)

वह ठाकुर, बादशाह, सच्चा पातशाह और करुणामय, दीनदयाल, अनाथ-नाथ, निराश्रितों का आश्रय, दुःख भञ्जक सुखदाता है। वह दीन-दुखियों के दुःख रूपी तिमिर को नष्ट करके उन्हें ज्ञान का सुखदायक मार्ग दिखाता है। वही सर्व-ज्ञाता, सर्वप्रदाता, पावन एवम् परम सुन्दर है। वही जीव का माता, पिता, बन्धु, मित्र एवम् रक्षक है। यथा—

तूं मेरा पिता तूं है मेरा माता, तूं मेरा बन्धपु तूं मेरा भ्राता।
तूं मेरा राखा समनी थाई, जीअ जंत सभितुधु उपाए।

(माझ म० ५/४/३९/४६)

उसके स्मरण-मात्र से जीव के सारे पापों का नाश हो जाता है और वह आवागमन से छूटकर शान्ति एवम् आनन्द को प्राप्त करता है। वही सर्वकर्त्ता है, वही मारने और जिलाने वाला है, सब कुछ उसी के हाथ में है। उसी के 'हुकम' से 'सृष्टि' का प्रसार होता है। सब कुछ उसी के शासन में चल रहा है और उसका शासन अटल है।

प्रभु का न कोई रूप है, न चिह्न-चक्र और न कोई रंग। वह माया के तीनों गुणों से बेदाग़ है—

रूप न रेख न रंगु किछु त्रिहु गुण ते प्रभ भिन।

(सुखमनी म० ५/सलोकु/८/१५/१)

उसका रूप और ठिकाना सत्यस्वरूप है—

रूपु सति जा का सति असथानु।

(वही, म० ५ सलाकु ८/१५/६)

उस प्रभु का अस्तित्व आदिकाल से ही है। वह युगों के शुरू से ही मौजूद है, इस वक्त भी मौजूद है और भविष्य में भी सदा स्थिर रहेगा—

आदि सचु जुगादि सचु।
है भि सचु नानक होसी भि सचु॥

(सुखमनी म० ५/सलोकु ८/१६/१)

आप ही आप होता है। जो कुछ उसने बनाया है, अपनी मौज में बनाया है। वह सब जीवों के साथ भी है और सबसे अलग भी। वह स्वयं ही एक है और स्वयं ही अनेक रूप धारण कर रहा है। वह सब कुछ देखता, समझता और पहचानता है। वह न कभी मरता है, न जन्मता है। वह प्रभु सदा ही अपने आप में टिका रहता है—

करन करावन करनै हारु।

आपे आपि आपि प्रभु सोहू।

जो किछु कीनो सु अपनै रंगि।
सभ ते दूरि सभहू कै संगि॥

आपहि एक आपहि अनेक।

मरै न बिनसै आवै न जाइ।
नानक सद ही रहिआ समाइ॥

(सुखमनी म० ५/८/११६/)

वह प्रभु अत्यन्त सुन्दर, अनन्त, अगम्य और अप्रतिम है। उसका रूप बेहद प्यारा है। उसकी वाणी बहुत मधुर है जो कि प्रत्येक शरीर में कानों द्वारा सुनी और जिह्वा द्वारा कही जा रही है—

भला भला भला तेरा रूप।
अति सुन्दर अपार अनूप।
निरमल निरमल निरमल तेरी बाणी।
घटि घटि सुनी स्रवन बख्याणी॥ (सुखमनी म० ५/८/१२)

सब जीवों के भीतर एक अकालपुरुष ही व्याप्त है, उससे बाहर कोई चीज नहीं। वह बड़ा गम्भीर, गहरा, बुद्धिमान, सर्वोपरि, मालिक, जीवपालक, दया का भण्डार और क्षमाशील है—

तिस ते परै नाही किछु कोइ।
सरब निरंतरि एको सोइ।
आपे बीना आपे दाना।
गहिर गंभीरु गहीरु सुजाना।
पारब्रह्म परमेसुर गोबिंद।
क्रिपा निधान दइआल बखसंद। (सुखमनी म० ५, ८/१५/१)

उस प्रभु के घर में सदा-सर्वदा आनन्द और खुशियाँ व्याप्त रहती हैं, सारे

जागतिक पदार्थ वहाँ विद्यमान हैं। राजाओं में प्रभु आप ही राजा हैं, जोगियों में जोगी हैं, तपस्वियों में बड़े तपस्वी हैं और गृहस्थियों में भी आप ही गृहस्थी हैं—

अनद रूप मंगल सद जा कै।
सरब थोक सुनीअहि धरि ताकै।
राज महि राजु जोग महि जोगी।
तप महि तपीसरु ग्रिहसत महि भोगी। (वही, म० ५, ८/१५/२)

सारे जीव-जन्तु उस अकाल पुरुष के आसरे हैं। जगत् के समस्त भाग, तीनों भुवन तथा चौदहों लोक उसी अकाल पुरुष के टिकाए हुए हैं। वेद, पुराण, स्मृतियाँ, सारे आकाश और पाताल उसी प्रभु के आधार पर हैं—

नाम के धारे सगले जंत।
नास के धारे खंड ब्रह्मंड।
नाम के धारे सिम्रिति बेद पुरान।
नाम के धारे सुनन गिआन धिआन।
नाम के धारे आगास पाताल।
नाम के धारे सगल आकार।
नाम के धारे पुरीआ सभ भवन।
नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन। (वही, म० ५, ८/१५/५)

वह प्रभु जीवों के मन के स्वप्न पूर्ण करने तथा शरणागतों की सहायता करने में समर्थ हैं। उसका पलक झपकने के बराबर का समय जगत के पालन तथा नाश के लिए काफी है। उसका रहस्य कोई जीव नहीं जानता; इतना ही नही, समस्त देवगण भी उन्हें खोज-खोज कर थक गये हैं—

मनसा पूरन सरना जोग।
जो करि पाइआ सोई होगु।
हरन भरन जा का नेत्र फोरु।
तिस का मंत्रु न जानै होरु।

जाकी लीला की मिति नाहि।
सगल देव हारे अवगाहि। (वही, म० ५, ८/१५/२-३)

जिस मनुष्य को गुरु-कृपा से अपने-आप की सूझ हो जाती है, यह जान लो कि उसकी तृष्णा मिट जाती हैं। जो व्यक्ति सत्संग में बैठकर अकालपुरुष का गुणगान करता है, वह समस्त रोगों से बच जाता है। जो प्राणी प्रतिदिन प्रभु का कीर्त्तन उच्चरित करता है, वह गृहस्थी होते हुए भी निर्लिप्त होता है। जिस मनुष्य की आस उस एक अकालपुरुष पर है, उसकी यमों वाली फाँसी कट जाती हैं। जिस मनुष्य के मन में प्रभु-मिलन की उत्कंठा है, उस मनुष्य को कोई दुःख स्पर्श नहीं

करता—

गुर प्रसादि आपन आपु सुझै।
तिस की जानहु त्रिसना बुझै।
साध संगि हरि हरि जसु कहत।
सरब रोग ते ओहु हरि जनु रहत।
अनदिनु कीरतनु केवल बख्यानु।
ग्रिहसत महि सोई निरबानु।
एक ऊपरि जिसु जन की आसा।
तिस की कटीऐ जम की फासा।
पारब्रह्म की जिसु मनि भूख।
नानक तिसहि न लागहि दूख।

(वही, म० ५, ८/१३/४)

जीव

गुरु अर्जुनदेव की धारणा हैं कि जीव ब्रह्म का ही रूप है। वह प्रभु से अभेद हैं। ठीक वैसे ही जैसे जल से अनेक तरंगें उठती हैं, उसी से बनती हैं और उसी में समा जाती हैं। अथवा जैसे कनक से अनेक प्रकार के आभूषण बनते हैं।[1] संसार के सभी जीव परमात्मा की इच्छा शक्ति का ही परिणाम हैं। जीव का वास्तविक रूप आनन्दमय, अनश्वर, शाश्वत व अमर है। "वह न मरता है न उसे कोई मार सकता है।"[2] "वह परमात्मा कभी नहीं मरता, अतः, हमें भी मृत्यु से नहीं डरना चाहिए। वह परमात्मा कभी नष्ट नहीं होता, अतः हमें भी विनाश की चिन्ता नहीं होनी चाहिए। उसे कोई दुख स्पर्श नहीं करता, हमें भी कोई दुख नहीं स्पर्श करेगा।" उस परमात्मा को विकारों की मैल नहीं लग सकती, हमें भी मैल नहीं लगनी चाहिए। उसे सदा आनन्द ही आनन्द है, हम भी सदा प्रसन्न रहें—

"ना ओहु मरत ना हम डरिआ। ना ओहु बिनसै ना हम कडिआ।
ना ओहु निरधनु ना हम भूखे। ना ओसु दुखु न हम कउ दूखे॥१॥
अवर न कोऊ मारनवारा। जीअउ हमारा जीअ देनहारा॥१॥ रहाउ"
ना उसु बंधन ना हम बाधे। ना उसु धंधा ना हम धाधे।
ना उसु मैलु ना हम कउ मैला। ओसु आनंद त हम सद केला॥२॥
ना उसु सोचु न हम कउ सोचा। ना उसु लेप न हम कउ पोचा।
ना उसु भूख न हम कउ त्रिसना। जा उहु निरमलु तां हम जचना॥३॥

---

१. एकै कनिक अनिक भांति साजी बहु परकार रचाइओ॥
(४/२/१२३ गउडी पूरबडी महला ५

२. मरणहार इहु जीअरा नाही॥ ३/४३/११२ गउडी म० ५

हम किछु नाही एकै ओहो। आगै पाछै एको सोई।
नानक गुरि खोए भ्रम भंगा। हम ओइ मिलि होए इकरंगा॥
(४/३२/८३ राग आसा महला ५७

"गुरु जी के मतानुसार जीव का परमात्मा से कोई अलग अस्तित्व नहीं है। माया के कारण जो अलगाव-बोध था, गुरु उस भ्रम को जब दूर कर देता है, तो जीव उसके साथ मिलकर एकरूप हो जाता है।" "सभी जीव उसी के बनाये हुए हैं; उसे जो भी सुख या दुख मिल रहा है, वह उसी की मर्ज़ी से मिलता है, तथा संसार में जो भी घटित हो रहा है, वह उसी की इच्छा से हो रहा है। अतः, जो जीव उसके 'हुकम' को समझ लेता है, वह उसी में समा जाता है—

जेते जीअ तेते सभि तेरे।
तुमरी क्रिपा ते सूख घनेरे॥२॥
जो किछु बरतै सभ तेरा भाणा।
हुकम बूझै सो साचि समाणा॥१॥
(३/६६/१३५ गउडी म० ५)

जगत में जितने भी जीव हैं, सब उसी के पैदा किये हुए हैं—

जेते जीअ तेते सभि तेरे। (४/६६/१३५ गउडी म० ५)

जीवात्मा न कभी बालक है, और न कभी बूढ़ा है। वह तो शाश्वत है। लेकिन, देह क्षणिक है, शरीर नाशवान है। मृत शरीर को जल प्रवाह किया जाता है, आग जला देती है, या मिट्टी खा जाती है—

ठंडी ताती मिटी खाई। ओहू न बाला बूढ़ा भाई॥१॥
(२/३३ आसा म० ५)

"अविद्या माया और अहंकार के कारण जीवात्मा इच्छा, कर्म और भावना का विषय होता है तथा कर्मफल भोगने के लिए शरीर बदल-बदल कर उसे संसार में आना पड़ता है। उसे आवागमन में पड़ना पड़ता है। गुरु अर्जुनदेव का कथन है कि 'जीव भिन्न-भिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है। कहीं वह विद्वान है, तो कहीं मूर्ख, कहीं वह संग्रहकर्त्ता है तो कहीं बैरागी। संसार में जीव की स्थिति मीना बाज़ार की कठपुतली की तरह है, जोकि बाजीगर के इशारे पर नाचती रहती है। प्रभु जैसा स्वांग रचाता है, जीव वैसा ही स्वांग रचता है—

एक महलि तूं पंडित बकता एक महलि खलु होता।
एक महलि तूं सभि किछु ग्राहजु एक महलि कछू न लेता॥२॥
काठ की पुतरी कहा करै बपुरी खिलावन हारो जानै।
जैसा भेखु करावै बाजीगर ओहु तैसो ही साजु आनै॥
(५/५/१२६ गउडी म० ५)

जीवात्मा को सावधान करते हुए गुरु जी कहते हैं कि तू व्यर्थ ही योनियों के

चक्र में पडकर जीवन और मृत्यु के चारों ओर घूम रहा है।।जस तरह पशु हरे-भरे खेत को देख कर उसमें मस्त हो जाता है, अतः, जीव को परमात्मा के नाम का स्मरण करते रहना चाहिए, क्योंकि मृत्यु हर समय उसके साथ बसती है। गुरु-सेवा से माया के जाल को काटा जा सकता है। शिवं पुरी, इन्द्र पुरी, ब्रह्मपुरी—सभी नश्वर व अस्थाई हैं। शाश्वत आत्मिक आनन्द तो परमात्मा के स्मरण द्वारा ही सम्भव है—

सेवत सेवत सदा सेवि तेरे संगि बसतु है कालु।
करि सेवा तूं साध की हो काटिए जम जालु ॥१॥
होम जग तीरथ कीए बिचि हउमै बधे बिकार।
नरकु सुरगु दुइ भुंजना होइ बहुरि बहुरि अवतार॥
सिवपुरी ब्रह्म इन्द्रपुरी निहचलु को थाउ नाहि।
बिनु हरि सेवा सुख नहीं हो साकत आवहि जाहि॥
(३/१/१५८, रागु गउडी मालवा म० ५)

'सुखमनी' में गुरु जी ने कहा है कि "करोड़ों जीव पाताल में बसते हैं और करोड़ों ही नरकों व स्वर्गों में रहते हैं; करोड़ों जीव जन्मते हैं और करोड़ों जीव कई योनियों में भटक रहे हैं;···करोड़ों जीव धनवान बनाये हैं और करोड़ों ऐसे हैं, जिन्हें चिन्ता लगी हुई है; जहाँ-जहाँ चाहता है, वह जीवों को वहाँ-वहाँ रखता है।·····करोड़ों जीव वैरागी हैं, जिनकी सुरति अकाल-पुरुष के साथ लगी हुई है।·····करोड़ों जीवों को प्रभु के दर्शनों की इच्छा लगी हुई है; करोड़ों जीव सत्संग माँगते हैं, प्रभु से उनका प्रेम होता है। वे ही जीव भाग्यशाली है, जिन पर प्रभु प्रसन्न होता है। नौ खण्डों और चार दिशाओं में करोड़ों ही जीव उत्पन्न हुए हैं; सभी आकाशों, ब्रह्माण्डों में करोड़ों ही जीव हैं; करोड़ों ही प्राणी पैदा हो रहे हैं, जो प्रभु से पैदा होकर प्रभु में ही लीन हो जाते हैं। करोड़ों जीव प्रभु के सेवक है; उनकी आत्मा में प्रभु का प्रकाश हो जाता है। करोड़ों व्यक्ति प्रभु नाम का आनन्द प्राप्त करते हैं। वे जन्म-मरण से रहित होकर सदा ही जीते रहते है। वे आत्मिक आनन्द, सुख तथा स्थिर अवस्था में टिके रहते हैं।"*

गुरु अर्जुनदेव के अनुसार प्राणी दो प्रकार के होते हैं—'गुरमुख' और 'मन-मुख'। 'गुरमुख' ही 'ब्रह्मज्ञानी', 'वास्तविक ब्राह्मण', 'वैष्णव', 'वास्तविक भक्त', 'असली पंडित' व 'जीवन मुक्त' प्राणी होता है। दयालुता, सर्व हित चिन्तन, परोपकार, करुणा, विनम्रता, समता, मैत्री, प्रेम, लोक-सेवा आदि 'गुरमुख' के प्रमुख लक्षण हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मत्सर, तृष्णा आदि को त्याग कर वह सत्य, संयम, संतोष, दया, धर्म को ग्रहण करता है। उसका मन दुविधा

---

* ८/१० गउडी सुखमनी महला ५-सलोकु।

से रहित व आनन्द का स्रोत होता है। न वह किसी की निन्दा करता है न खुशामद, वह भयमुक्त तथा सुख-दुख में समभाव रखता है। किसी को दुख नहीं देता।

'सुखमनी' में गुरु जी ने 'ब्रह्मज्ञानी' के लक्षणों का विस्तार से निरूपण किया है। उनके अनुसार जिसके मन में सदा सत्यस्वरूप प्रभु है, जो एक अकाल-पुरुष के अतिरिक्त किसी अन्य को नहीं देखता, जो समदर्शी है, वह 'ब्रह्मज्ञानी' है। वह मनुष्य विकारों से रहित जल में कमल के समान निर्लिप्त रहता है—

मनि साचा मुखि साचा सोइ। एवरु न पेखै एकसु बिनु कोई।
नानक इह लक्षण ब्रह्मगियानी होई ॥१॥
ब्रह्मगिआनी सदा निरलेप। जैसे जल महि कमल अलेप।
ब्रह्मगिआनी सदा निरदोख। जेसे सूरू सरब कउ सोख।
ब्रह्मगिआनी कै द्रिसटि समानि। जैसे राज रंक कउ लागै तुलि पवान।
ब्रह्मगिआनी कै धीरज एक। जिउ वसुधा कोऊ खोदै कोऊ चंदन लेप।
ब्रह्मगिआनी का इहै गुनाउ। नानक जिउ पावक का सहज सुभाउ ॥
(८/८/१ सुखमनी म० ५)

'ब्रह्मज्ञानी' के अन्य अनेक सद्गुणों का वर्णन यहाँ विस्तार से किया गया है।

इसी प्रकार "जो मनुष्य प्रभु की माया से अप्रभावित तथा निष्कलंक है, जो कर्म करता हुआ फल की इच्छा नहीं रखता, जो भक्ति और कीर्तन में मस्त रहता है, जिसके मन-तन में प्रभु का स्मरण बस रहा है, जो सब जीवों पर दया करता है, जो आत्मिक पवित्रता में कर्त्तव्य का पालन करता है, वह **'वैष्णव'** का उच्च स्थान प्राप्त करता है।[3]

'पंडित' भी वह है, जो अपने मन को शिक्षा देता है, और प्रभु के नाम को अपने मन में खोजता है; जो यह जानता है कि सारा दृश्यमान जगत अदृश्य प्रभु के आसरे है। जो चारों वर्णों को उचित शिक्षा देता है। ऐसा 'पंडित' दोबारा जन्म में नहीं आता।[4]

'पूर्ण संत' वह है जिनकी साँस लेते और खाते हुए कभी परमात्मा विस्मृत नहीं होता; जिनके मन में परमात्मा का नामरूपी मंत्र है।[5]

वास्तविक **'ब्राह्मण'** वह हैं, जो परमात्मा से ऐक्य करते हैं। जो लोगों का मार्ग दर्शन कर उन्हें उचित शिक्षा देते हैं—

---

३. ८/२ सुखमनी महला ५।
४. ८/४ वही।
५. ५/८ गउडी की वार महला ५।
६. श्लोक ३९ गउडी बावन अखरी महला ५।

बबा ब्रह्मु जानत ते ब्रह्मा। बैसनों ते गुरमुखि सुच धरमा।
ब्राह्मण सो जो जन प्रबोधै[७]—

इसी प्रसंग में गुरु जी ने ढोंगी और पाखंडी ब्राह्मणों का भी विवरण प्रस्तुत किया है। "यजमान तो उन्हें दान देकर उनकी पूजा करते हैं, पर वे उनका धन्यवाद तक नहीं करते। ऐसे ब्राह्मणों को डूबे हुए जानो जो निर्दोष व्यक्तियों को हानि पहुँचाने के तरीके सोचते रहते हैं। इन ब्राह्मणों के मन में लोभ होता है; ये पागल हुए घूमते रहते हैं। माया के भ्रम में भूला हुआ यह ब्राह्मण दुखी होता फिरता है ! वे लोक दिखावे के लिए कई वेश धारण करते हैं। वह आप तो धर्म के वास्तविक स्वरूप को पहचानते नहीं, पर दूसरों को उपदेश करते हैं। ऐसे मूर्ख ब्राह्मणों को सचेत करते हुए गुरु जी कहते हैं कि यदि तेरे भाग्य जागें तो जाति अभिमान छोड़कर गुरु की शरण ले।"[८]

गुरु जी का कथन है कि ऐसा समदर्शी 'संत', 'वैष्णव', 'जीवन मुक्त' व्यक्ति सदा आनन्द रूप होता हैं। 'गुरुमुख' चारों फलों का प्रदाता, अहंकार को नष्ट करने वाला, सर्व हित चिन्तक एव दयालु होता है। ऐसे 'गुरमुख' के चरणों की धूलि लाखों-करोड़ों प्रयाग आदि तीर्थों से अधिक पवित्र है।[९] गुरु जी कहते हैं कि "मैं उस 'गुरमुख' के चरण धोऊँ, मेरे तन-मन में वह सदा प्यारा लगे, वह नित्य नाम सुने, नाम धन एकत्रित करे और नाम से ही सुरति जोड़े रखे। उसके आने से सारा घर पवित्र हो जाए। मैं भी प्रभु के गुण गाने लग जाऊँ।"[१०]

दूसरे प्रकार के प्राणी 'मनमुख' होते हैं, जो अपने दुष्कर्मों के कारण गाँठ की पूंजी भी गँवा बैठते हैं और निरन्तर आवागमन के चक्र में पड़े रहते हैं।

गुरु अर्जुनदेव ने एक स्थान पर 'गुरु-मुख' और 'मनमुख' के अन्तर को बड़ी सहजता से प्रकट किया है। उनका कथन है कि 'गुरुमुख' ही मुक्त है और 'गुरमुख' ही परमेश्वर से जुड़ा हुआ है। 'गुरुमुख' ज्ञाता है और 'गुरुमुख' ही सतिगुरु के यश का उच्चारण करने वाला है। यदि 'गुरुमुख' गृहस्थी है, तो भी धन्य है और यदि 'गुरुमुख' उदासी है तो भी धन्य है।"

'मनमुख' अहंत्व में बँधा हुआ है, 'गुरुमुख' अहंत्व से मुक्त है। 'गुरुमुखों' के कर्म सफल हैं। 'गुरुमुख' ही निर्लिप्त है। 'गुरुमुख सुखी' है, 'मनमुख दुखी' है। 'गुरुमुख' सम्मुख है, और 'मनमुख' विमुख है। 'गुरुमुख' होने से मिलाप होता है और

---

७. ४/८ आसा महला ५।
८. १६/श्लोक म० ५।
९. २५/१ गउडी की वार महला ५ सलोकु।

मनमुखता के कारण बिछोड है।"[10]·····

गुरु अर्जुनदेव ने जीव के पूर्व कर्मानुसार उसकी विभिन्न योनियों का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार ये जीव अनेक योनियों में बास लेते है, मीठे मोह में मस्त होकर योनियों के चक्र में फँस जाते हैं।[11] उन्होंने जीव की ऐसी चौरासी लाख योनियों की भी चर्चा की हैं।[12] वे कितने ही जन्मों में कीड़े, पतंगे, हाथी, मछली, हिरण, पक्षी, साँप, घोड़े, बैल की योनियाँ प्राप्त करते हैं। चिरकाल के बाद मनुष्य का शरीर मिलता है।"[13] गुरु जी का कथन है कि "गर्भ से छुटकारा पाते ही जीव—स्त्री, पुत्र, भोजन, बसन आदि के मोह में पड़ जाता है, लेकिन जिनके मन में प्रभु बसता है उनका जन्म-मरण समाप्त हो जाता है। माया के बंधन में बँधे जीव का आवागमन भी प्रभु-स्मरण व प्रभु-कृपा से ही समाप्त होता है।

एक स्थान पर गुरु जी ने जीव रूपी स्त्री के विकारों का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। उनका कथन है कि हे जीव-स्त्री तू कुलीन है, तेरा वंश भी महान है, तेरी देह सुन्दर है, लेकिन तेरा रूप कुरूप हो गया है, क्योंकि तेरे मन में 'अहकार' है। तू सुन्दर है, रूपवान है, बुद्धिमान है, चतुर है, लेकिन तू बड़े '**अहंकार**' व मोह में फँसी पड़ी है। तेरी रसोई साफ-सुधरी है, तू स्नान करके पूजा भी करती है, माथे पर लाल तिलक लगा लेती है, मुख से ज्ञान की बातें भी करती है, लेकिन, कुत्ते रूपी '**लोभ**' ने तेरी महानता को गँवा दिया है। तू सुन्दर कपड़े पहनती है, दुनिया में शोभा पाने के लिए इत्र, चन्दन आदि सुगंधियाँ प्रयुक्त करती है, लेकिन चाण्डाल '**क्रोध**' तेरा हमेशा साथी है। दूसरी सब योनियाँ तेरी सेवक है, धरती पर तेरा ही प्रभुत्व है, तेरे पास सोना चाँदी आदि धन पदार्थ हैं, लेकिन, '**काम-वासना**' ने तेरा स्वभाव विकृत कर दिया है। परन्तु जिस स्त्री पर प्रभु की कृपा-दृष्टि होती है, उसे वह लोभ, अहंकार, काम, क्रोध, मोह आदि की कैद से मुक्त कर देता है। जिसने सत्संगति में परमात्मा के नाम का आस्वादन किया, वह शरीर ही सफल है। यदि तू प्रभु-पति वाली बन जाए, तो समस्त सौन्दर्य तथा सुख तुझे सुशोभित हो, तू बड़ी सुन्दर व चतुर बन जाए।[14]

निःसन्देह, यहाँ भी गुरु जी ने मायाग्रस्त जीव की स्थिति और उससे मुक्ति का निरूपण किया है। उनका मत है कि जैसे पानी में पानी मिलकर एकरूप हो

---

१०. ९/२/३६ माझ महला ५।

११. श्लोक ७ गउडी बाबन अखरी महला ५।

१२. ४/६/१४४ गउडी महला ५।

१३. ४/३/७२ गउडी गुआरेरी महला ५; ८/४ गउडी महला ५।

१४. १८५/१२ आसा महला ५ पंचपदे ३।

जाता है, वैसे ही सत्संग व प्रभु-स्मरण से तथा शुभ कर्मों से आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। उसका आवागमन का चक्र समाप्त हो जाता है।

मानववाद बनाम मानवतावाद

दार्शनिक दृष्टि से गुरु अर्जुनदेव की जीव-सम्बन्धी अवधारणा उपनिषदों अथवा 'श्रीमद्भगवद्गीता' से कितना साम्य रखती है अथवा षड्दर्शन के सन्दर्भ में उसकी क्या स्थिति हैं, इसकी मीमांसा करने के ऊहापोह में न पड़कर यहाँ एक अन्य विशिष्ट तथ्य द्रष्टव्य है। जहाँ एक ओर यह कहकर कि—"जगत में जितने भी जीव हैं, सब उसी परमात्मा के उत्पन्न किये हुए हैं"[१५]; सब जीवों के अन्तर में वही प्रभु समाया हुआ है"[१६]; "सब जीवों की एक ही मिट्टी है, सबमें एक ही ज्योति है, सबमें एक जैसे ही प्राण हैं"[१७]; हर एक जीव में वह प्रभु बसता है, ऊँच-नीच सब जीवों में एक जैसा विद्यमान है, कीड़े से लेकर हाथी तक सब उसी प्रभु से बने हैं"[१८]; गुरु जी आध्यात्मिक/धार्मिक तथा सामाजिक स्तरों पर 'मानववादी' चेतना का सशक्तता से प्रवर्त्तन करते हैं; वहीं यह कहकर कि "अणु-अणु मे वही व्याप्त है, प्रत्येक जीव में उसी का अंश है, अतः प्रत्येक मनुष्य के प्रति दया और सहानुभूति होनी चाहिए", वे 'मानवतावाद' की प्रतिष्ठा करते हैं।

गुरु अर्जुनदेव ने स्थान-स्थान पर सत्य, संतोष, दया, धर्म, करुणा, परोपकार, प्रेम, समता, मैत्री, सत्संगति, विनम्रता, कृतज्ञता, लोक-सेवा व लोक-मंगल आदि मानवीय मूल्यों की प्रशंसा की है और उन्हें ग्रहण करने पर जोर दिया है, तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मत्सर, तृष्णा, कृतघ्नता, विश्वासघात, वैर, विरोध-निन्दा, परहित, परस्त्री गमन, परधन प्रलोभन आदि कुकर्मों एवं अमानवीय कुवृत्तियों की कड़े शब्दों में भर्त्सना की हैं और उन्हें त्यागने का उपदेश दिया है। और इस तरह एक स्वस्थ 'मानवतावादी' दर्शन की स्थापना की है। 'गुरुमुख' की संकल्पना में भी उनका यही 'मानवतावादी' चिन्तन निहित है। उनकी

---

१५. जेते जीऊ तेते सभि तेरे। ४/६६/१३५ गउडी महला ५।

१६. (i) सरब निरंतरि एको सोई। १/८/१६ सुखमनी म० ५ सलोकु।
(ii) सरब निरंतरि एको देखु। ८/१९ सुखमनी म० ५ सलोकु ७।

१७. एक माटी एका जाति। एको पवनु कहा कउनु रोति। २।
(४/४३/११३ गउडी म० ५)

१८. जलि थलि महीअलि पूरिआ घटि घटि हरि भणिया।
ऊच नीच सभ इक समानि कीट हसती बणिआ।
(सलोक ५/७ गउडी की वार म० ५)

सम्पूर्ण वाणी में सर्वत्र एक 'अच्छे मानव', 'एक श्रेष्ठ मनुष्य', 'एक आदर्श व्यक्ति', एक 'पूर्ण संत' एवं एक 'पूर्ण मानव' की संरचना का संकल्प हैं, और आदर्श नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करके वे 'मानवतावादी' चेतना को जगाना चाहते हैं। वे बार-बार यह कहते पाये जाते हैं कि एक 'अच्छा इंसान' कैसे बना जा सकता है। उनका कहना है कि जो वैर, विरोध, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, स्वार्थ व दुष्कर्मों से मुक्त हों, किसी को दुख न देता हो, सभी जीवों से प्रेम करता हो, सब का हित चाहता हो, सब जीवों पर दया करता हो, संतों की संगति में रहता हो, संतों एवं दीनों की सेवा करता हो, सांसारिक ऐषणाओं में आसक्ति न रखता हो, इन्द्रियों को वश में करके संतोष और परोपकार का जीवन व्यतीत करता हो, और निरन्तर प्रभु का स्मरण करता हो, वही एक 'अच्छा इंसान' है, एक आदर्श व्यक्ति है, 'पूर्ण मानव' है।

उन्होंने यह भी कहा हैं कि जिस सेवक को परमात्मा ने उच्च जाति आदि के अहंकार से रहित कर दिया है, जिसमें सामाजिक समता का भाव है, उसे किसी की ईर्ष्या का भय नहीं रहता।"[१९] इससे भी वे जाति-पाँति व वर्ण-दर्प का विरोध करके मानवीय एकता व समानता के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करते हैं और सामाजिक स्तर पर 'मानववादी' दर्शन का प्रवर्त्तन करते हैं।

इसके साथ ही वे ऐसे मनुष्यों की भर्त्सना भी करते हैं, 'जो जाति से तो मनुष्य हैं, पर जिनके काम पशुओं जैसे हैं। बाहर धार्मिक वस्त्र हैं, पर मन में माया की मैल है; बाहर तीर्थ-स्नान तथा ज्ञान-ध्यान की बातें करते हैं, समाधियाँ भी लगाते हैं, लेकिन मन में लोभ रूपी कुत्ता पल रहा हैं; हृदय में तृष्णा की अग्नि जल रही है, बाहर शरीर पर भस्म लगा हुआ है, लेकिन गले में विकारों के पत्थर बँधे हैं। भला ऐसे मनुष्य भव-सागर से कैसे पार हो सकते हैं।[२०]

इस प्रकार गुरु अर्जुनदेव ने विशदता से 'मानवतावादी' मूल्यों की स्थापना और अमानवीय आचरण का विरोध करके जिस लोक-मंगलकारी चेतना का प्रवर्त्तन किया है, वह युगों-युगों के लिए स्पृहणीय एवं अनुकरणीय है।

---

१९. ४/२१ आसा महला ५।

२०. करतूति पसू की मानस जाति। लोक पचारा करै दिन राति।
बाहरि भेख अंतरि मलु माइआ। छपसिनाहि कछु करै छपाइआ।
बाहरि गिआन धिआन इसनान। अंतरि बिआपै लोभ सुआनु।
अंतरि अगनि बाहरि तनु सुआह। गलि पाथर कैसे तरे अथाह।
(५-८/४/५ सुखमनी म० ५)

सृष्टि-जगत

गुरु अर्जुनदेव के मतानुसार यह जगत ब्रह्म की इच्छा का ही परिणाम है। प्रभु ही इसका कर्त्ता, सर्जक और संचालक है। वह प्रभु सब कुछ करने का सामर्थ्य रखता है। जो उसे अच्छा लगता है, वह वही कुछ करता है। पल-भर में इस जगत की रचना करके नाश करने वाला भी वही है। सृष्टि को अपने 'हुकम' से पैदा करके वह बिना किसी आसरे के टिकाए रखता है। जगत उसके 'हुकम' में पैदा होता है और 'हुकम' में लीन हो जाता है। उसके 'हुकम' से ही अनेक खेल-तमाशे हो रहे हैं। यह सारा जगत उसी की रचना है, वही सब में समाया हुआ है—

सलोकु— करण कारण प्रभु एकु है, दूसर नाहीं कोइ।
नानक तिसु बलिहारणै जलि थलि महीअलि सोई।१।

अखरपदी— करन करावन करणै जोगु। जो तिसु भावै सोइ होगु।
खिन महि थापि उथापनहारा। अंतु नहीं किछु पारावारा।
हुकमे धारि अधर रहावै। हुकमे उपजै हुकमि समावै।
हुकमै ऊच नीच बिउहार। हुकमे अनिक रंग परकार।
करि करि देखै अपनी बडिआई। नानक सभ महि रहिआ समाई। १।
.....
(१/८/११ सुखमनी महला ५)

अपनी बणत आपि बनाई। नानक जीवै देखि बडाई।
(४/८/११ सुखमनी म० ५)

आपन खेलु आपि करि देखे। खेलु संकोचै तउ नानक एकै।
(७/२१ गउडी सुखमनी म० ५)

प्रभु सत्य-स्वरूप है, उसी प्रभु से समस्त जगत की उत्पत्ति हुई है। अतः, उसकी अस्मिता भी सत्य है। अपनी इच्छा से वह जगत का विस्तार करता है और अपनी इच्छा से पुनः उसे अपने में लीन कर लेता है। उसकी अनेक शक्तियों का वर्णन नहीं किया जा सकता—

आपि सति कीआ सभु सति। तिसु प्रभ ते सगली उतपति।
तिसु भावै ता करे बिसथारू। तिसु भावै ता एकंकारू।
अनिक कला लखी नह नाइ। तिसु भावै तिसु लए मिलाइ।
(५/८/२३ सुखमनी म०५)

गुरु जी कहते हैं—हे भगवान! तू वृक्ष है, और सृष्टि तेरी शाखा है। तूं सूक्ष्म रूप ही विराट रूप में बदल गया है। तूं आप ही जलनिधि है और तूं ही उसके मध्य जल है, तूं ही पदार्थ रूपी फेन है और तूं ही जीव रूपी बुदबुदा। तुझ से अलग कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता। हे प्रभु! शरीर रूपी माला के लिए तूंही प्राण रूपी सूत है, अर्थात तूं ही समूचे प्राणियों का प्राण तत्त्व है। माला में पिरोये मनके भी तूं है। उसके सिरे पर जो गूंठ तथा मनका हैं, वह भी तूं ही है। आदि

मध्य और अन्त में तूँ ही तूँ है, तुझसे अलग दूसरा कोई नहीं हैं—

तूँ पेड साख तेरी फूली। तूं सूखम होआ असथूली।
तूँ जलनिधि तूँ फेन बुदबुदा। तुध बिनु अवरु न भालीए जीउ। १।
तूँ मूतु मणीए भी तूँ है। तूँ गँठी मेरू सिरि तूँ है।
आदि मधि अंत प्रभु सोइ। अवरु न कोइ दिखालीए जीउ २/
(४/२७/२८ माझ महला ५)

जगत तथा जगत के सभी पदार्थों की नश्वरता का प्रतिपादन करते हुए गुरु जी कहते हैं कि इन्द्रपुरी, ब्रह्मपुरी, शिवपुरी; पर्वत, वृक्ष, धरती, आकाश, तारे, सूर्य, चन्द्र, पवन, अग्नि, जल, दिन-रात, वेद-स्मृतियाँ, तीर्थ, देवगण, मन्दिर, धार्मिक ग्रंथ, माला, तिलक, पवित्र रसोई, हवन करने वाले, महलों के भोग-विलास, जाति-पाँति, वर्ण, वर्ग, मुसलमान एवं हिन्दू, पशु-पक्षी आदि अनेक योनियों के जीव अर्थात जगत का दृश्यमान यह सारा प्रसार नष्ट हो जायेगा; त्रिगुणात्मक माया भी नष्ट हो जायेगी; पर वह परमात्मा ही सदा स्थिर रहने वाला है और अटल है। जिस पर परमात्मा कृपा करता है, जो सत्संगति करता है, वह जीव भव-सागर से पार उतर जाता है—

इंद्रपुरी महि सरपर मरणा। ब्रह्मपुरी निहचल नहीं रहणा।
सिवपुरी का होइगा काला। त्रैंगुण माइआ बिनसि बिताल।२।
गिर तर धरनि गगन अरु तारे। रवि ससि पवणु पावकु नीहारे।
दिवसु रैंणि बरत अरु भेदा। सासत सिम्रिति बिनसहिगे वेदा। ३।
तीरथ देव देहुरा पोथी। माला तिलकु सोच पाक होती।
धोती डंडउति परसाधन भोगा। गवनु करे गो सगलो लोगा। ४।
जाति बरन तुरक अरु हिंदू। पसु पंखी अनिक जोनि जिंदू।
सगल पासारु दीसै पासारा। बिनसि जाइगो सगल आकारा।
कहु नानक जिसु किरपा करैं। निहचल थासु साध संगि तरे।८।
(८/४/ रागु मउडी गुआरेरी म०५ असट पदीआ)

शरीर एवं सांसारिक वैभव आदि

जगत के विभिन्न पदार्थों के साथ-साथ गुरुजी ने मनुष्य शरीर तथा मनुष्य के वैभव, यश, शक्ति, सौन्दर्य, सत्ता, कुल-परिवार आदि की क्षणभंगुरता, नश्वरता एवं मिथ्यात्व का भी विस्तार से निरूपण किया है। शरीर की नश्वरता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि "तेरी यह देह जिसे बड़ी कुशलता से बनाया गया है, इसे मिट्टी हो जाना है, तेरा यह शरीर बिष्ठा, हड्डियों, रक्त व चमड़ी से

बना हुआ है। इस पर गर्व करना मूर्खता है।[२१] इस शरीर में लोभ, झूठ आदि विकारों तथा रोगों का निवास है, जिनका निदान हरि नाम स्मरण की ओषधि ही है।"[२२] "दूसरों की निन्दा सुनने के कारण मनुष्य के कान व्यर्थ हैं; पराये धन को चुराने वाले हाथ व्यर्थ हैं; पराई स्त्री के रूप को देखने वाले नेत्र व्यर्थ हैं; विभिन्न व्यंजनों का स्वाद लेने वाली जिह्वा व्यर्थ है; दूसरों के अहित के लिए भाग-दौड़ करने वाले चरण व्यर्थ हैं; पराये धन का लोभ करने वाला मन और परोपकार न करने वाला शरीर भी व्यर्थ है। विकारों की गंध सूँघने वाली नाक भी व्यर्थ है। वस्तुतः, अपने वास्तविक मनोरथ को न जानने वाले ये सारे अंग व्यर्थ हैं।" गुरुजी का कथन है कि मनुष्य का वही शरीर सफल व सार्थक है, जो प्रभु का नाम जपता है।[२३] "नेत्र हरि दर्शन से, श्रवण हरि गुण-स्तुति श्रवण से, जिह्वा हरि कीर्तन से; हस्त हरि यश लिखने से सार्थक है।"

"राज्य, सत्ता, मलकियत, यौवन, सौन्दर्य, रंग, रूप, रस, घर-परिवार, स्त्री, पुत्र, माता-पिता, प्रतिष्ठा, धन-सम्पत्ति, हाथी-घोड़े, हीरे-मोती, बल-विक्रम वैभव-ऐश्वर्य, भूमि, सामर्थ्य ये सब व्यर्थ हैं। इनमें से कोई साथ नहीं जाता। इन सबकी हरि-स्मरण बिना कोई सार्थकता नहीं है। मनुष्य संसार में खाली हाथ आता है और खाली हाथ लौट जाता हैं। इनके माया-मोह में लिपटा हुआ मनुष्य भव-सागर में डूब जाता है और मृत्यु को प्राप्त करता है।"[२४]

माया

गुरु जी के मतानुसार माया ब्रह्म की नित्यशक्ति है। रचना करने की इच्छा

---

२१. पुतरी तेरी विधि करि थाटी। जानी सति करि होइगी माटी।१।
बिसटा असत रकतु परेटे चाम। इसि ऊपरि ले राख्यो गुमान।३।
(५/१४ आसा म० ५)

२२. लालच झूठ बिखै बिआधि इआ देही महि बास।
हरि हरि अंम्रित गुरु मुखि पीआ नानक सूखी निवास ॥८॥
(सलोक ४५ गउडी म० ५)

२३. मिथिआ स्रवन पर निंदा सुनहि। मिथिया हसत परदरब कउ हरहि।
मिथिआ नेत्र पर त्रिअ रूपाद। मिथिआ रसना भोजन अनसवाद।
मिथिआ चरन पर विकार कउ धावहि। मिथिआ मन पर लोभ लुभावहि।
मिथिआ तन नहीं पर उपकारा। मिथिआ बासु लेत बिकारा।
बिनु बूझ मिथिआ सभ भए। सफल देह नानक हरि हरि नाम लए।५।
(सलोक ८/५ सुखमनी म० ५)

२४. ४/१/३८ आसा घरू ३ महला ५; १६। गउडी वार महला ५, सलोकु; ४/३७/१०६, ४/४३/११२ गउडी महला ५

से यह उसी की बनाई हुई है। इसी के द्वारा जगत के सृजन, पोषण एवं नाश की धारा प्रवहित हो रही है। यह त्रिगुणात्मक है, और इसका प्रसार तीनों लोकों में है। यही जीव में अज्ञान और अविद्या का कारण है, वही जीव के आवागमन का कारण है। यह अत्यन्त शक्तिमान है तथा सर्वत्र व्याप्त है।

गुरु अर्जुनदेव का कथन है कि "माया के त्रिगुणात्मक बन्धनों के कारण ही जीव में विषय-विकारों का जन्म होता है। यह बड़ी ठगनी है, चंचला एवं मृग-तृष्णा की भाँति लुभावनी है। इस माया ने जीव को तीन गुणों के वश में कर रखा है। प्रत्येक जीव के हृदय में इसने अपना मोह बनाया हुआ हैं।"[२५] माया विषमयी है, बहुत तरीकों से जीव को लुभाती है। बहुरंगी माया अनेक वेश धारण करती है, अनेक रूप दिखाती है, हृदय रूपी घर की स्वामिनी बनकर कई तरह से भटकाती रहती है। यत्न करने पर भी और अधिक दुविधाएँ उत्पन्न करती है। परमात्मा के दरबार से यह सेविका बनाकर भेजी गई थी, लेकिन इसने नौ खण्डों वाली धरती को जीत लिया है।

योग-साधना करने वाले योगी तथा वेद-स्मृतियों का पाठ करने वाले पंडित भी इससे हार गए हैं। यह अत्यन्त शक्तिमान है, सारे भवनों में पहुँच जाती है, किसी शक्तिशाली का आश्रय लेने पर भी अलग नहीं होती।"[२६] "काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार---ये पाँचों जीव के शत्रु हैं, जोकि इस माया के संगी-साथी हैं।"[२७] "तृष्णा की आग और लोभ की लहरें जीव को घेरे रखती हैं।"[२८] वे भी माया का ही रूप है। "जो जीव माया के बंधनों में फँस जाते हैं, उन ज्ञानहीन मूर्खों पर लोभ, झूठ आदि विकार दबाव डाल देते हैं और वे कुकर्मों में लगे रहते हैं। जो मनुष्य माया के नशे में मस्त रहते हैं, जिनकी बुद्धि पर 'अहं' का परदा पड़ जाता है, वे मनुष्य विषयों के स्वाद में चिपटे रहते हैं और माया के भीतर फँसकर जन्म-मरण के चक्र में पड़ जाते हैं।"[२९]

"मृत्यु लोक, पाताल, आकाश तीनों लोकों में जीव माया के चक्कर में फँसे पड़े हैं, जिससे वह नरक-स्वर्ग में भटकता है।"[३०] "जिस व्यक्ति ने माया से स्नेह किया, उसी को माया ने खा लिया, समस्त त्रैगुणी जीव व समस्त देवगणों को

---

२५. इन माया त्रैगुण बसि कीने। अपन मोह घटे घटि दीने।
(सलोक ७-३ गउडी बावन अखरी म० ५)

२६. ४/४ रागु आसा घरू महला ५

२७. ५/२०/८९ गउडी गुआरेरो म० ५

२८. ४/४/१६२ गउडी माला म० ५

२९. सलोक ११ गउडी बावन अखरी म० ५

३०. ४/५/१६३ गउडी महला ५

भी इसने ठगा है ।"[३१]

गुरु जी के अनुसार **गुरु-कृपा, सत्संगति, संत-सेवा, प्रभु की गुण-स्तुति, व हरि नाम स्मरण** ही इस माया से मुक्ति दिला सकते हैं। उनका कथन है कि "प्रभु अपनी कृपा करके जिस जीव को सत्संग में मिलाता है, माया उसके निकट नहीं आती ।"[३२] अथवा जिस मनुष्य के माया के बंधन टूटने पर आते हैं, उसे गुरु की संगति प्राप्त होती है ।"[३३] 'सति गुरु अपना हाथ' देकर इस माया से बचा लेता है । ज्ञानी पुरुष की यह दासी बनकर रहती है और 'गुरुमुख' के यह निकट नहीं जाती ।[३४] "संतों की चरण धूलि प्राप्त करने पर भी माया निकट नहीं आती"[३५] प्रभु की गुण-स्तुति व नाम-स्मरण के बिना माया से मुक्ति नहीं मिलती ।"[३६] प्रभु नाम से माया का लालच, 'दुख-क्लेश' मिट जाता है । तृष्णा समाप्त हो जाती है, दुर्बुद्धि और माया-मोह के मिटाने से ही सुखमय स्थिर अवस्था में टिका जा सकता है ।[३७]

कर्मफल एवं आवागमन

गुरु अर्जुन देव ने 'कर्मफल' और 'आवागमन' में भी विश्वास प्रकट किया है । उनका कथन है कि "मनुष्य जैसा कर्म करता है, वह कर्म वैसा ही फल देता है । यदि कोई गर्म और सख्त लोहा चबाता है, तो वह गले में चुभ जाता है । यमदूत बुरे कर्मों वालों के गले में फंदे डालकर आगे कर देता है ।"[३८] पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुसार जीवों की योनियाँ प्राप्त होती हैं और प्रत्येक कर्म का तदनुरूप फल भोगने के लिए उसे विभिन्न योनियों में जन्म लेना पड़ता है । चिरकाल पश्चात् ही मनुष्य की योनि मिलती है ।"[३९] गुरु जी ने जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों और पूर्वकृत दुष्कर्मों के भार और भय आदि का भी उल्लेख किया है ।[४०]

---

३१. ४/१ रागु आसा घरू २ म० ५ ।
३२. करि किरपा सतसंगि मिलाए । नानक ताकै निकटि न माए ।
सलोक ७ / गउडी बावन अखरी म० ५
३३. गउडी बावन अखरी म० ५ सलोकु ९
३४. ४/१ रागु आसा घरू २ म० ५
३५. ५/१९/८८, ४/१०/७८ गउडी गुआरेरी म० ५
३६. ४/१०/७८ गउडी गुआरेरी म० ५; ४/४/१६२ गउडी माला म० ५
३७. सलोक १४/ गउडी बावन अखरी म० ५; ४/१०/७८ गउडी गुआरेरी म० ५
३८. सलोक ५/३२ गउडी वार म० ५
३९. ४/३/७२ गउडी गुआरेरी म० ५
४०. ४/२/४१, ४/८/४८ आसा म० ५

इसीलिए विभिन्न प्रकार के दुष्कर्मों की उन्होंने निन्दा की है। उनका कहना है कि "जो मनुष्य रात को चोरी करने के लिए कमन्द लेकर चलते हैं, भीतर छिप कर पराई स्त्रियों की ओर देखते हैं, मृत्यु का फरिश्ता ऐसे नीच कर्म करने वालों को ऐसे पीसता है, जैसे कोल्हू में तिल।"[४१]

इसी सन्दर्भ में उन्होंने बार-बार 'गुरुमुख' की तरह सदाचरण एवं शुभ कर्म करने पर बल दिया है और स्पष्ट किया है कि संतों की शरण में जाने से, हउमै के विनाश तथा प्रभु नाम-स्मरण से पुनः जन्म नहीं होता और जीव आवागमन से छूट जाता है।"[४२]

हउमै-अहंकार

'गुरु ग्रंथ साहिब' में 'हउमै' के स्वरूप, कारण, परिणाम एवं उसके विनाश के उपायों का बड़े विस्तार से वर्णन हुआ है। गुरु मतानुसार 'हउमै' ही जगत की उत्पत्ति का मुख्य कारण है। माया तथा माया का त्रिगुणात्मक बंधन 'हउमै' के ही अन्तर्गत आते हैं। 'हउमै' ने ही मनुष्य को उस पूर्ण ज्योति से पृथक किया हुआ है। इसी के कारण जन्म-मरण का अनवरत चक्र चल रहा है और जीव कर्म बंधन में बँधा हुआ है।

गुरु अर्जुनदेव ने भी धन-सम्पत्ति, राज्य, सुन्दरता, यौवन, शक्ति, कुल आदि अनेक प्रकार के 'हउमै' का वर्णन किया है। उनका कथन है कि "बड़े-बड़े अहंकारी मनुष्य अहंकार में ही गल जाते हैं। जिस मनुष्य के मन में राज्य का अहंकार है, वह कुत्ता नरक में पड़कर दंडित होता है। यद्यपि मनुष्य अपने-आपको अत्यन्त सुन्दर समझता है, वह विष्ठा का ही कीड़ा होता है। जो अपने-आपको शुभ कर्मों का करने वाला कहलाने का अभिमान करता है, वह सदा जन्मता-मरता है; कई योनियों में भटकता रहता है। जो मनुष्य धन और धरती का अहंकार करता है, वह मूर्ख है, दुष्ट है। जो अत्यधिक धनवान होने का अभिमान करता है उसके साथ एक तिनके के समान वस्तु नहीं जाती; जो बड़े लश्कर पर आशा लगाता है, पल-भर में उसका नाश हो जाता है। जो मनुष्य अपने को बड़ा बली समझता है, वह एक क्षण में जल कर राख हो जाता है। धर्मराज ऐसे अहंकारी की दुर्गति करता है। तप तथा करोड़ों धार्मिक कर्मों का अभिमान भी व्यर्थ है। लेकिन, जो मनुष्य व्यक्तित्वाभिमान मिटा कर विनम्र होकर रहता है, सतिगुरु की दया से जिनका अभिमान मिट गया है, वही मनुष्य अनन्त सुख को प्राप्त करता है; वही प्रभु के

---

४१. सलोक २७। गउडी वार महला ५

४२. सलोक १४। गउडी बावन अखरी म० ५

दरबार में सम्मानित होता है।"[४३] "अहंकारग्रस्त जीव मृत्यु के गड्ढे में पड़ा रहता है।"[४४] 'सत्संग' में बैठने से, गुरु की कृपा से, प्रभु के गुण-गान से, हरि-नाम-स्मरण से 'अहंकार' का नाश होता है। प्रभु-स्मरण से यह नशा उतर जाता है। गुरु-कृपा व हरि-नाम से यह रोग दूर हो जाता है।[४५] जगत रूपी रणभूमि में स्वयं को जीत कर ही मनुष्य 'अहंकार' को जीत सकता है।[४६]

'हुकम'

गुरुमत में 'हुकम' का बहुत बड़ा महत्त्व है। गुरु अर्जुनदेव ने भी 'हुकम' की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उनका कथन है कि "वह परमात्मा सृष्टि को अपने 'हुकम' से पैदा करके अधर में टिकाए रखता है, जगत उसके 'हुकम' में पैदा होता है और 'हुकम' में लीन हो जाता है। उच्च और निम्न व्यक्तियों का व्यवहार भी उसके 'हुकम' के अनुसार ही होता है। अनेक प्रकार के खेल-तमाशे, रंग-रलियाँ उसके 'हुकम' अनुसार होते हैं।"[४७] "जीव प्रभु के 'हुकम' में जन्मता है, 'हुकम' में ही मरता है। जीव उसकी आज्ञा से ही चलता है, उसकी आज्ञा के बिना कुछ नहीं होता।"[४८] जगत में जो कुछ भी हो रहा है, वह उसके 'हुकम' से ही होता है। किसी अन्य के द्वारा नहीं होता। जीव उसकी इच्छानुसार माया की दुविधा में अथवा माया के मोह में फँसा रहता है, सदा मोह में सोता रहता है और नींद से सचेत नहीं होता।[४९] स्थान-स्थान पर गुरुजी ने 'प्रभु की कृपा', 'अनुग्रह', 'हुकम', 'इच्छा' से गुरु, सत्संगति, 'नाम' की प्राप्ति का भी उल्लेख किया है, जिससे जीव मुक्ति को प्राप्त करता है।

---

४३. ८/१२ सलोक १-३ सुखमनी म० ५

४४. २/५/१३ आसा म० ५ इकतुके

४५. ४/८/१४६ गउड़ी महला ५; सलोकु २/१५ सुखमनी म० ५

४६. सलोक ३१ गउडी बावन अखरी म० ५

४७. हुकमे धारि अधर रहावै।
हुकमे उपजै हुकमि समावै।
हुकमे ऊच नीच बिउहार।
हुकमे अनिक रंग परकार॥
(१/११ गउड़ी सुखमनी म० ५ सलोकु)

४८. आवत हुकमि बिनास हुकमि आगिआ भिन न कोई।
(सलोक ७ गउडी बावन अखरी म० ५)

४९. (i) जो किछु बरतै सभ तेरा भाणा॥ ४/६६/१३५ गउडी म० ५
(ii) ४/९/१३० गउडी महला ५

गुरु

भारतीय अध्यात्म परम्परा में 'गुरु' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरुओं ने भी अहंकार के विनाश, ब्रह्मज्ञान, हरि-भक्ति आदि की उपलब्धि के लिए गुरु-कृपा, गुरु-उपदेश व गुरु-सेवा को आवश्यक माना है। वस्तुतः, गुरुओं ने तो गुरु और ब्रह्म को एक रूप माना है। गुरु अर्जुनदेव ने भी कहा है कि "गुरु और ब्रह्म एक-रूप हैं, गुरु पारब्रह्म परमेश्वर का ही रूप है। अतः, हरि रूप गुरु को नमस्कार करना चाहिए—

गुरु परमेसरु एकु है सभि महि रहिआ समाई।
(४/३०/१०० सिरी राम म० ५)

गुरुदेव सतिगुरु पार ब्रह्मु परमेसरु गुरुदेव।
नानक हरि नमसकारा॥ १॥ (गउडी बावन अखरी म० ५)

उनका कथन है कि "गुरु ही माँ है, गुरु ही पिता है, गुरु-मालिक प्रभु का रूप है; गुरु मोह-माया-अज्ञान के अन्धकार को नष्ट करने वाला; गुरु ही मित्र है, गुरु ही सम्बन्धी और भाई है। गुरु दाता है जो प्रभु का नाम देता है; गुरु शान्ति, सत्य और बुद्धि का स्वरूप है, गुरु का स्पर्श पारस से भी श्रेष्ठ है, गुरु सर्वोत्तम श्रेष्ठ तीर्थ है, अमृत सरोवर है, गुरु-ज्ञान का स्नान सभी तीर्थों के स्नान से श्रेष्ठ है, वह समस्त पापों को दूर करने वाला, विकृत व्यक्तियों को पवित्र करने वाला है। गुरु का दिया हुआ हरि-नाम स्मरण करके ही भव-सागर से पार उतरा जा सकता है।"[५०] "गुरु गहन गम्भीर, सुखों का सागर और पापों का नाश करने वाला है। गुरु अगम-अगोचर है, नित्य निर्मल है, वह माया के तीनों गुणों से परे है, वह अनिर्वचनीय है, गुरु कर्त्ता है, वह डूबते जीव को उबारने में समर्थ है, वह संसार की चिंताओं की लहरों से भरे समुद्र से पार कराने वाला जहाज़ है, गुरु की इच्छा से बाहर कुछ भी नहीं है। मनोवांछित फल सतिगुरु की कृपा से ही मिलते हैं। तृष्णा व विषय-वासनाओं की अग्नि को सतिगुरु ही बुझा सकता है। जीव के अहं-

---

५०. गुरदेव माता गुरदेव पिता गुरदेव सुआमी परमेसुरा।
गुरदेव सखा अगिआन भंजनु गुरदेव बंधिप सहोदरा।
गुरदेव दाता हरिनामु उपदेसै गुरदेव मंतु निरोधरा।
गुरदेव सांति सति बुधि मूरति गुरदेव पारस परसपरा।
गुरदेव तीरथ अंम्रित सरोवरु गुरदेव पतित पवितकरा।
गुरदेव आदि जुगादि जुगु जुगु गुरदेव मंतु हरि जपि उधरा।
गुरदेव संगति प्रभ मेलि करि किरपा हम मूड़ पापी जितु लगि तरा।
गुरदेव सतिगुरु पारब्रह्मु परमेसुर गुरदेव नानक हरि नमसकरा॥ १॥
(गउडी बावन अखरी महला ५)

भाव, क्रोध, लोभ, मोह को वही नष्ट कर सकता है। गुरु सब कुछ करने में समर्थ है। सतिगुरु के मिलने पर जीव के सब दुख समाप्त हो जाते है। मन में आध्यात्मिक आनन्द का प्रकाश फैल जाता है। गुरु की महिमा का कोई अन्त नहीं है। विश्व में गुरु के समान कोई महान नहीं है।"

"**गुरु कृपा** से नाम-दान के द्वारा जीवन पवित्र हो जाता है। **'गुरु-सेवा'** से तथा **'गुरु की शरण'** में जाने से और **'गुरु के आदेशानुसार'** आचरण करने से यमराज के दण्ड का कोई भय नहीं रहता। जीव का जन्ममरण व आवागम समाप्त हो जाता है और जीव को सचखण्ड में वास मिलता है। **गुरु-उपदेश** ही वास्तविक सर्वोत्तम शाश्वत सुख है। गुरु की शरण में ही हरि मिलन सम्भव है। वे प्राणी बड़े भाग्यशाली हैं, जिन्हें सतिगुरु प्राप्त होता है।"[५१]

सत्संग

'गुरुमत' में 'सत्संगति' एवं 'सेवा' का भी विशेष महत्त्व है। गुरु अर्जुनदेव की मान्यता है कि सत्संगति में परमात्मा स्वयं वास करता है। संतो का जहाँ निवास है, वहीं बैकुंठ है।[५२] साधु-संगति से जीव निर्मल होता है और उसकी आवागमन की फाँसी सदा के लिए कट जाती है।[५३] सत्संगति बड़े सौभाग्य से मिलती है,[५४] सत्संगति एवं संतों की सेवा से मनुष्य सभी सुख प्राप्त कर लेता है और उसके सभी मनोरथ पूरे हो जाते हैं।[५५]

काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मोह, आदि पाँचों डाकू 'सत्संगति' में रहने से ही काबू में आते हैं। **सत्संगी** जीव 'गुरुमुख' बन जाते हैं, वे सत्य, संतोष, दया, धर्म आदि गुणों को धारण करते हैं।[५६] सत्संग से उन्हें हरि-नाम धन की प्राप्ति होती है।[५७] संतों की **चरण-धूलि** के स्पर्श से कुबुद्धि नष्ट हो जाती है और सभी सुख

---

५१. (i) ४/२०/९०,४/११/९१,४/३०/११०, ४/३०/१००, सिरी रागु म० ५
(ii) ४/२/१४० रागु गउडी चेती १ महला ५
(iii) ४/७/७६, ४/८/७७, ४/२४/९३ रागु गउडी गुआरेरी म० ५

५२. (i) साध संगति कै घर बसै एको सचा सोइ । १/८/७८ सिरी राग म० ५
(ii) बैकुंठ नगर जहाँ संत निवास। ४/२१/२५ रागु सूही म० ५
(iii) हरि का सेवक सो हरि जहाँ, भेद न जाणहु माणस देहा ॥

५३, ३/७/७७ स्रीरागु महला ५

५४. २/५/८४ गउडी गुआरेरी म० ५, २/४७/११६ वही।

५५. ४/१४/८३ गउडी म० ५

५६. ३/२०/८९ गउडी गुआरेरी म० ५, सलोक २९/ गउडी की वार म० ५
१-४/३६ आसा म० ५

५७. ४।२७।९६ गउडी गुआरेरी म० ५

प्राप्त होते हैं।[५८] अतः, जो मनुष्य सत्संगति से खाली है, उसका शरीर मुर्दा है, वह मनुष्य जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है, योनियों के दुखों के कारण उसका आत्मिक जीवन दुर्बल होता जाता है।[५९]

साधना-मार्ग

गुरु अर्जुनदेव ने ज्ञान, योग, कर्म, वैराग्य के महत्त्व को भी स्वीकार तो किया है, किन्तु उन्होंने 'भक्ति' को ही सर्वश्रेष्ठ साधना-मार्ग माना है। योग, कर्म, वैराग्य, यज्ञ, जप, तप, होम, तीर्थ-स्नान आदि सभी की सार्थकता भी हरि-नाम-स्मरण से ही है और संसार-सागर को पार करने का माध्यम भी प्रभु-भक्ति एवं नाम-स्मरण ही है। उनका कथन है कि "परमात्मा की भक्ति मधुर स्वभाव वाली स्त्री है, जो अनुपम रूपवती तथा शुभ-लक्षणों वाली है, जिस घर में वह वास करती है, वह घर शोभावाला बन जाता है। गुरु को मिलकर मैंने श्रेष्ठ करनी रूपी (उत्तम आचरण वाली) स्त्री प्राप्त की है, जो प्रत्येक स्थान पर सुन्दर लगती है, यह बत्तीस शुभ-लक्षणों वाली है, सर्वथा स्थिर परमात्म नाम इसकी संतान है, यह आज्ञाकारिणी है, चतुर है, रूपवती है, कंत के मन की प्रत्येक इच्छा पूर्ण करती है, समूचे परिवार में 'भक्ति' स्त्री श्रेष्ठ है। वह हृदय रूपी घर अत्यन्त भाग्यशाली है, जिस घर में यह दर्शन देती है, उस व्यक्ति की आयु सुखपूर्वक व्यतीत होती है, जिसके हृदय में यह निवास करती है।"[६०]

गुरु अर्जुनदेव ने 'दास्य भक्ति' एवं 'प्रेमा-भक्ति' दोनों का निरूपण किया है। एक ओर उन्होंने परमात्मा को 'स्वामी', 'साहिब', 'ठाकुर', 'मालिक', 'प्रभु', कहकर उनके माहात्म्य का वर्णन किया है तथा अपने को उनका 'सेवक', 'दास', 'चेरा' मानकर उनकी 'शरण में जाने', 'चरण वंदना करने,' 'गुण-स्तुति करने',

---

५८. १-४/११/१८ माझ म०; ४/१४/८३ गउडी गुआरेरी म० ५

५९. १/५५/१२४ गउडी म० ५

६०. ४/३ आसा महला ५

सेवा करने', की अभिलाषा प्रकट की है और अपना दैन्य व्यक्त किया है।[६१] परमात्मा की महानता एवं महत्ता का तथा अपनी दीनता, लघुता, श्रद्धा व भक्ति का निरूपण करते हुए गुरु जी कहते हैं कि हे प्रभु ! तू ही मेरा सखा है, तू ही मेरा मित्र है, तू ही मेरा प्रियतम है, तू ही मेरी प्रतिष्ठा है, तू ही मेरा आभूषण है, तू मेरा सुन्दर लाल है, तू मेरा प्राण है, तू मेरा साहब है, तू मेरा खान है, जैसे तू मुझे रखता है, मैं वैसे ही रहता हूँ। तेरे बिना मैं एक पल भी नहीं रह सकता। मैं वही करता हूँ जो तेरा हुकम होता है, तू ही मेरे लिए दुनिया की नौ निधि है, भण्डार है, तू ही मेरी ओट है, तू ही मेरा सहारा है, तू मेरा सर्वस्व है। मेरा तुझसे ही प्रेम है।[६२]

दूसरी ओर प्रभु को पति और अपने को उनकी स्त्री मानकर प्रभु-पति के प्रति अपनी प्रणयानुभूति, मिलनाकांक्षा, दर्शन-अभिलाषा, विरह-व्यथा एवं समर्पण की भावना उत्कटता से व्यक्त की है। 'प्रेमा-भक्ति' के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए गुरु जी कहते हैं कि प्रभु-पति ने मुझे (अज्ञानता रूपी) सास से अलग कर दिया है, मेरी देवरानी-जेठानी (ऐषणाएँ-व तृष्णा आदि) दुख-क्लेश से मर गई हैं। अब मुझे जेठ धर्मराज की भी परवाह नहीं है, चतुर पति ने मुझे सभी सम्बन्धियों से (विकारों से) बचा लिया है। प्रभु-प्रियतम से भेंट होने पर सर्वप्रथम अहंकार के प्रति लगाव छोड़ दिया, फिर लोक-व्यवहार की रसमों को त्याग दिया,

---

६१. (i) तैं मोरा **ठाकुर** गुणी गहेरा ॥ (ii) हरि हमरा हम हरि के **दासा** ॥
(iii) सुनहु बेनती **सुआमी** मेरे राम ॥ (iv) कोटि अपराध भरे भी तेरे **चेरे** राम ॥
(v) तू मेरा **मालिक** मैं **सेवक** ॥ (vi) **सरन** तेरी रख लेहु मेरी सरब गै निरंजना ॥
(vii) तेरे **सेवक** कउ भउ किछु नाही, जम नहि आवै नेरे ॥
(ix) तू **साहिब सेवक** अरदासि ॥ (x) पारब्रह्म ठाकुर अगाधि ॥
(xi) काटे कसट पूरे गुरदेव। सेवक कउ दीनी अपुनी **सेव** ॥
(xii) हरि **चरण सरन** गोबिंद दुख भंजन। (xiii) चारि पदारथ हरि की **सेवा** ॥
(xiv) हरि को **चरण** हिरदै उर धारि ॥ भवसागर चडि उतरहि पारि ॥
(xv) चरण कमल सिउ लाईए चीता। (xxi) जाकी **टहल न बिरथी जाई**।
(xvii) दुख रोग भए गतु तन ते मनु निरमल हरि हरि **गुण गाई** ॥
(xviii) जाकी **सेवा** सरब निधानु। (xiv) प्रभु की **पूजा** पाईए मानु ॥
(xx) सदा सदा हरि के गुण गाई ॥

६२. १-४/१८/८७ गउडी गुआरेरी म० ५।

फिर माया के तीनों गुण छोड़कर वैरी और मित्र एक जैसे समझ लिए। मैंने आत्मिक स्थिरता की गुफा में अपना आसन जमा लिया है, और मेरे भीतर ज्योति रूप परमात्मा के मिलाप का निरन्तर बजने वाला बाजा बजने लगा है। वह जीवात्मा धन्य है, जो प्रभु पति के प्रेम रंग में रंगी हुई है।[६३]

यहाँ गुरु जी ने स्पष्ट किया है कि प्रभु के प्रति प्रणयभाव से भक्ति करने पर अज्ञानता, अहंकार, माया, तृष्णा, लोभ आदि नष्ट हो जाते हैं। हरि-स्मरण में मन लग जाता है और जीव आवागमन से मुक्त हो जाता है। प्रभु-पति का प्रेम पाकर जीवात्मा रूपी स्त्री कितना आत्मिक सुख अनुभव करती है, इसका वर्णन गुरु जी ने इस प्रकार किया है—

"मेरे पति ने मेरा रूप-रंग व शृंगार नहीं देखा, मेरे गुण-अवगुण पर भी विचार नहीं किया, मैं तो कार्य-कौशल और सदाचरण का कोई ढंग भी नहीं जानती थी, फिर भी मेरा हाथ पकड़कर मेरे प्रभु पति अपनी सेज पर ले आए; मेरे प्रभु-पति ने मेरी बाँह सँभाल ली है और मेरे मस्तक पर अपना हाथ रखकर मेरी रक्षा की हैं। मेरे भाग्य उदित हो गये हैं। मेरा प्रभु पति मुझे मिल गया है। मेरे हृदयरूपी आँगन में शोभा का चन्द्रमा प्रकाशमान है। मैं रात-दिन प्रिय के साथ आनन्द अनुभव कर रही हूँ, प्रिय ने मुझे प्रेम की दृष्टि से देख लिया है। अतः; मुझे सभी सुखों के भण्डार मिल गये हैं। मेरे वस्त्र गहरे चटकीले रंग गए हैं। मेरे शरीर पर आभूषण व गले में फूलों के हार सुशोभित हैं। अब कामादिक शत्रुओं की चिन्ता भी मिट गई है, अब मुझे खुशियाँ ही खुशियाँ हैं, मैं अब आत्मिक आनन्द अनुभव कर रही हूँ। पति ने मुझे सुन्दर जीवन वाली बना दिया है, प्रभु पति के चरणों में रहकर मैं सौभाग्यवती बन गई हूँ और सदा के लिए स्थिर चित्त हो गई हूँ।"

गुरु जी का कथन है कि "प्रभु पति का प्रेम पाने के लिए जीवात्मा-स्त्री इतनी व्याकुल है कि उसे संसार के सभी प्रसाधन, शृंगार, वैभव व्यर्थ प्रतीत होते हैं।" वह कहती है कि "अनेक प्रकार से शृंगार करने पर भी मेरा मन संतुष्ट नहीं हुआ, अनेक सुगंधियाँ शरीर पर लगाने से भी लेशमात्र सुख नहीं मिलता, मन में ऐसी आशाएँ बनाती रहती हूँ कि प्रभु-पति का दर्शन प्राप्त हो; मेरे विचार में सुन्दर कपड़े, गहने, अन्य सुख सब व्यर्थ हैं, मुझे प्रियतम का प्रेम अपनी ओर खींच रहा है। मुझे आदर, प्रतिष्ठा, महानता, सत्ता, कीमती घर कुछ भी मिल जाए, मैं सदा के लिए खुश नहीं रह सकती। खुश तभी रह सकती हूँ कि प्रभु-पति को प्यारी लगूँ। जीव-स्त्री को प्रभु-पति मिल जाए तो वह सारा सुख प्राप्त कर लेती है।"[६४]

---

६३. ४/२ आसा महला ५

६४. ४/११ आसा म० ५

उनका कहना है कि जिस घर में प्रिय-पति ने सुहाग बनाया है, उस घर में मंगल गान होते हैं। समस्त आनन्द व मनोविनोद उस स्त्री के घर में शोभा पाते हैं, जा पति ने सजाया है, वही स्त्री गुणवान, भाग्यशालिनी, पुत्रवती, सुशीला और सुहागिनी है, जो प्रियतम की प्यारी है। वही स्त्री रूपसी है, वही चतुर है, वही कुलीन है, वही पटरानी है, वही शुभ-आचरण वाली है, सब स्त्रियों में मुख्य भी वही है, जो प्रियतम के प्रेम में निमग्न है। उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिसे प्रेमपूर्वक प्रिय ने अपने अंगों से लगा लिया है, जिस जीव-स्त्री का पति अगम-अगोचर परमात्मा है, उसका सुहाग सदा स्थिर है—

जितु घरि पिरि सोहाग वणाइआ। तितु घरि सखीए मंगल गाइआ।
अनद बिनोद तितै घरि सोहहि। जो धन कंति सिगारी जीउ ॥१॥
सा गुणवंती सा बडभागणि। पुत्रवंती सीलवंती सोहागणि।
रूपवंती सा सुघडि बिचखणि। जो धन कंत पिआरी जीउ ॥२॥
अचारवंति सोई परधाने। सभ सिंगार बणे तिसु गिआने।
सा कुलवंती सा सभराई जो पिरि कै रंगि सवारी जीउ ॥३॥
महिमा तिस की कहणु न जाए। जो पिरि मेलि लई अंगि लाए।
थिरु सुहाग बरु अगम अगोचर जन नानक प्रेम साधारी जीउ ॥४॥
(१-४/४/११ माझ म० ५)

प्रभु-पति से वियोग जनित दुख, पीड़ा, व्याकुलता एवं मिलन-उत्कंठा का वर्णन भी गुरु जी ने बड़ी मार्मिकता से किया है। वे कहते हैं कि, "हे भाई! दिन की एक घड़ी भी प्रभु-पति से अलग रहकर मुझे कई दिनों के बराबर लगती है, मेरा मन धैर्य धारण नहीं करता; दिन में एक पल भी ऐसा नहीं गुजरता जब उस प्रियतम की याद न आती हो, मेरे मन में प्रभु के दर्शनों की तीव्र लालसा है। चार प्रहर वियोगावस्था में चार युगों के समान लगते है। रात्रि आती है, वह समाप्त होने में नहीं आती, पाँच शत्रुओं ने मिलकर जीव-स्त्री को प्रभु-पति से अलग किया है, वह भटक-भटककर रोती है और पछताती है कि सच्चा गुरु ही अब मुझे परमात्मा-पति से मिला सकता है। जिस जीव ने परमात्मा के दर्शन किये, उसने आत्मिक जीवन का सर्वोपरि आनन्द प्राप्त कर लिया।[६५]

नाम-स्मरण

गुरु अर्जुनदेव ने अपनी आध्यात्मिक साधना में सबसे अधिक महत्त्व हरि के नाम-स्मरण को दिया है। उनका कथन है कि "'नाम' सब धर्मों का सार है। ज्ञान, योग, कर्म, होम, यज्ञ, व्रत, मंत्र, पूजा, तीर्थ-स्नान सबसे श्रेष्ठ 'नाम-स्मरण'

---

६५. १/१४ आसा म० ५

है। 'नाम' की प्राप्ति प्रभु कृपा से ही होती है। जो हरि-स्मरण करता है, वह भव-सागर से पार हो जाता है। कोई दुख, कोई रोग, कोई भय उसे प्रभावित नहीं करता।"[६६] " 'नाम-स्मरण' से यम की मार नहीं सहनी पड़ेगी, यमराज के दूत निकट नहीं आयेंगे। माया-मोह उसे व्याप्त नहीं होगा, कामादि उसका स्पर्श नहीं करेंगे, वह आप भी पार होगा, संसार को भी पार करेगा। हरि-स्मरण अनेक तीर्थों के स्नान के तुल्य है।"[६७] 'नाम' जपने से मन को सुख मिलता है, मन की प्यास समाप्त हो जाती है, सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, चित्त स्थिर हो जाता है। प्रभु की कृपा से 'नाम' की औषधि प्राप्त होती है। जिसके हृदय में हरि का नाम बसता है, उसका दुख-दर्द नष्ट हो जाता है।"[६८]

गुरु जी ने 'सुखमनी' में 'नाम' की महिमा का वर्णन बड़े विस्तार से किया है। उनके अनुसार वास्तविक सुख की उपलब्धि 'नाम-स्मरण' से ही होती है। 'नाम' ही सुखों का सार है। 'प्रभु के स्मरण में ही रिद्धि, सिद्धि नौ निधियां हैं। प्रभु-स्मरण में ही ज्ञान, ध्यान, तत्त्व-चिन्तन, जप, तप, पूजा है। प्रभु-स्मरण से दुविधा व द्वैत समाप्त हो जाता है। प्रभु का स्मरण ही तीर्थ स्नान है, इसी से प्रभु के दरबार में प्रतिष्ठा मिलती है, प्रभु के स्मरण से सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। अतः, प्रभु का स्मरण करने वालों का चरण-स्पर्श करना चाहिए—

प्रभ कै सिमरनि रिधि सिधि नउ निधि। प्रभ कै सिमरनि गिआन धिआनु ततु बुधि।
प्रभ कै सिमरनि जप तप पूजा। प्रभ कै सिमरनि बिनसै दूजा।
प्रभ कै सिमरनि तीरथ इसनानी। प्रभ कै सिमरनि दरगह मानी।
प्रभ कै सिमरनि होइ सु भला। प्रभ कै सिमरनि सुफल फला।
से सिमरहि जिन आपि सिमराए। नानक ताकै लागउ पाए ॥३॥
(सुखमनी म० ५)

"प्रभु के नाम के विस्मरण से विकारों को जन्म मिलता है और आवागमन बना रहता है। प्रभु-स्मरण ही सबसे श्रेष्ठ है, प्रभु-स्मरण से विकारों का नाश हो जाता है, तृष्णा मिट जाती है, यम का भय समाप्त हो जाता है।"[६९] प्रभु का स्मरण करने वाले ही धनवान, प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित, भले, परोपकारी, सुखी व आनन्दमय है; वे सबके बादशाह हैं, वे जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।[७०] हरि का नाम

---

६६. १/२५/९४ गउडी गुआरेरी म० ५
६७. २/२६/९५ गउडी गुआरेरी म० ५
६८. ४/१०/७९ गउडी गुआरेरी म० ५
६९. ४/सुखमनी म० ५
७०. ५, ६/सुखमनी म० ५

'पारिजात' वृक्ष है, कामधेनु है।"[७१] "जहाँ हरि नाम का जाप होता है, वहीं बैकुंठ है।"[७२] "जहाँ स्मरण है, वहीं निरंकार आप बसता है।"[७३] इसलिए गुरु जी ने बार-बार कहा है कि जिस प्रभु की कृपा से सुन्दर शरीर, वैभव, शक्ति, ऐश्वर्य, सुख, पदार्थ, आदर-सम्मान प्राप्त हुए हैं, जो शोभा, प्रताप, लाभ का दाता है, जो मुक्तिदाता है, उस हरि का नित्य आठों याम स्मरण करना चाहिए। इसी सन्दर्भ में गुरु जी ने हरि-कीर्तन का महत्त्व भी निर्दिष्ट किया है जोकि अत्यन्त मूल्यवान हीरा है, सांसारिक कष्टों से मुक्ति देता है, मन को शान्त करता है, जन्म-जन्म के पापों का नाश करता है। हरि-कीर्तन और हरि-कथा श्रवण परम आनन्द को देने वाले हैं—

हरि कीर्तनु मनु सीतल भए।
जनम जनम के किलविख गए। (४/८/७७ गउडी गुआरेरी म० ५)
श्रवण सुनीजै अंम्रित कथा।
जासु सुनि मनि होइ अनंदा॥

गुरु जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि चारों वर्णों में से कोई भी हरि-स्मरण कर सकता है। वहाँ कोई भेद-भाव, कोई असमानता नहीं है, सभी को गति मिलती है।[७४]

योग एवं अन्य साधन

गुरु अर्जुनदेव ने अपनी वाणी में योग-साधना से सम्बन्धित अनहद, शून्य समाधि आदि शब्दावली का प्रयोग तो किया है, किन्तु हठयोग की कठिन साधना की उन्होंने उपेक्षा ही की है और सहज-योग की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार योग की सार्थकता हरि-नाम-स्मरण से ही है। अन्तर्मन में सहज समाधि लगने से और वृत्तियों के अन्तर्मुखी होने से ही परम आनन्द की अनुभूति होती है।

सहज समाधि लगी लिव अंतरि। सो रस सोई जाणे जीउ।
(१/३५/४२ माझ म० ५)

'ध्यान' की वास्तविक दशा का वर्णन करते हुए गुरु जी कहते हैं कि "मन में निरन्तर नाम-उच्चारण के 'अनहद नाद' का बाजा बज रहा है; जिससे सहज ही

---

७१. ८/२ वही
७२. तह बैकुंठ जह नाम उचरहि॥ ४/१४/२५ रामकली म० ५
७३. हरि सिमरन महि आपि निरंकारा। ८/१/सुखमनी म० ५
७४. चहु बरना महि जपै कोऊ वामु। जो जो जपै तिस की गति होइ॥
(सलोक ८, ९, सुखमनी म० ५)

सुख की प्राप्ति हो रही है, शब्द में आनन्दित होकर सभी केलि कर रहे हैं। सहज रूपी गुफा में समाधि लगाई है, और ऊँचा आसन जमाया है; घूम-फिर कर मैं निज स्वरूप में स्थित हो गया हूँ और अपना प्राप्तव्य पा लिया है—

अनहदु बाजै सहजि सुहेला। सबदि अनंद करे सद केला।
सहज गुफा महि ताडी लाई। आसणु ऊच सबारिया जीउ॥
फिरि घिरि अपुने ग्रिह महि आइआ। जो लोडीदा सोई पाइआ॥
(१-२/३/१० माझ म० ५)

वास्तविक 'योग' के स्वरूप का निरूपण करते हुए गुरु जी कहते हैं—"मैं गुरु से वास्तविक योग की युक्ति सुनकर आया हूँ। सतिगुरु ने मुझे 'शब्द' का रहस्य समझा दिया है। नव खण्ड व सारी पृथ्वी व इस तन में वह परमात्मा व्याप्त है। उसे मैं पल-पल में नमस्कार करता हूँ। गुरु का उपदेश (दीक्षा) मैंने अपने हृदय में धारण कर लिया है। "मैं एकंकार को अपने हृदय में बसाता हूँ। यही 'मुद्रा' है। गुरु उपदेश से मेरी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मिलकर एकत्रित हो गई हैं और वे एक उच्च 'सुरति' के वश में हो गई हैं, विकारों से विमुख होकर मेरी 'दसों इन्द्रियाँ', 'उच्च बुद्धि' के अनुसार चलने वाली हो गई हैं, तब से मैं 'सच्चा योगी' बन गया हूँ। मन की दुविधा को जलाकर इसकी 'विभूति' मस्तक पर लगा ली है। सारे ससार में परमात्मा को व्याप्त देखता हूँ, यही मेरा 'योगी पंथ' है। मैंने उस आत्मिक स्थिरता के आनन्द का 'चूरमा' बनाया है, जिसकी प्राप्ति प्रभु ने मेरे मस्तक पर लिख दी है। मैं परमात्मा की गुण-स्तुति की 'सिंगी' से निरन्तर 'अनहद नाद' बजा रहा हूँ, जिससे उस आत्मिक अवस्था पर 'आसन जमाया' है जहाँ कोई भय स्पर्श नहीं करता। जगत के मूल प्रभु के गुणों पर चिन्तन करना ही योगियों वाला 'डंडा' अपने पास रखा है। हरि-नाम-स्मरण की 'योग की युक्ति' मेरे मन को अच्छी लगी है। ऐसा योगी जिस भाग्यशाली को मिल जाता है, उसके माया के सारे बंधन कट जाते हैं, ऐसे योगी के चरण छूने चाहिएँ—

जोग जुगति सुनि आइओ गुरु ते। मो कउ सतिगुर सबदि बुझाइओ।
१/ रहाउ।
नवखण्ड प्रिथमी इसु तन महि रविआ निमख निमख नमसकारा।
दीखिआ गुर की मुंदा कानी द्रिडिओ एकु निरंकारा।१।
पंच चेले मिलि गए एकत्रा एकसु कै बसि कीए।
दस बैरागनि आगिआ करी तब निरमल जोगी थीए।२।
भरम जराइ चराई विभूति पंथु एकु करि पेखिआ।
सहज सूख सो कीनी भुगता जो ठाकुरि मसतकि लेखिआ।३।
जह भउ नाही तहा आसनु बाधिओ सिंगी अनहत बानी।
ततु बीचारु डंडा करि राखिओ जुगति नामु मनि मानी।४।

ऐसा जोगी बड़भागी मेटै माइआ के बंधन काटै।
सेवा पूज करउ तिसु मूरति की नानकु तिसु पग चाटै।५।
(५/११/१३२ गउडी म० ५)

होम,यज्ञ, पूजा, व्रत, तीर्थ-स्नान आदि की निरर्थकता पर प्रकाश डालते हुए गुरु जी कहते हैं कि "जिन मनुष्यों ने केवल होम, यज्ञ किये, तीर्थ स्नान किए, वे अहंकार में फँसते गए और उनके भीतर विकार बढ़ते गए, उन्हें नरक और स्वर्ग दोनों भुगतने पड़ते हैं और वे जन्म-मरण के चक्कर में पड़े रहते हैं।"[७५] व्रत, नियम, तीर्थ-यात्रा, वेदों का मौखिक पाठ सभी कर्म हरि-स्मरण बिना व्यर्थ हैं। जप, तप, संयम का मूल्य कौड़ी के बराबर भी नहीं है। वे 'बाह्याचार' एवं कर्म-काण्ड' परलोक में साथ नहीं देते। इसलिए गुमान को छोड़कर प्रभु-स्मरण करना चाहिए—

हरि बिनु अवर क्रिआ बिरथे।
जप-तप संजम करम कमाणे इहि ओरै मूसे। १। रहाउ॥
बरत नेम संजम महि रहता तिनका आढु न पाइआ।
आगै चलणु अवर है भाई ऊहाँ कामि न आइआ। १।
करम धरम नेम व्रत पूजा। पार ब्रह्म बिनु जानु न दूजा।२।
× × × (४/९६/१६५ गउडी म० ५)
तीरथ नाइ अरु धरनी भ्रमता आगै ठउर न पावै।
ऊहा कामि न आवै इह बिधि ओहु ओहु लोगन ही पतीआवै।२।
चतुर वेद मुखवचनी उचरै आगै महलु न पाईए।
बूझै नाही एकु सुधाखरु ओहु सगली झाख झखाईए।३।
नानक कह तो इहु बीचारा जि कमावै सु पार गरामी।
गुरु सेवहु अरु नाम धिआवहु तिआगहु मनहु गुमानी।४।
(४/६/१६४ गउडी माला म० ५)

एक और स्थान पर वे कहते हैं कि "वेद-मंत्रों के जाप; तप, ज्ञान एवं ध्यान; छः शास्त्रों-स्मृतियों के उपदेश; विभिन्न योग-साधनाएँ, कर्म-काण्ड, धार्मिक क्रियाएँ, सब कुछ छोड़कर संन्यासी बनकर वनों में घूमना, अन्य अनेक यत्न, दान, यज्ञ करना, देह को थोड़ा-थोड़ा काटकर होम करना, विभिन्न प्रकार के व्रत, पूजा,

---

७५. २४/१/१५८ राग गौडी मालवा म० ५

तिलक, तंत्र-मंत्र कोई भी नाम-स्मरण के समान नहीं है।"[७६]

"जो लोग बाहर से साधुओं का वेश धारण करते हैं और मन में माया का मल भरा हुआ है; बाहर से ज्ञान, ध्यान, स्नान का दिखावा करते हैं, अन्तर में लोभ, मोह, अहंकार व्याप्त है; बाहर से शरीर पर भस्म लगाये रखते हैं और अन्तर में तृष्णा की अग्नि जलाए रखते हैं, ऐसे पाखण्डी साधुओं के मिथ्याचारों एवं बाह्याडम्बरों की गुरुजी ने कड़ी भर्त्सना की है—

बाहरि भेख अंतरि मलु माइआ। छपसि नाहि कछु करै छपाइआ।
बाहरि गिआन धिआन इसनान। अंतरि बिआपै लोभ सुआनु।
अंतरि अगनि बाहरि तन सुआह। गलि पाथर कैसे तरै अथाह।
जाकै अन्तर बसै प्रभु आपि। नानक ते जन सहजि समाति॥
(सलोक ५ सुखमनी म० ५)

इसी प्रकार गुरु जी ने श्राद्ध करने, मूहूर्त देखने, शकुन-अपशकुन विचारने की भी निन्दा की है।

'वैराग्य' के सम्बन्ध में उनका मत है कि जीव को संसार में जल में कमल के समान निर्लिप्त और अनासक्त होकर रहना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुरु अर्जुनदेव ने आध्यात्मिक तत्त्वों का निरूपण बड़ी स्पष्टता एवं विशदता से किया है।

सामाजिक एवं व्यावहारिक जीवन-दर्शन

उपर्युक्त आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चिन्तन से जुड़ा हुआ गुरु अर्जुनदेव का एक स्वस्थ सामाजिक एवं व्यावहारिक जीवन-दर्शन भी हैं, जिसका आधार है, शुभ-कर्म और सदाचरण; जो सुखी व आनन्दमय जीवन का स्रोत है।

गुरु जी ने एक ओर तो विषय-वासनाओं के त्यागने; अहंकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं को वश में करने; तृष्णा की अग्नि को शान्त करने; पर-धन, पर स्त्री, पर निन्दा से दूर रहने; अपकार, ठगी, छल, कपट आदि अन्य सभी कुवृत्तियों, दुष्कर्मों, विकृतियों व विसंगतियों से बचने पर बल दिया है, क्योंकि ये

---

७६. (i) १-३/८/३ सुखमनी म० ५ सलोकु
(ii) ४/१/१५८ राग गउडी मालवा म० ५
(iii) ४/९६/१६५ गउडी म० ५
(iv) ८/१०७ गउडी म० ५
(v) ४/८०/१४९ गउडी म० ५
(vi) ७/५८ आसा महला ५

सभी दुःख के मूल कारण हैं; वासनाओं की अग्नि में जलना नरक के समान है व सांसारिक भोग-विलास मृतक को आभूषणों से सुसज्जित करने के समान हैं।

दूसरी ओर उन्होंने सदाचरण, आत्म-शुद्धि, सत्य, सत्संगति, लोक-सेवा, लोक-हित, समता, मैत्री, विनम्रता, परोपकार, कृतज्ञता, आतिथ्य, श्रद्धा, विश्वास अनासक्ति व श्रम के महत्त्व का प्रतिपादन किया है, क्योंकि ये ही सद्वृत्तियाँ एवं सत्कर्म सुख तथा आनन्द प्रदान करते हैं। गुरु जी की मान्यता है कि उत्तम आचरण से ही मनुष्य श्रेष्ठ बनता है। परस्त्री-गमन की भी उन्होंने निन्दा की है और कुमार्गगामी स्त्री की भी। पतिव्रता उनका आदर्श है। वे उस गृहस्थ को ही श्रेष्ठ मानते हैं जो गुरुमुख की सेवा करता है तथा संसार में निर्लिप्त भाव से रहता है। वे यह भी मानते हैं कि श्रमपूर्वक आजीविका कमा कर जीवन निर्वाह करना ही श्रेयष्कर है।

जन्म पर आधारित वर्ण-व्यवस्था व जाति-पाँति का भी उन्होंने विरोध किया है। अच्छे कार्य करने वाला व्यक्ति ही श्रेष्ठ है, चाहे वह ब्राह्मण हो या शुद्र। हरि भक्ति करने का सबको अधिकार है। वे सामाजिक समता में विश्वास रखते हैं।

इस प्रकार उन्होंने स्वस्थ व सुन्दर जीवन-दर्शन का प्रतिपादन किया है और उनका सामाजिक दृष्टिकोण सभी के लिए अत्यन्त मंगलकारी है।

उन्होंने आदर्श व्यक्ति, आदर्श मूल्यों एवं आदर्श समाज के निर्माण का प्रयास किया है।

उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया है कि हमारी कथनी और करनी में तथा उपदेश और आचरण में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए।

३

नवें गुरु श्री तेगबहादुर : वैराग्य और वीरता की प्रतिमूर्ति

आदर्श व्यावहारिक जीवन को आध्यात्मिक चिन्तन की आधार भूमि मानने वाले गुरुओं ने अनासक्ति एवं अलिप्तता के दर्शन को दृढ़ता से अंगीकार किया था। अतः, सभी गुरु हरि-भक्त में लवलीन परम संत थे, यद्यपि कालान्तर मे उन्हें अधर्म, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध खड्ग धारण करने को भी विवश होना पड़ा। यवन शासकों की धार्मिक कट्टरता तथा गुरु अर्जुनदेव की शहीदी ने गुरु हरगोबिन्द को खड्ग धारण करने को बाध्य किया था, लेकिन, वे निरन्तर अपनी आध्यात्मिक साधना में प्रवृत्त रहे। गुरु तेगबहादुर भक्ति और शक्ति के पुंज इसी महापुरुष के पुत्र थे। वे त्याग और वैराग्य की प्रतिमूर्ति थे। गुरु तेगबहादुर का जन्म सन् १६२१ में अमृतसर में हुआ था। बचपन से ही वे साहस और शक्ति के पुंज थे; निर्भयता और स्वतंत्रता के प्रतीक थे। उनमें अध्यात्म एवं वीरता का अद्‌भुत सामंजस्य था और वे एक अनासक्त योगी का सा जीवन व्यतीत करते रहे थे। भौतिक पदार्थों के प्रति उनके मन में कोई आसक्ति नहीं थी। वे तो एक विरक्त साधु की भाँति निरन्तर हरि-भक्ति में तल्लीन रहते थे। गुरुता से प्रति भी वे सर्वथा उदासीन थे और वकाला ग्राम में लगभग २० वर्षों तक समाधिलीन रहकर ईश-चिन्तन करते रहे। समाधि की अवस्था में वे न किसी की कुछ सुनते थे न किसी से कुछ बोलते थे। भाई सुक्खासिंह ने उनकी इस समाधिस्थ अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया है—

लगी समाध इह विधि प्रकार।
बोले न वचन को कहे हजार (गुरु विलास : १ : ११३)

महाकवि भाई संतोखसिंह ने भी उनके चरित्र का विश्लेषण करते हुए उनके संत-स्वभाव का निरूपण इस प्रकार किया है—

नहि मन कुछ श्री तेगबहादुर।
इक रस ब्रिती अनादर सादर। (गुरुप्रताप सूरज, राशि ८ : ५५ : ४५)

गुरु तेगबहादुर का बाल्यावस्था का नाम त्यागमल था जो उनके विरक्त स्वभाव के सर्वथा अनुरूप था। लेकिन पैंदेखाँ नाम के एक कृतघ्न एवं विश्वासघाती पठान ने जब गुरु हरगोबिन्द पर अकारण आक्रमण किया तो किशोरावस्था में ही त्यागमल ने अपनी तेग (तलवार) से ऐसे जौहर दिखाए कि तभी से उनका नाम 'तेगबहादुर' पड़ गया। 'तेगबहादुर' ने पुनः मानवीय स्वतन्त्रता के महान आदर्श के लिए आत्म-बलिदान देकर 'त्यागमल' नाम को भी सार्थक कर दिखाया। एक ओर तो उन्होंने धर्म-असहिष्णु एवं अत्याचारी शक्तियों की चुनौतियों का दृढ़ता-पूर्वक सामना किया और दूसरी ओर 'वसुधा के संपूर्ण राज्य को बालू की भीति के समान' मिथ्या मानकर उसके परित्याग का आदर्श प्रस्तुत किया और मनुष्य मात्र की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उन्होंने स्वयं को आत्मोत्सर्ग के लिए प्रस्तुत कर दिया। उनका निश्चय था—'सिर दीजे बाहिं न छोड़ियै' तथा 'घर पइये, धर्म न छोड़िये' और इसी लिए उन्होंने अपना बलिदान देना उचित समझा। विक्रम संवत् १७३२, मग्घहर की पंचमी (सन् १६७५) को दिल्ली के चाँदनी चौक में एक विशाल जन समूह के सामने गुरुजी को कत्ल कर दिया गया था।

गुरुजी शीश देकर 'हिन्द की चादर' बन गए और इस तरह उन्होंने हिन्दू-धर्म की रक्षा की। गुरु तेगबहादुर सिक्ख-परम्परा के एक विशिष्ट शहीद हैं।

बलिदान की विलक्षणता

किसी आस्था या विश्वास के लिए; अथवा किसी आदर्श या सिद्धान्त की रक्षा के लिए सहर्ष आत्मोत्सर्ग कर देना ही 'शहीदी' का लक्षण है। 'शहीदी' की अवधारणा का मूलाधार बलिदान एवं त्याग है।

गुरु तेगबहादुर का बलिदान ऐसा ही विलक्षण एवं उदात्त है। उनकी शहीदी की महिमा का वर्णन उनके पुत्र गुरु गोबिन्दसिंह जी ने इस प्रकार किया है—

तिलक जंजु राखा प्रभ ताका। कीनो बडो कलू महि साका।
साधनि हेति इति जिनि करी। सीसु दीया परु सी न उचरी ॥३॥
धरम हेतु साका जिनि कीआ। सीसु दीआ परुसिररु न दीआ।
नाटक चेटक कीए कु काजा। प्रभ लोगन कह आवत लाजा ॥४॥
ठीकरी फोरि दिलीस सिरि प्रभपुर कीयो पयान।
तेग बहादर सी क्रिया करी न किनहूँ आन ॥५॥
तेग बहादर के चलत भयो जगत को सोक।
है है है सब जग भयो जै जै जै सुर लोक ॥६॥

(बचित्र नाटक, अध्याय ५)

उनकी शहीदी में कश्मीरी पंडितों की 'शरणागत रक्षा' का भाव अवश्य है, जिसे 'बाँह पकरिये तो बाँह न छोडिये' के शब्दों में व्यंजित किया जाता रहा है। लेकिन, हम समझते हैं कि गुरु तेगबहादुर का आत्म-बलिदान केवल इस 'प्रण' को निभाने मात्र के लिए नहीं था, वरन् इस बलिदान का लक्ष्य इससे कहीं अधिक व्यापक एवं उदात्त था। वे एक आस्था और सिद्धान्त के लिए शहीद हुए थे, न कि मात्र अपने 'प्रण' की रक्षार्थ अथवा 'शरणागत' की रक्षार्थ।

गुरुजी ने अपने धार्मिक विश्वास एवं आस्था के लिए आत्मोत्सर्ग नहीं किया, वरन् दूसरे लोगों के धार्मिक विश्वासों की रक्षा के लिए उन्होंने अपना बलिदान किया। 'गुरु-शोभा'[1] तथा 'दशम्-ग्रंथ'[2] के अनुसार भी गुरु तेगबहादुर ने अपना बलिदान हिन्दुओं के 'जनेऊ' और 'तिलक' की रक्षा के लिए दिया था। भाई संतोखसिंह के अनुसार उन्होंने 'हिन्दुओं की चादर' बनकर उनकी लाज बचाई थी।[3]

इन सभी साक्ष्यों से स्पष्ट है कि गुरु तेगबहादुर ने हिन्दुओं, विशेष रूप से ब्राह्मणों के धार्मिक आचरण, विश्वासों एवं आस्थाओं की रक्षा के लिए अपना बलिदान दिया था। अन्यथा न तो उनका इस प्रकार के धार्मिक आचरण में अपना कोई विश्वास था और न ही उनके निजी धर्माचरण पर संभवतः कोई प्रत्यक्ष संकट ही था। 'तिलक' और 'जनेऊ' धारण करने में उनकी निजी आस्था कतई नहीं थी। गुरु नानक ने स्पष्ट रूप से जनेऊ धारण करने का निषेध किया है। लेकिन फिर भी उन्होंने उस 'जनेऊ' की रक्षा के लिए अपना बलिदान दिया। वस्तुतः, जनेऊ तो एक प्रतीक है। वे तो इसलिए शहीद हुए कि उन्हें यह सह्य नहीं था कि कोई धर्मावलम्बी दूसरे धर्मावलम्बी को अपना धर्माचरण करने से रोके और अपना धर्म-कर्म अपनाने के लिए विवश करे। फिर चाहे वह हिन्दू का धर्म हो, ब्राह्मण का हो या मुसलमान का। उनका तो स्वतंत्र, स्वच्छंद धर्माचरण में विश्वास था और इसी धार्मिक-स्वतंत्रता की रक्षा के लिए उन्होंने अपना बलिदान दिया था।

गुरु तेगबहादुर का विरोध इस्लाम या किसी अन्य धर्म से नहीं था, वरन् औरंगजेब और उसके जुल्मों से था जो कट्टरपंथी मुल्लाओं और काजिओं के कहने से दमनकारी धर्म-चक्र का प्रवर्त्तन कर रहा था। इस सम्बन्ध में मैं महामहिम पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह जी के शब्दों को उद्धृत करना उपयोगी समझता हूँ। उन्होंने एक वक्तव्य में कहा था कि "गुरु तेगबहादुर ने उस जालिम बादशाह की

---

१. सेनापति—गुरु-शोभा। ११६

२. गुरु गोविन्दसिंह—विचित्र नाटक ५ : १३

३. हिंदु लाज राखी बनि चादर। तुरक जुवासा को बड बादर।

(गुरु-प्रताप सूरज : रा : ५ : १ : १२)

कट्टर धर्म-नीति का विरोध किया था, जिसने अपने स्वार्थवश अपने पिता को कैद किया हुआ था और अपने भाइयों का कत्ल करवा दिया था। जिसे न अपनी बहनों पर विश्वास था न अपनी बेटियों पर। जो दूसरों को अपने धर्माचरण की आजादी देने से इंकार करता था और अपनी सत्ता को बरकरार रखने के लिए ऐसी धर्म-नीति का पालन कर रहा था जिससे कट्टरपंथी मुल्लाओं और काजियों को खुश करके उनका समर्थन प्राप्त कर सके। हिन्दुओं को ही नहीं, सरमद जैसे मुसलमान फकीर को भी जिसकी संकुचितता और असहिष्णुता का शिकार बनना पड़ा था।"[४] वस्तुतः, गुरु तेगबहादुर मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता के लिए शहीद हुए, न कि किसी एक धर्म की रक्षा के लिए।

गुरु तेगबहादुर ने अत्याचार, आतंक, धर्मान्धता एवं असहिष्णुता के विरोध में; सत्य, न्याय, धार्मिक-सहिष्णुता एवं धर्माचरण की स्वतंत्रता के महान आदर्श के लिए आत्म-बलिदान दिया था। यह दासता की मनोवृत्ति के विरुद्ध, स्वातंत्र्य-चेतना के लिए किया गया महान बलिदान है। यह निरंकुशता और दमन के खिलाफ निर्भयता एवं साहस की लड़ाई है। गुरु तेगबहादुर ने निर्भयता और साहस के साथ इतिहास की चुनौतियों का सामना किया। उनकी व्यक्ति-चेतना की स्वच्छंदता और स्वतंत्रता में दृढ़ आस्था थी। उसी की रक्षार्थ उन्होंने यह आत्म-बलिदान दिया था और यही इसकी सबसे बड़ी विशिष्टता और विलक्षणता है। गुरु तेगबहादुर निरन्तर अध्यात्म-चेतना में स्थित रहने वाले और उच्च मानवीय, नैतिक एवं उदात्त मूल्यों में विश्वास रखने वाले महान् संत थे। आत्मा और परमात्मा की सत्यता और मानव-एकता के सिद्धान्त में भी इनका दृढ़ विश्वास था। इसीलिए उन्होंने सहिष्णुता, न्याय, सत्य, स्वतंत्रता आदि महान् मूल्यों की स्थापना के लिए आत्मोत्सर्ग किया। सांसारिकता से अनासक्त और अलिप्त रहकर, अहंकार को त्याग कर, एक महान् कर्मयोगी की भाँति दृढ़ता, धैर्य, निर्भीकता एवं वीरता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया। उनका बलिदान भी उनकी स्वातंत्र्य-चेतना का प्रतीक है जो उनके रहस्यात्मक अनुभवों और अध्यात्म-चिन्तन की भी देन है। यही स्वातंत्र्य-चेतना वे अपने युग के जन-मानस में जागृत करना चाहते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसमें वे पूर्णतया सफल भी हुए।

गुरु तेगबहादुर के महान बलिदान ने स्वतंत्रता, वीरता एवं निर्भीकता की एक प्रखर चेतना उत्पन्न की। गुरु तेगबहादुर का बलिदान विवशता अथवा असहाय दशा को प्रकट नहीं करता, वरन् वीरता, दृढ़ता, साहस एवं निर्भीकता का एक ऐसा ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो विश्व इतिहास में दुर्लभ है। स्वातंत्र्य-

---

४. गुरु गोविंद सिंह फाउंडेशन, चण्डीगढ़ द्वारा 'गुरु तेगबहादुर की शहीदी' पर आयोजित संगोष्ठी में अध्यक्षीय भाषण से उद्धृत।

चेतना की उपलब्धि के लिए आत्म-बलिदान का जो मार्ग गुरु तेगबहादुर ने चुना था, वही आगे चलकर हमारे स्वातंत्र्य-आन्दोलन की आदर्श नींव बना। गुरु तेगबहादुर द्वारा संस्थापित स्वातंत्र्य-चेतना (Spirit of Liberty and Freedom) एवं धर्म-निरपेक्षता अथवा धर्म-स्वतंत्रता का महान् आदर्श भी आज के मनुष्य का सबसे बड़ा लक्ष्य और आदर्श है।

देश में स्वतंत्रता की जो चेतना मरने लगी थी, वह पुनः जीवित हो उठी। हिन्दुओं की सुप्त वीरशक्ति चंडी का रूप धारण करके प्रकट हो गई। एक नवीन एवं प्राणवान सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना ने जन्म लिया जिसने आगे चलकर एक सशक्त आन्दोलन का रूप धारण कर लिया और भारत के इतिहास को एक नया मोड़ दिया।

गुरु तेगबहादुर का बलिदान रचनात्मक एवं स्फूर्तिदायक था। उनके बलिदान ने एक अद्भुत चमत्कार उपस्थित कर दिखाया। असत्य, अन्याय एवं अधर्म के विनाश के लिए एक नई वीरशक्ति ने जन्म लिया। एक नई चेतना जाग उठी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि गुरु तेगबहादुर की शहीदी ने आतंकवादी एवं दमनकारी मुगल शासन की ऐसी जड़ें हिलाईं कि वह पुनः स्थापित नहीं हो सका और धीरे-धीरे वह विनष्ट हो गया। साथ ही भारतीयों में दासता, अन्याय, अत्याचार, आतंक, उत्पीड़न को सहन न करने और अपनी स्वातंत्र्य-चेतना की रक्षा के लिए बलिदान देने की परम्परा की शुरुआत भी यहीं से होती है। गुरु तेगबहादुर के बलिदान ने उनके अनुयायियों को आतंकित या भयभीत नहीं किया, वरन् इसने उनमें इतनी दृढ़ता, धैर्य, शक्ति, साहस, निर्भीकता एवं निष्ठा पैदा की कि वे सत्य और न्याय के लिए निरन्तर अपना बलिदान देते चले गए।

गुरु तेगबहादुर के बलिदान की क्या-क्या प्रतिक्रियाएँ हुईं, क्या-क्या परिणाम निकले, इसके लिए 'गुरु शोभा', 'गुरु विलास' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' आदि के साक्ष्य उस युग की लोक-चेतना के ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवि सेनापति ने 'गुरु शोभा' में उनके बलिदान का अभिनन्दन इस प्रकार किया है—

प्रगट भए गुरु तेगबहादर। सगल स्रिसटि पै ढापी चादर।
करम धरम की जिनि पति राखी। अटल करी कलजुग में साखी ॥४॥
समल स्रिसटि जाका जस भयो। जिह ते सरब धरम बच्यो।
तीन लोक मैं जै जै भई। सतिगुर पैंज राखि इम लई ॥५॥
तिलक जनेऊ अरि धरमसाला। अटल करी गुर भए दिआला।
धरम हेति प्रभु पुरहि सिधाए। गुर गोबिंदसिंह कहिलाए ॥६॥

(गुरु शोभा : १)

'गुरु शोभा' गुरुजी के बलिदान के तुरन्त बाद की रचना है। इसलिए उसमें

तात्कालिक प्रतिक्रिया का प्रामाणिक वर्णन है। इसके अनुसार 'गुरुजी ने हिन्दुओं के तिलक, जनेऊ की ही रक्षा नहीं की, वरन् सम्पूर्ण सृष्टि की चादर बनकर 'सरब धरम-करम' की रक्षा की। इसलिए तीनों लोकों में उनकी जय-जयकार हुई, सारी सृष्टि में उनका यश फैल गया।"

'गुरु प्रताप सूरज' इस घटना के लगभग १५० वर्ष पश्चात् की रचना है। जबकि इतिहास कई करवटें बदल चुका था। यवनों और हिन्दुओं-सिक्खों के बीच बहुत कुछ घटित हो चुका था। गुरु तेगबहादुर ने निर्भीकता, साहस, दृढ़ता, वीरता एवं बलिदान की जिस परम्परा का प्रवर्त्तन किया था, वह अपना रंग दिखा चुकी थी। यवन-शासन डोल चुका था। अतः, भाई संतोखसिंह द्वारा किया गया इस महान् बलिदान की विशिष्टता, महानता एवं परिणामों आदि का निरूपण अत्यन्त सार्थक है—

हिन्दू धरम रखहिं जग माहीं। तुमरे करे बिनस है नाहीं।
(रा० १२ : ६४ : ४४)

सिर दे हिंदुनि धरम उबारहिं। तुरक राज की जरां उखारहि।
धन्न गुरु तुम बिन अस काजू। अपर करहि को रिखियन आजू।
हिंदू धरम जग लियो बचाई। सभि सुर गन की कीनी सहाई।
(रा० १२ : ६६ : ३)

तोम तेज तुरकेस तमीपांत। फीको पर्यो प्रकाश भयो हति।
शरह कुचलणी निशा बिनाशी। हिन्दू कोक पाई सुखरासी।
(रा० १२ : ६८ : २७)

निःसन्देह, गुरु तेगबहादुर ने अपना सीस देकर हिन्दू धर्म की रक्षा की और धर्मान्ध तुर्केश्वर के राज्य की जड़ें उखाड़ीं। इसलिए सारे जगत ने कृतज्ञता के भाव से अभिभूत होकर उनका अभिनन्दन किया। क्योंकि उनका बलिदान अन्य सभी से विशिष्ट था, महान था, उदात्त था।

गुरु तेगबहादुर की वाणी

गुरु तेगबहादुर ने केवल ११६ शब्द-श्लोकों की रचना की हैं। उनकी काव्य-रचना परिमाण की दृष्टि से बहुत कम है, किन्तु वह कम महत्त्व की नहीं है। उनकी वाणी में वे सभी तत्त्व विद्यमान हैं जो 'गुरुवाणी' परम्परा में आरम्भ से अन्त तक प्रवाहमान रहे हैं। उनमें वैराग्य एवं आनन्द का विमल सौन्दर्य व्याप्त है। वह चित्तवृत्तियों के परिष्कार एवं उदात्तीकरण का महान उद्देश्य लेकर लिखी गई है। वह मानव-मंगलकारी भावनाओं का उद्‌बोधन करती है। सरलता एवं सहजता उसके प्रमुख गुण हैं। उसमें संगीतात्मकता, मधुरता एवं सरसता है। उनकी वाणी में कहीं भी दुर्बोधता, जटिलता अथवा अस्पष्टता नहीं है।

आध्यात्मिक विचार

गुरु तेगबहादुर की वाणी का मुख्य स्वर भक्ति है। भक्ति को यहाँ पूर्ण जीवन दृष्टि के रूप में स्वीकार किया गया है। श्री गुरु तेगबहादुर ने हरि-भक्ति को 'निर्भय पद' प्रदान करने वाली कहा है।[५] उनका मत है कि 'भक्ति से ही सब संकटों का नाश होता है और परमात्मा के दर्शन होते हैं। उसके समान और कुछ भी नहीं है।[६] हरि-भक्ति के बिना मनुष्य यम के फंदे में फँसा रहता है और उसका जीवन व्यर्थ चला जाता है।[७] भक्ति-विहीन व्यक्ति को गुरुजी ने 'सूकर' एवं 'श्वान' के समान कहा है।[८]

परमात्मा के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना भक्ति का मूल तत्त्व है। गुरु तेगबहादुर ने प्रभु-प्रेम एव हरि के गुणगान के महत्त्व का निरूपण इस प्रकार किया है—

रे मन राम सिउ करि प्रीति।
स्रवन गोविंद गुन गुनउ अरु गाउ रसना गीति।

× × ×

साधो गोविंद के गुन गावउ।
मानस जनम अमोलक पाइओ बिरथा काहि गवावउ।

'नाम-स्मरण' इस आध्यात्मिक यात्रा का प्रथम सोपान है। 'नाम-स्मरण' की यह पावन-मधुर झंकार गुरु तेगबहादुर की वाणी में सर्वत्र सुनी जा सकती है। यथा—

"राम भजु राम भजु जनम सिरातु है।"

अथवा

"राम सिमर राम सिमर इहे तेरे काजि है।"

यहाँ हरि-नाम-स्मरण को दुखों को नष्ट करने वाला कहा गया है। 'नाम-स्मरण' के बिना मनुष्य को निरन्तर दुखों को भोगना पड़ता है—

"दुख हरता हरि नाम पछानो।"

× × ×

---

५. कहु नानक हरि भजु मना निरभै पावहि वासु।
(वही, सलोकु महलाँ ९, ३३)

६. राम नाम उर मै गहिओ जाकै सम नहीं कोई।
जिस सिमरत संकट मिटै दरसु तुहारो होई। (वही, ६-५७)

७. कहु नानक बिनु हरि भजन परत ताहि जम फंध। (वही, २६)

८. एक भगति भगवान जिह प्रानी कै नाहि मन।
जैसे सूकर सुआन नानक मानो ताहि तन। (वही, ४४)

"हरि के नाम बिना दुख पावै ।"

गुरु तेगबहादुर का कथन है कि हरि-नाम के स्मरण से दुर्मति का नाश होता है एवं मुक्ति प्राप्त होती है । अतः, जो व्यक्ति हरि-नाम का स्मरण नहीं करता वह इस अमूल्य मनुष्य जन्म को व्यर्थ में खो देता है—

"जा मैं भजनु राम का नाँही ।
तिह नर जनम अकारथ खोइआ यह राखहु मन माही ।"

गुरु तेगबहादुर ने पुनः-पुनः नाम-स्मरण को मुक्ति का मूल-मंत्र बताया है । हरि का नाम सदा सुखदायक है । नाम-स्मरण से ही अजामिल, गणिका एवं गज जैसे पापियों का उद्धार हो गया—

"हरि को नामु सदा सुखदाई ।
जाकउ सिमरि अजामलु उधारिउ गनकाइ गति पाई ।"

गुरु तेगबहादुर के अनुसार जिस प्राणी के मन में हरि-भक्ति का पवित्र भाव व्याप्त नहीं है, उसके शरीर को श्वान एवं सूकर के समान अपवित्र समझना चाहिए—

"एक भगति भगवान जिह प्रानी के नाहि मन ।
जैसे सूकरु सुआन नानक मानो ताहि तन ।"

गुरु तेगबहादुर की निर्गुण ब्रह्म की भक्ति में आस्था थी । उनका इष्टदेव घट-घट में निवास करने वाला परब्रह्म है —(घटि-घटि मैं हरि जू बसै) । उस प्रभु के लिए उन्होने 'अगनत-अपार', 'अलख-निरंजन', 'सर्व निवासी', 'सदा अलेपा' आदि शब्दों का प्रयोग किया है, जो उसके निराकार स्वरूप के परिचायक हैं, तथापि वह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक एव सर्वज्ञ है ।

गुरुजी की भक्ति-भावना में वैष्णव-भक्ति के अनेक तत्त्व विद्यमान हैं । हरि-भक्ति के अन्तर्गत परमात्मा के प्रति श्रद्धा और ।वश्वास आवश्यक है । गुरुजी ने अजामिल, गणिका, गज आदि के पौराणिक प्रसंगों के माध्यम से परमात्मा की दयालुता, भक्त-वत्सलता एवं पतित-उद्धारक रूप का निरूपण करके उसके प्रति श्रद्धा एवं विश्वास उत्पन्न किया है । राम-नाम के प्रति उनकी अडिग आस्था है । सभी सुखों के दाता वे उसे ही मानते हैं—अन्य किसी को नहीं—

"सभ सुख दाता रामु है, दूसर नाहिन कोइ ।"

प्रपत्ति, दैन्य एवं समर्पण को भी गुरु जी ने अपनी भक्ति में यथोचित स्थान दिया है,[९] किन्तु किसी भी प्रकार के बाह्याचार अथवा साधना-पद्धति का उसमें

---

९. (क) सरन गही किरपानिधि तेरी ।
(ख) साधो राम सरनि बिसरामा ।
(ग) नानक सरनि परिउ जगवंदन ।
(घ) राखहु विरदु तुहारा ।
(ङ) कहु नानक सभ विपत में टेक एक रघुनाथ ।

कोई स्थान नहीं है—

परमात्मा के लिए अन्य गुरुओं की भाँति उनकी वाणी में भी राम, गोविंद, हरि, मुरारि, नारायण, रघुनाथ आदि वैष्णव परम्परा के नाम ही आये हैं, किन्तु वे सभी निर्गुण ब्रह्म के प्रतीक हैं।

संतों एवं अन्य गुरुओं की भाँति इन्होंने आध्यात्मिक-साधना के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए गुरु की महिमा का भी वर्णन किया है।

संसार, शरीर, सांसारिक वैभव एवं लौकिक-सम्बन्धों आदि की असारता एवं मिथ्यात्व का निरूपण गुरुजी ने विशदता से किया हैं और इनके प्रति अनासक्ति का निर्देश किया है, जो प्रभु-भक्ति के लिए परम आवश्यक है। इसी प्रकार परमात्मा के प्रति अनुरक्ति उत्पन्न करने के लिए मोह-माया, अहंकार, लोभ, क्रोध एवं विषयासक्ति आदि के परित्याग को भी उन्होंने अनिवार्य माना है। आध्यात्मिक चेतना सम्पन्न व्यक्ति का आदर्श व्यक्तित्व उनकी दृष्टि में इस प्रकार था—

जो नर दुख महि दुखु नहीं मानै।
सुख सनेह अरु भै नहीं जाकै कंचन माटी मानै।
नह निंदिआ नह उसतुति जाकै लोभु मोहु अभिमानु।
हरख सोग तै रहै निआरउ नाहि मान अपमान।
आसा मनसा सगल तिआगै जगतै रहै निरासा।
काम क्रोध जिह परसै नाहि तिह घटि ब्रह्म निवासा।
गुरु किरपा जिह नर कउ कीनी तिह इह जुगत पछानी।
नानक लीन भइओ गोविंद सिउ जिउ पानी संगि पानी।

वैराग्य-भावना

आध्यात्मिक चेतनासम्पन्न व्यक्ति का आदर्श आराध्य सच्चिदानन्द परब्रह्म ही है। मोह-माया के आवरण में परिछिन्न जीवात्मा संकीर्ण व्यक्तित्व का भेदन कर उसी परम तत्त्व को प्राप्त करना चाहता है। मानवीय चेतना के मूल में जो नैसर्गिक मनोवृत्तियाँ संचरणशील हैं, वे उसे लौकिक राग-द्वेष से ऊपर उठकर आध्यात्मिक साधना मार्ग की ओर अग्रसर होने से शिथिल बनाती रहती हैं। यदि उन वृत्तियों का परिष्कार अथवा निरोध कर लिया जाए, तो जीव मोह-माया के संकीर्ण आकर्षणों से विरक्त होकर परमात्मा से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रक्रिया में प्रवृत्त हो सकता है।

शरीर के सम्पर्क से चैतन्य में जीवात्मा की भावना आती है और द्वैत-बुद्धि उत्पन्न होती है तथा वह अहंकार की भावना से प्रेरित होकर दुख-द्वन्द्वों में फँसता है। यह अहंकार अथवा व्यक्तित्वाभिमान ही मानवीय चेतना के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। व्यक्तित्वाभिमान के विध्वंस के तीन उपाय मुख्य हैं। उसके प्रति

अनासक्ति रखी जाए (वैराग्य-मार्ग); उसे मिथ्या समझ लिया जाए (ज्ञान मार्ग); या उसे भगवान की ओर लगाया जाए (भक्ति मार्ग)।[१०]

'वैराग्य' का सामान्य अर्थ है—सांसारिक पदार्थों एवं ऐषणाओं का परित्याम। इहलोक और परलोक के फल-भोगों की ओर जो विरक्ति हो जाती है, उसी का नाम है वैराग्य।"[११] किन्तु, यह वैराग्य न तो आत्म-त्याग अथवा कर्मों का त्याग है और न ही कर्मों से पलायन। अर्थात्, वैराग्य सर्वथा निवृत्ति मार्ग नहीं है। यह भोगवाद का विपरीतार्थक है। इसमें 'इष्टापूर्त' से निवृत्ति तो होती है, लेकिन साथ ही धर्माचरण में प्रवृत्ति भी अनिवार्यतः अपेक्षित है।

सिक्खों के नवम गुरु श्री तेगबहादुरजी वैराग्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। अपनी वाणी में भी उन्होंने 'वैराग्य' का निरूपण बड़ी तन्मयता से किया है। उनके अनुसार "जिस व्यक्ति को सुख-दुःख, लोभ-मोह, अभिमाम स्पर्श नहीं करते, (जो दुख में दुख नहीं मानता और सुख में सुख नहीं मानता); जो इनसे निर्लिप्त रहता है, स्तुति और निन्दा में जिसकी प्रवृत्ति नहीं है, जिसके लिए स्वर्ण लोहे के समान है; मित्र और शत्रु में कोई भेद नहीं है; जो न किसी को भय देता है न किसी का भय मानता है; जो सब प्रकार की वासनाओं एवं मोह-माया का परित्याम करके उनके प्रति उदासीन हो गया है; तथा अहंकार का नाश करके जो परमात्मा में मन लगाता है और दिन-रात हरि का स्मरण करता है; वही जीव 'ज्ञानी' है, वही 'मुक्त' है, वही 'भगवान की सच्ची मूर्ति है।"[१२] 'गुरुमुख' एवं 'मुक्त जीव' का लक्षण उन्होंने

---

१०. बलदेव प्रसाद मिश्र, तुलसी दर्शन, पृ० ९५

११. वही, पृ० २१६

१२. सुखु दुखु जिह परसै नहीं लोभ मोह अभिमानु।
कहु नानक सुन रे मना सो मूरत भगवान ॥१३।
उसतति निंदिआ नाहि जिह कंचन लोह समानि।
कहु नानक सुन रे मना, मुकति ताहि ते जानि ॥१४।
हरख सोग जाकै नहीं बैरी मीत समान।
कहु नानक सुन रे मना मुकति ताहि तै जानि ॥१५।
भै काहू कउ देत नह नहि भै मानत आनि।
कहु नानक सुनि रे मना गिआनी ताहि बखानि ॥१६।
जिह बिखिआ सगली तजी लीउ भेख वैराग।
कहु नानक सुन रे मना तिह नर माथै भाग।१७।
जिह माइआ ममता तजी सभ ते भइउ उदास।
कहु नानक सुन रे मना तिह घटि ब्रह्म निवासु ॥१८।
जिह प्रानी हउमै तजि करता राम पछान।
कह नानक कहु मुकति नरु इह मन साची मान।१९।
(आदि ग्रन्थ—सलोकु महला ९ तथा सोरठि ३/११; गउडी ३/७)

इस प्रकार दिया है—

तजि अभिमान मोह माया। फुनि भजन राम चित्तु लाऊ।२/१।

(गउड़ी—२/५)

नानक मुकति ताहि तुम मानहु जिह घटि रामु समावै।
मान मोह दोनों कउ परहरि गोविंद के गुन गावै।
कहु नानक इह विधि को प्रानी जीवन मुकति कहावै।

(बिलावल २/२)

वास्तव में गुरु तेगबहादुर के 'वैराग्य' का भी यही आदर्श लक्ष्य है। ऐसा वैराग्य मुक्ति का पर्याय है। इसमें सांसारिक वासनाओं, मोह-माया एवं अहंकार आदि से निवृत्ति का निर्देश है तथा परमात्मा की भक्ति में प्रवृत्ति का। यही 'वैराग्य' का वास्तविक स्वरूप है।

व्यक्तित्वाभिमान से मुक्त प्राणी में विमल वैराग्य का उदय सरलता से नहीं होता। जन्म-जन्मान्तर से हमारे हृदयों में जो व्यक्तित्वाभिमान दृढ़ होता चला आया है उसे शिथिल करना कोई आसान काम नहीं है।[13] मोह-माया में ग्रस्त जीव का सांसारिक सुख-सुविधाओं के प्रति आकर्षित होना भी स्वाभाविक है। इन क्षुद्र-सुखों से अनासक्त होकर महान के संग्रह में प्रवृत्त होना परिश्रम-साध्य विषय है और इसके लिए दृढ़ अभ्यास की आवश्यकता है। सांसारिक सुखों से निवृत्ति के लिए माया-मोह के मिथ्यात्व का पुनः-पुनः अवबोधन करना पड़ता है, तभी उनके प्रति अनासक्ति होगी और धर्माचरण में प्रवृत्ति बढ़ेगी। धर्माचरण जिसना दृढ़ होता जाएगा, हमारे क्षुद्र व्यक्तित्व की ओर से हमारा वैराग्य भी उतना ही दृढ़ होता जायेगा।[14] जब मन में 'महान्' के संग्रह की इच्छा होगी, तभी क्षुद्र के त्याग की बात आएगी और क्षुद्र के त्याग की बात भी तभी आएगी जब हमें उसके मिथ्यात्व का ज्ञान होगा। अतः, वैराग्य का मार्ग ज्ञान का सहारा लिए बिना अपने अन्तिम ध्येय तक नहीं पहुँच सकता।[15] ज्ञान के बिना वैराग्य दृढ़ नहीं होता।

हमारे क्षुद्र व्यक्तित्व का सबसे बड़ा आधार यह नानारूपात्मक आकर्षक जगत् है, जहाँ हमारी अनेक वासनाओं की तुष्टि होती है। अतः, इस व्यक्तित्वाभिमान के विध्वंस के लिए सबसे पहले इस तथ्य का बोध होना चाहिए कि इस संसार रूपी महानाटक का सम्पूर्ण व्यवहार स्वप्नवत् है और माया का यह सारा प्रसार मृषा है, भ्रमपूर्ण है। गुरु नानक तथा अन्य गुरुओं ने संसार के मिथ्यात्व का निरूपण विशदता से किया है। गुरु तेगबहादुर ने इस मायामय जगत् की नश्वरता,

---

१३. तुलसी दर्शन, पृ० १९६
१४. वही, पृ० २१५
१५. वही, पृ० २१६

अस्थिरता एवं मिथ्यात्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि "यह संसार जल के बुदबुदे[१६] व धुएं के पहाड़[१७] के समान क्षणभंगुर एवं नश्वर है; स्वप्न के समान अस्थिर एवं मिथ्या है;[१८] यह बालू की भीति पर खड़ा हुआ है।[१९] जगत् का जितना भी दृश्यमान प्रसार है, सारा नाशवान् है।[२०] जो उत्पन्न होता है, उसका नाश अवश्य होना है।[२१] इस संसार की रचना मृग-तृष्णा के समान भ्रमपूर्ण है। इस तथ्य को हृदय में धारण करके,[२२] मनुष्य को प्रभु के नाम का स्मरण करना चाहिए;[२३] क्योंकि हरि के नाम के बिना यह सारा संसार निरर्थक है।[२४] जीव इस जगत की मोह-माया में लिपटा हुआ व्यर्थ जीवन नष्ट कर रहा है।[२५] मूर्ख लोग ऐसे सुखों में उलझे हुए हैं जो क्षणिक हैं।[२६] निःसन्देह, इनमें लिप्त रहना उचित

---

१६. जैसे जल ते बुलबुला उपजै बिनसै नीत।
जग रचना तैसे रची कहु नानक सुन मीत।२५।
(सलोकु महला ९)

१७. इहु जगु धुए का पहार।१। (वसंतु महला ९:३/४)

१८. (क) कहु नानक थिरु कछु नहीं सुपने जिउ संसारि।५०।
(श्लोक म० ९)

(ख) इहु जगु है संपति सुपने की देखि कहा ऐडानो।१।
(रागू वसंतू हिंडोल म० ९)

(ग) सगल जगत है जैसे सुपना विनसत लगत न बार।१/२/१।
(सोरठि म० ९:२/८)

१९. कहि नानक थिरु ना रहै जिउ बालू की भीत। (श्लोक म० ९:४९)

२०. जो दीसै सो सगल विनासै, जिउ बादर की छाही।१।
(सारंग म० ९:२/२)

२१. जो उपजै सो सगल बिनासै रहनु न कोउ पावै।१। (सारंग म० ९:२/३)

२२. म्रिग त्रिसना जिउ जग रचना यह देखहु रिदै विचारि॥१।
(देव गंधारी म० ९:२/२)

२३. अजहू समझि कछु बिगरिआ नाहिन भजिले नामु मुरारि।
(सोरठि म० ९:२/८)

२४. राम नाम बिनु मिथिआ मानो सगरो इहु संसारा॥
(जैतसरी म० ९:२/३)

२५. और सगल जगु माइआ मोहिआ निरभै पदु नहि पावै।
(गउडी म० ९:३/८)

२६. तैसे ही इह सुख माइआ के उरझिउ कहा गवार।१।
(सोरठि म० ९:२/८)

नहीं। इस संसार के सभी सम्बन्ध, व्यवहार एवं पदार्थ भी नश्वर हैं। मनुष्य माता, पिता, भाई, पत्नी, पुत्र आदि के स्नेह में लिपटा रहता है; धन-सम्पत्ति, वैभव एवं प्रभुता के मोह में फँसा रहता है, जबकि इन सब की प्रीति मृषा है, भ्रमपूर्ण है; इनमें से कोई भी तो अन्त में साथ नहीं देता।[२७] क्या पत्नी, क्या मित्र सभी अपने-अपने सुख में लगे हुए हैं। इस संसार में कोई किसी का मित्र नहीं है। सुख में तो बहुत लोग निकट आ बैठते हैं, लेकिन विपत्ति में कोई निकट नहीं आता। जब तक पास धन है, तब तक पत्नी, पुत्र आदि सभी का स्नेह है, जब धन नहीं रहता, तो सभी मुह मोड़ लेते है। जगत का सम्पूर्ण व्यवहार ही ऐसा है। यहाँ की प्रीति सच्ची प्रीति नहीं है। इस जगत का सम्पूर्ण वैभव एवं सम्बन्ध भी मिथ्या है; सत्य तो केवल परमात्मा का नाम है।[२८] मूर्ख व्यक्ति इस सत्य को नहीं समझता, इसलिए इसमें लिप्त रहता है और भटकता रहता है। 'गुरुमुख' इस वास्तविकता को पहचान कर इनसे विरक्त होकर परमात्मा से प्रीति करता है और भवसागर से पार उतरता है।" इस महामोह मायामय जगत से निवृत्ति एवं सच्चिदानन्द परमात्मा में प्रवृत्ति का यह मार्ग ही सच्चे वैराग्य का मार्ग है।

'व्यक्तित्वाभिमान' का सबसे बड़ा हेतु यह शरीर है। इसीलिए गुरु तेगबहादुर ने शरीर की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता का निरूपण भी एक 'विरक्त' की दृष्टि से किया है। उनका कथन हैं कि जिस शरीर का तुम इतना गर्व करते हो, यह क्षण-

---

२७. संगि तिहारै कछु न चालै ताहि कहा लपटानो ।१।
(राग बसंतु हिंडोल म० ९:२/१)

२८. (क) माता पिता भाई सुत वनिता ताकै रस लपटानो।
जोवन धनु प्रभुता के मद मै अहिनिसि रहै दिवाना।
(धनासरी म० ९:२/२)

(ख) हरि बिनु तेरो को न सहाई।
काकी मात पिता सुत बनिता को काहू का भाई ।।१।।रहाउ।
(रागु सारंग म० ९:२/१)

(ग) धनु दारा संपति ग्रेह। कछु संगि न चाले समझि लेह ।।२।।
(बसंतु म० ९:३/४)

(घ) इह जगि मीतु न देखिउ कोई।
सगल जगतु अपनै सुख लागिउ दुख में संगि न होइ ।।१।।रहाउ।।
दारा मीत पूत सनबन्धी सगर धन सिउ लागे।
जबहि निरधन देखिउ नर कउ संगु छाड़ि सभ भागे ।।१।।
(सोरठि म० ९:३/९)

(पाद टिप्पणी की अंश अगले पृष्ठ पर जारी)

भर में विनष्ट हो जायेगा ।[२९] एक दिन इसे यम का सामना करना पड़ेगा ।[३०] प्राण निकल जाने पर इसे तुरन्त घर से निकाल दिया जाता है । वह नारी जिससे अत्यधिक प्रेम था और सदा साथ रहती थी, प्रेत प्रेत कहकर भाग जाती है ।[३१] ऐसे नाशवान शरीर को मनुष्य अपना मानता है, इसे सच्चा समझता है और माया के बंधन में बँधा रहता है ।[३२] ऐसे 'गाफिल' व्यक्ति को सचेत करते हुए गुरुजी कहते है कि जो उत्पन्न होता है, उसे नष्ट अवश्य होना है; यह शरीर भी नाशवान है, इससे मोह करना व्यर्थ है ।[३३] अतः, सभी जंजालों को त्याग कर परमात्मा का

सुख मै आनि बहुत मिलि बैठत रहत चहू दिसि घेरे ।
विपति परी सभ ही संगु छाडिउ कोउ न आवत नेरे ॥१॥
(सोरठि म० ९:३/११)

(च) जमत की झूठी देखी प्रीति ॥३॥
अपने ही सुख सिउ सभ लागे किआ दारा किआ मीत ॥१॥रहाउ ।
(देव गंधारी म० ९:६/३८)
अतिकालि संगी नह कउ इह अचरज है रीति ॥१॥
मन मूरख अजहू नह समझत सिख दे हारिउ नीत ।
नानक भउजलु पारि परै जउ गावै प्रभ के गीत ।
(देव गंधारी म० ९:६/३९)

(छ) पूत रथ संपति धन पूरन सभु मही ।
अवर सगल मिथिआए जानउ भजनु राम को सही ॥१॥
(सोरठि म० ९:२/३)

२९. गरब करत है देह को विनस छिन मै मीति ॥ (श्लोक, महलाँ ९)
३०. तनु विनसे जम सिउ परै कामु ॥१॥ (वसंतु महलाँ ९:३/४)
तन ते प्रान होत जब निआरे टेरत प्रेति पुकारि ॥१॥
आध घरी कोउ नहि राखै घरि ते देत निकारि ॥१॥
(देव गंधारी म० ९:२/२)

३१. घर की नारि बहुत हित जासिउ सदा रहत संग लागी ।
जबहि हंस तजि इह काइया प्रेत-प्रेत कर भागी ।
(सोरठि म० ९:३/१)

३२. मिथिआ तनु साचो करि मानियो इह बिधि आप बँधावै ॥१॥
(सारंग म० ९: २/३)

३३. जो उपजिउ सो बिनसि है परो आजु के काल ।
नानक हरि गुन गाइले छाड़ि सगल जंजाल । (श्लोक ५२)

गुणगान करना चाहिए। मनुष्य को इस शरीर की सुन्दरता, वय, शक्ति आदि पर गर्व होता है; अपने वैभव एवं परिवार का अभिमान होता हैं। क्षुद्र अहंकार के कारण वह प्रभु का स्मरण नहीं करता। इसीलिए गुरु तेगबहादुर ने इनके भी मिथ्यात्व का निरूपण किया। उनका कथन है कि धन, धरनी, सम्पत्ति जिसे हम अपना मानते हैं, वहीं रह जाएँगे। इसलिए इनमें आसक्ति रखना व्यर्थ है।[३४] संसार के सभी सम्बन्ध एवं व्यवहार इस शरीर के जीवित रहते तक के हैं। माता-पिता, सुत, बांधव, परिवार के सभी लोग जीवित रहते तक के साथी हैं।[३५] आयु घटती जा रही है। शरीर छीजता जा रहा है। यौवनावस्था व्यतीत हो चुकी है, जरा ने शरीर पर काबू पा लिया है। काल सिर पर आ पहुँचा है।[३६] जैसे फूटे घड़े में से पानी निकलता रहता है, उसी प्रकार जीवन की अवधि समाप्त होती जा रही है।[३७] तीनों अवस्थाएँ हरिभजन बिना व्यर्थ हैं। मनुष्य को चाहिए कि समय पर सचेत हो जाए और भगवान का स्मरण करे।[३८]

---

३४. धनु धरती अरु संपत्ति सगरी जो मानिउ अपनाइ।
तन छूटे कछु संगि न चालै कहा ताहि लपटाइ ॥१॥
(राग सारंग महलाँ ९:२/१)

३५. सभ किछु जीवित को बिवहार।
मात पिता भाइ सुत बंधव अरु फुनि ग्रह की नारि ॥१॥रहाउ॥
(देव गंधार म० ९:२/२)

३६. तरनापो इउ ही गइओ लीओ जरा तनु जीति।
कहु नानक भज हरि मना अउध जातु है बीति ॥३॥
विरधि भइओ सूझे नहीं कालु पहुचिओ आन ॥४॥
(श्लोक महला ९)

३७. छिनु छिनु अउध विहातु है फूटे घट जिउ पानी। १३६।३।
(तिलंग म० ९ : २१)

३८. (क) बाल जुआनी अरु विरध फुनि तीनि अवस्था जानि।
कहु नानक हरि भजन बिनु बिरथा सभ हो मान। (श्लोक ३५)

(ख) भै मरबे को विसरत नाहनि तिहू चिंता तनु जारा।
(राग जैतसरी म० ९ : ३२)

(ग) काल बिआलु जिउ परिउ डोले। फुनि तोहि ग्रसि है समझि राखउ चीति।
कहै नानकु राम भजि लै जातु अवसरु बीत।
(सोरठि म० ९ : २१)

वैभव का गर्व भी मृषा है। धन-सम्पत्ति, रथ, राज्य सब उसी समय पराए हो जाते हैं, जब काल गले में फाँसी का फंदा डालता है। मनुष्य अपने परिवार एवं कुल का अहंकार करता है, किन्तु वे भी नाशवान् हैं।[३९] राम और रावण आदि के कुल एवं परिवार भी नष्ट हो गए। अतः, यह कुल गौरव एवं वंश का अभिमान भी मिथ्या है।[४०]

गुरु नानक ने अहंकार (हउमै) के विभिन्न कारणों, विविध रूपों एवं उसके निराकरण के उपायों का विशदता से निरूपण किया है। गुरु तेगबहादुर ने भी अहंकार के मुख्य अभिधान-शरीर, यौवन, सुन्दर-नारी, कुल-परिवार, धन-सम्पत्ति, वैभव, राज्य आदि की नश्वरता, अवास्तविकता अथवा मिथ्यात्व पर प्रकाश डालते हुए उनके प्रति अनासक्ति एवं वैराग्य की भावना को प्रश्रय दिया है। उन्होंने अहंकार को त्याग कर सत्संगति करने का आदेश दिया है जिससे क्षण भर में मुक्ति प्राप्त हो सकती है—

तजि अभिमानु सरनि संतणि गहु मुकति होइ छिन माही।

(सारंग म० ९ : २/२)

गुरु तेगबहादुर ने मृत्यु का भय दिखाकर भी मनुष्य को सांसारिक आकर्षणों से विरक्त रहने का सन्देश दिया है। मनुष्य के हृदय में मृत्यु का भय निरन्तर बना रहता है और इस चिन्ता से उसका शरीर जर्जरित होता रहता है। जीव को यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि 'काल-व्याल' किसी भी समय आकर ग्रस लेगा, इसलिए उसे प्रभु का स्मरण करते रहना चाहिए—अन्यथा अवसर बीतता जा रहा है। प्राणी को ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे यम का त्रास मिटे और भगवान की भक्ति में प्रवृत्ति हो।[४१] निःसन्देह, वह उपाय 'वैराग्य' का ही मार्ग हो सकता है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि इस महामोह माया के प्रबल अंग हैं जो चंचल मन को इस प्रपंच में उलझाये रखते हैं और उसे परमात्मा की भक्ति में प्रवृत्त होने नहीं देते। परमात्मा में आसक्ति तभी होगी जब माया के इन तत्त्वों पर विजय प्राप्त कर ली जाये। इसलिए इनके प्रति निवृत्ति अथवा अनासक्ति उत्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक है। गुरु तेगबहादुर का कथन है कि 'मन निसिदिन

---

३९. संपति रथ धन राज सिउ अति नेह लगाई।
काल फास जब गलि परी सभ भइउ पराई ॥१॥ (तिलंग म० ९ : ३३)

४०. राम गइउ रावनु गइओ जाकउ बहु परवार।
कहु नानक थिरु कछु नही सुपने सिउ संसार। (श्लोक ५०)

४१. प्रानी कउनु उपाउ करै।
जातै भगति राम की पावै जम को त्रास हरै ॥१॥ (म० ९/३/५)

माया में मग्न रहता है, इसलिये इसकी मलिनता नहीं छूटती।"[४२] सारा जीवन इस भ्रम जाल में भटकते नष्ट हो जाता है। चित्त स्थिर नहीं होता,[४३] महामोह रूपी अज्ञान के अंधकार में मन उलझा रहता है और प्रभु के दर्शन नहीं होते।[४४] मद-माया के कारण पागल बना रहता है, अपने स्वार्थ के लिये अनेक प्रपंच रचता है, श्वान की पूँछ की भाँति कभी सीधा नहीं होता और न किसी का कहा मानता है।[४५] ऐसे व्यक्ति को कभी भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता, उसे इस मर्म का भी बोध नहीं होता है कि उसी के अन्तर में प्रभु स्थित है। मद-माया में पागल बना हुआ वह प्रभु का स्मरण नहीं करता।[४६] हरि-भक्ति के अभाव में मद-माया के अंधकार में भटकते हुए उस व्यक्ति के गले में यम का फंदा पड़ा रहता है।[४७]

महामोह माया के सबसे बड़े सहायक हैं—काम एवं लोभ। मन कभी विषय-वासनाओं में अनुरक्त होता है, तो कभी धन-सम्पत्ति की तृष्णा उसे व्यथित करती है। "कामिनी और कंचन की प्रीति में आसक्त होकर वह हरि-भक्ति से विमुख रहता है।"[४८] गुरु जी ने इस तथ्य का निरूपण करते हुए कहा है कि इस पापी हृदय में 'काम' बसा हुआ है, इसलिए यह चंचल मन वश में नहीं होता। क्या योगी

---

४२. मगन रहिउ माइआ मैं निसिदिन छूटी न मन की काई।
(टोडी म० ९ : २/१/३१)

४३. सगल जनम भरम ही भरम खोहिउ नह असथिरु मति पाई।
(सोरठि म० ९ : २/६)

४४. माई मैं किहि विधि लखउ गुसाई।
महामोह अगिआनि तिमरि मा मनु रहिउ उरझाई। रहाउ। (वही)

४५. मदि माइआ कै भइउ बावरो हरि जसु नहीं उचरै।
करि परपंच जगत कउ डहकै अपनो उदरु भरै।
सुआन पूछ जिउ होइ न सूधो कहिउ न कान धरै।
(राग देव गंधारी म० ९ : २/१)

४६. मद माइआ के भईउ बावरो सूझत नहि कछु गिआना।
घटही भीतरि निरंजनु ताको मरमु न जाना ॥२॥
मद माइआ कै भइउ बावरो हरि जसु नहीं उचरै।
(सोरठि म० ९ : ३/७)

४७. प्रानी कछु न चेतई मद माइआ के अंध।
कहु नानक बिनु हरि भजन परत ताहि जम फंध। श्लोक म० ९ : २६

४८. उरझिउ कनक कामिनी के रस नह कीरति प्रभ गाई। रहाउ।
(टोडी म० ९ : २/१/३१)

और क्या संन्यासी, यह सभी पर अपना फंदा डाले हुए है।[४९] विषयासक्त मन 'नारी-सुख' के लोभ से दुर्बुद्धि को धारण करता है और इस प्रकार बंधन में बंधा रहता है।[५०] तब वह मन किसी के भी वश में नहीं रहता; रात-दिन विषय-वासनाओं की तृप्ति के लिए इधर-उधर भागता रहता है।[५१]

इसी प्रकार यह मूर्ख मन धन के लोभ में दशों दिशाओं में भागता है। सुख की कामना से जन-जन की सेवा करता है, द्वार-द्वार पर कुत्ते की भाँति भटकता है, फिर भी मिलता है सुख के स्थान पर दुख। प्रभु की भक्ति की ओर तो उसका ध्यान ही नहीं जाता।[५२] पर गुरुजी इस विषयासक्त मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—"रे मन ! तूने यह क्या कुबुद्धि धारण कर ली है, तू परस्त्री एवं परनिन्दा के रस में आसक्त है, प्रभु की भक्ति नहीं करता। धन के संग्रह में लगा हुआ है, मुक्ति के मार्ग को नहीं पहचानता।[५३] रे मन ! तू इन विषयों में इतना लिप्त क्यों है, इस संसार में कोई भी रह नहीं पायेगा। एक आता है, एक चला जाता है।[५४] धन, धरनी, सम्पत्ति जिन्हें अपना समझता था, सब यहीं छूट जायेगा, कुछ भी

---

४९. पापी हीए मैं कामु कामु बसाई।
मन चंचल याते गहिउ न जाई।
जोगी संगम अरु सनिआस।
सभ ही पर डारी इह फाँस। (वसंतु म० ९ : ३/२)

५०. विखिअन सिउ अति लुभानि मति नाहिन फेरि। रहाउ।
दारा सुख भइओ दीन पगहु परी बेरी ।१॥
(जैजैवंती म० ९ : २/३)

५१. माई मनु मेरो बसि नाहि।
निस बासुर बिखिअन कउ धावत किहि विधि रोकउ ताहि ॥१॥
(सोरठि म० ९ : ३/७)

५२. लोभि ग्रसिउ दसहू दिस धावत आसा लागिउ धन की। रहाउ।
सुख के हेतु बहुत दुख पावउ सेव करत जन-जन की।
दुआरहि दुआर सुआन जिउ-डोलत नह सुध राम भजन की।
(राग आसा म० ९ : २ १ : २३३)

५३. मन रे कउन कुमति तैं लीनी।
परदारा निंदिआ रस रचिउ राम भगति नहि कीनी। रहाउ।
मुकति पंथु जानिउ तैं नाहनि धन जोरन कउ धाइआ ॥
(सोरठि म० ९ : ३/३)

५४. कहा मन विखिअन सिउ लपटाई।
या जगु मैं कोऊ रहनु न पावै इक आवै इक जाही। रहाऊ।
(सारंग म० ९ : २/२)

साथ नहीं जायेगा।[५५] तू मद-माया और विषयों में आसक्त होकर अपना जन्म क्यों नष्ट कर रहा है, प्रभु की शरण में क्यों नहीं आता।[५६] भगवान के भजन के बिना यहाँ स्वप्न में भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। महा मोह माया के इन प्रलोभनों के प्रति अनासक्ति से ही विमल वैराग्य का उदय होता है। उसी से जीव भक्ति के मार्ग पर अग्रसर होता है और मुक्ति का अधिकारी होता है।

इसीलिए निष्कर्ष रूप में गुरुजी कहते हैं कि जो व्यक्ति ममता, लोभ, मोह, अहंकार आदि का परित्याग करता है, वह आप भी भव-सागर से पार उतरता है तथा औरों को भी पार उतारता है—

जो प्रानी ममता तजै लोभ मोह अहंकार।
कहु नानक आपन तरै अउरन लेत उधार। (श्लोक महला ९ : २२)

लेकिन, इनके परित्याग मात्र से ही लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो जाती। यह जो निवृत्ति मार्ग है इससे तो उस विमल वैराग्य की प्राप्ति होती है जिसे प्राप्त करके हरि-भक्ति के मार्ग पर दृढ़तापूर्वक चला जा सकता है—वही प्रवृत्ति का मार्ग है और वह ही वास्तविक धर्माचरण है। गुरु तेगबहादुर ने इन दोनों मार्गों का ही उचित सामंजस्य स्थापित किया है। इस तथ्य का निरूपण संक्षेप में उन्होंने इस प्रकार किया है—

राम सिमर राम सिमर इहै तेरै काजि है।
माइआ को संग तिआगि प्रभु जू की सरनि लाग।
जगत सुख मान मिथिआ झूठो सभ साज है।
सुपने जिउ धनु पछान काहे पर करत मान।
बारु की भीत जैसे वसुधा को राजु है।१।
(रागु जैजावंती म० ९ : २१)

यह उनके वैराग्य-सम्बन्धी चिन्तन का सार है। संसार की नश्वरता एवं मिथ्यात्व तथा विषय-वासनाओं, लोभ, मद आदि की पुनः-पुनः निरर्थकता का अववोधन करके इसे दृढ़ किया गया हैं।

---

५५. धनु धरनी अरु संपति सगरी जो मानिउ अपूनाई।
तन छूटे कछु संगि न चालै कहा ताहि लपटाई।
(१ रागु सारंग म० ९ : २/१)

५६. कहा नर अपने जनमु गवावै।
माइआ मदि विखिआ रसि राचउ राम सरनि नहीं आवै।
(सारंग म० ९ : २/३)

इस प्रकार के विमल वैराग्य को प्राप्त करने वाला व्यक्ति सुख-दुख, स्तुति-निन्दा, मान-अपमान; हर्ष-शोक में समदृष्टि रखता है; स्वर्ग-नरक, अमृत और विष को एक समान समझता है। कंचन को मिट्टी के सदृश मानता है; काम, क्रोध, लोभ, अभिमान उसके चित्त का स्पर्श नहीं करते; मन में किसी प्रकार की आशा-अभिलाषा, लालसा, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, भय नहीं रहता। वह जगत से अनासक्त रहता है और उसके अंतर में नित्य ब्रह्म का निवास रहता है। वह नित्य हरि के नाम का स्मरण करता है और उसका गुण-गान करता रहता है। गुरुजी का कथन है कि ऐसा अनासक्त व्यक्ति ही वास्तव में सुखी है।[५७]

वस्तुतः, गुरु तेगबहादुर ने इस तथ्य का निरूपण विशदता से किया है कि जीव की किस-किससे निवृत्ति होनी चाहिए; और किस-किस में प्रवृत्ति। प्रभु-महिमा, नाम-महिमा एवं संत-संगति आदि की महिमा का भी उन्होंने निष्ठापूर्वक वर्णन किया है और प्रभु की भक्ति में प्रवृत्ति का पुनः-पुनः अनुरोध किया है। निःसन्देह, गुरुजी के लिए वैराग्य निष्क्रियता अथवा पलायन नहीं है और न ही निराशा अथवा उदासीनता का परिचायक है, वरन् वह शुद्ध धर्माचरण की भी सतत् प्रेरणा देता है।

गुरु तेगबहादुर की बाणी में बिम्ब-प्रयोग

प्रत्येक सृजनशील कलाकार अपने व्यक्तित्व एवं अनुभूतियों की विशिष्टता के अनुरूप ही अपने अभिव्यक्ति-मार्ग का अन्वेषण और निर्धारण करता है। मन के गहनतम अनुभव-सत्यों को सार्थक अर्थवत्ता प्रदान करने के लिए तथा संवेदनाओं के तीव्रतम सम्प्रेषण के लिए बिम्बों की परिकल्पना अत्यधिक सहायक होती है।

---

५७. जो नरु दुखु में दुखु नहीं मानै।
सुख सनेह अरु भय नहीं जाके कंचन माटी मानै।१। ।रहाउ।
नह निंदिआ नह उसतति जाकै लोभ मोह अभिमान।
हरख सोग ते रहै निआरउ नाहि मान अपमाना।
आसा मनसा सगल तिआगे जग ते रहै निरासा।
कामु क्रोध जिह परसै नाहिनि तिह घटि ब्रह्म निवासा।२।
(सोरठि म० ९ : ३ ११)
सुरग नरक अमृत बिखु ए सभ तिउ कंचन अर पैसा।
उसतति निंदा ए सम जाकै लोभु मोहु फुनि तैसा ।२।
(गउड़ी म० ९ : ३/७)
कहु नानक सोइ नरु सुखीआ राम नाम गुन गावै।
(गउड़ी म० ९ : ३/७)

बिम्बों के माध्यम से आन्तरिक सूक्ष्म संवेदनाओं को मूर्त्त रूप देकर अधिक प्रभावात्मक रूप में व्यंजित किया जा सकता है। वस्तुतः, किसी अनुभूत्यात्मक आन्तरिक संवेदना की समुचित अभिव्यंजना के लिए जब हमारी भाषा पंगु और अशक्त-सी बनकर मौन धारण करने लगती है; जब अनुभव-कर्त्ता के विविध भाव, शिला के चतुर्दिक टकराने वाले स्रोतों की भाँति, फूट निकलने के लिए मचलने से लगते हैं; ऐसी दशा में उनकी यथेष्ट अभिव्यक्ति के लिए वे उनके अनुरूप बिम्बों की खोज करने लगते हैं और उनका प्रयोग करके उनके माध्यम से अपनी भावधारा को मूर्तिमान कर देते हैं। ऐसे जटिल और अपूर्व अनुभव-सत्यों का, जिन्हें अभिव्यक्ति के प्रचलित माध्यमों से सहजता से सम्प्रेषित नहीं किया जा सकता, व्यक्त करने के लिए कवि की सृजनात्मक-प्रतिभा समर्थ अर्थ-ऊर्जा से युक्त उपयुक्त बिम्बों की सहायता लेती है। ये बिम्ब विशिष्ट चेतना-क्षमता से युक्त प्रत्यक्ष पदार्थ होते हैं जो कल्पना को अधिक शक्ति एवं सक्रियता से नियोजित करते हैं और भावों और विचारों को वहन करने में समर्थ होते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि बिम्बों के रूप, आकार, भाव अथवा प्रभाव का साम्य होना चाहिए। ये अनुकूल प्रभाव के संप्रेषण में समर्थ हों और कवि की मानसिकता के अनुरूप हों।

अपने अनुभव-सत्यों को सजीवता से चित्रित करने के लिए, उनकी वास्तविकता को सहज संवेद्य बनाने के लिए गुरु तेगबहादुर ने ऐसे साम्यों का प्रयोग किया है, जिनके बिम्ब उन तथ्यों एवं अनुभवों को समर्थता एवं तीव्रता से श्रोता अथवा पाठक तक पहुँचा सकते हैं। अपने सूक्ष्म आध्यात्मिक चिंतन को मूर्तिमान करने के लिए गुरु तेगबहादुर ने प्रायः ऐसे संश्लिष्ट एवं सुरुचिपूर्ण बिम्बों का प्रयोग किया है, जो जन-साधारण के लिए सहजता से बोधगम्य हैं और चिरकाल से उनके अनुभवों के साथ जुड़े हुए हैं। इसलिए उनके भाव एवं प्रभाव को वे सहजता एवं तीव्रता से ग्रहण कर सकते हैं।

बिम्बों की रचना यद्यपि कल्पना पर आश्रित होती है, लेकिन उनकी सार्थकता इस बात पर निर्भर होती है कि उनके पीछे अनुभूति की प्रामाणिकता है, और वे कवि ने अपने अनुभव-क्षेत्र से लिए हैं, उनमें यथार्थता एवं वास्तविकता है। गुरु तेगबहादुर ने अपनी वाणी में केवल उन्हीं तथ्यों का निरूपण किया है, जिन्हें उन्होंने अपने अनुभव की कसौटी पर परख कर देख लिया है, साधना द्वारा उनकी वास्तविकता को पहचान लिया है अथवा जिनमें उनकी गहरी आस्था है। उनके लिए उन्होंने ऐसे ही बिम्बों का प्रयोग किया है, जो उनकी अपनी पहचान के हैं, अपने अनुभव क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। यह ठीक है कि उनमें से अधिकतर ऐसे हैं, जिनका आध्यात्मिक विचारों के प्रतिपादन में परम्परा से प्रयोग होता रहा है, फिर भी गुरु तेगबहादुर ने उन्हें अपने अनुभव की पहचान दी है।

गुरु तेगबहादुर की बाणी में बिम्बों की बहुलता नहीं है, न ही इतनी विविधता

एवं विलक्षणता हैं जैसी गुरु नानकदेव जी की वाणी में परिलक्षित होती है। उनकी बिम्ब कल्पना सीमित है और उसमें सहजता एवं सरलता अधिक है।

गुरु तेगबहादुर ने परमात्मा, आत्मा, जीव, जगत, शरीर, मोह-माया, ज्ञान-अज्ञान, जन्म, मरण एवं मन आदि के स्वरूप को अधिक स्पष्टता एवं संवेदन-शीलता से प्रकट करने के लिए ऐसे साम्यों का प्रयोग किया, जिनके मूर्तिमान बिम्ब हमारे चित्त में उनके वास्तविक रूप को ही उजागर नहीं करते, वरन् उनके प्रति गुरुजी के चित्त में जैसी भावना है, वह भी तद्रूप में हमारे तक संप्रेषित हो जाती है। यही उनके प्रयोगों की सफलता एवं समर्थता की सबसे बड़ी पहचान है। ये उनकी मानसिकता के मूर्तिमान प्रयोग बिम्ब हैं।

इस जगत् की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता को प्रकट करने के लिए उन्होंने उसे 'धुएं का पहार'[५८], बादर की छाही[५९], जल का बुलबुला[६०], मृगतृष्णा[६१] एवं रात्रि के स्वप्न[६२] के समान कहा है। 'धुएँ का पहार', 'बादल की छाया', 'पानी का बुल-बुला' आदि ऐसे मूर्त्त दृश्य हैं, जो हमारे लिए बहुत ही जाने-पहचाने हुए हैं। इस मूर्त्त साम्यों के प्रयोग से ऐसे बिम्ब हमारे सामने उभरते हैं, जिनकी इस वास्त-विकता से हम भली-भाँति परिचित हैं कि वे नितान्त 'क्षणभंगुर', 'नश्वर' एवं 'मिथ्या' हैं। निःसन्देह, ये प्रयोग-बिम्ब जगत् के प्रति हमारी निवृत्ति जगाने में सक्षम हैं। 'मृगतृष्णा' अथवा 'स्वप्न' उतने स्थूल अथवा मूर्त्त बिम्ब नहीं हैं, फिर भी इनके मिथ्यात्व का एक मानसिक बिम्ब हमारी चेतना में स्थिर है। हम जानते हैं कि स्वप्न कितने मिथ्या होते हैं, मृग की तृष्णा कितनी अवास्तविक होती हैं। ऐसे अमूर्त्त मानस बिम्ब अधिक प्रभावपूर्ण एवं संवेदनात्मक होते हैं। जगत् को उन्होंने 'बालू की भीति'[६३] के समान कहा है और वसुधा के राज्य को भी बालू की

---

५८. इहु जगु धूए का पहार। (राग वसंतु म० ९ : १/३/४)

५९. जो दीसै सो सगल बिनासै जिउ बादर की छाही।
(सारंग म० ९ : १/२/२)

६०. जैसे जल ते बुलबुला उपजै बिनसे नीत।
जग रचना तैसी रची कहु नानक सुन मीत। (सलोकु म० ९ : २५)

६१. म्रिग त्रिसना जिउ झूठो इह जग देखि तासि उठि धावै।
(गउडी म० ९ : १/२/३)

३२. नानक कहत जगत सभ मिथिआ जिउ सुपना रैनाई।
(राग सारंग म० ९ : १/२/१)

६३. जग रचना सभ झूठ है जानि लेहु रे मीत।
कहि नानक थिरु ना रहे जिउ बालू की भीत।
(सलोकु म० ९ : ४९)

भीत के सदृश कहा है।[६४] 'बालू की भीति' का बिम्ब ज्यों ही हमारे नेत्रों के समक्ष उभरता है, हम तत्काल अपने चित्त में उसकी अस्थिरता एवं नश्वरता का संवेदन करने लगते हैं और वसुधा के इस क्षणभंगुर राज्य से विरक्ति की भावना से अभिभूत हो जाते हैं। माया के सुखों को भी उसी 'बालू की भीति' के समान कहकर उनके प्रति वितृष्णा उत्पन्न की गई है, जिसे रच-रचकर बनाया जाता है, लेकिन चार दिन भी नहीं ठहरती।[६५]

शरीर की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता को भी उन्होंने स्वप्न[६६] एवं ओलों[६७] के बिम्बों के माध्यम से अभिव्यंजित किया है। 'स्वप्न' का बिम्ब उसकी असत्यता अथवा मिथ्यात्व को प्रकट करता है। और 'ओलों' का बिम्ब उसके क्षण-क्षण में विनष्ट होते हुए रूप को। क्षण-क्षण में क्षीण होती हुई आयु को उन्होंने फूटे घट में से छीजते हुए जल के बिम्ब द्वारा प्रकाशित किया है।[६८] मृत शरीर के लिए प्रेत का बिम्ब महान वैराग्य को प्रश्रय देता है। वह नारी जो नित्य संग रहती थी प्रेत-प्रेत कहकर भाग जाती है[६९], ऐसे शरीर की आसक्ति की क्या सार्थकता है।

गुरु तेगबहादुर ने आत्मा के लिए हंस[७०], लोभी जीव के लिए श्वान[७१] भक्ति-विहीन जीव के लिए 'जल में पड़े हुए पत्थर[७२], 'सूकर' एवं 'श्वान[७३], आदि बिम्बों

---

६४. बारू की भीत जैसे वसुधा को राजु है।१। (जैजैवंती म० ९ : २/१)

६५. बारू भीति बनाई रचि रचि रहत नही दिन चारि।
तैसे ही इह सुख माइया के उरझिउ कहा गवार।
(सोरठि म० ९ : २/८)

६६. झूठा तनु साचा करि मानिआ जिउ सुपना रैनाई।१।
(गउडी म० ९ : २/२)

६७. बिनसत नह लगे बार उरे सम गातु है।१। रहाउ
(जैजैवंती म० ९ : २/२)

६८. छिनु छिनु अवध बिहातु हैं फूटे घट जिउ पानी।रहाउ।
(तिलंग महलाँ ९ : २/१)

६९. हंस तजी इह काईआ प्रेत-प्रेत कर भागी। (सोरठि म० ९ : ३/१२/१३९)
दुआरहि दुआर सुआन जिउ डोलत नह सुध राम भजन की।
(रागु आसा म० ९ : २/२३३)

७०. हंस तजी इह काईआ प्रेत-प्रेत कर भागी। (सोरठि म० ९ : ३/१२/१३९)

७१. दुआरहि दुआर सुआन जिउ डोलन नह सुध राम भजन की।
(रागु आसा म० ९ : २/१/२३३)

७२. पाहनि जल महि राखिउ भेंदे नाहि तिहि पानी।
तैसे ही तुम ताहि पछानो भगति हीन जो प्रानी।
(बिलावल म० ९ : ३/३/२)

७३. एक भगति भगवान जिह प्रानी के नाहि मन।
जैसे सूकरु सुआन नानक मानो ताहि तन। सलोकु ४४

का प्रयोग किया है जो उनके वास्तविक स्वरूप को समर्थता से व्यक्त करते हैं। भक्ति के अभाव में अहंकारी व्यक्ति के तीर्थ-स्नानादि को 'कूचर-स्नान'[७४] के समान कहा गया है। उनके अनुसार भक्ति के अभाव में स्वप्न में भी सुख नहीं प्राप्त होता[७५] और यौवन-धन-प्रभुता आदि के मद में जीव 'दीवाना' अथवा 'बउरा' बना रहता है।[७६] यहाँ भी 'स्वप्न' एवं 'बउरा' जैसे मानसिक बिम्ब-प्रयोग इन तथ्यों के निरूपण को सजीव बना देते हैं। 'दीवाना' अथवा 'बउरे' का मानस-बिम्ब 'हउमै ग्रस्त' जीव की दशा को सक्षमता से प्रस्तुत कर देता है और साथ ही हमारे चित्त में इस प्रकार के 'हउमै' के प्रति वितृष्णा का भाव भी जगा देता है।

'गुरु तेगबहादुर ने ज्ञान के लिए रत्न[७७], अज्ञान के लिए 'तिमिर'[७८], मन के लिए 'बउरा'[७९], नाम के धन[८०] एवं मनुष्य-जन्म[८१] के लिए अमूल्य रत्न, महामोह के लिए संकट वन[८२], संसार के लिए सागर[८३], काल के लिए व्याल[८४] आदि प्रतीक-बिम्बों का प्रयोग किया है। इस प्रकार के बिम्बों का प्रयोग संतों एवं भक्तों की

---

७४. तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु।
नानक निहफल जात तिह जिउ कुचर इसनानु (सुलोक ४६)

७५. भजन बिनु सुख सपनै भी नाही। (सारंग महला ९ : २/२)

७६. जोबनु धनु प्रभ ताके मद में अहिनिसि रहे दिवाना
(धनासरी महलाँ ९ : २/२)

७७. रतनु गिआनु सभ को हरि लीना तासिउ कछु न बसाई।१।
(गउडी म० ९ : २/४)

७८. महामोह अगिआनि तिमरि मो मनु रहिउ उरझाई।
(सोरठि म० ९ : २/४)

७९. मन रे कहा भइउ तै बउरा।२। (गउडी म० ९ : ३/९)

८०. उरझि रहिउ बिखिअन संगि बउरा नामु रतनु बिसराना।२।
(सोरठि म० ९ : ३/१०)

८१. रतन जनमु अपनो तै हारिउ गोबिन्द गति नही जानी।२।
(गउडी म० ९ : ३/८)

८२. माइआ मोह महा संकट बन तासिउ रुच उपजावै।१।
(गउडी म० ९ : २/६)

८३. नानक कहत गाइ करुना मै भवसागर के पारि उतरु रे।
(गउडी म० ९ : २/८)

८४. कालु बिआलु जिउ परिउ डोलै मुखु पसारे मीत।
आजु कालि फुनि तोहि ग्रसि है समझि राखउ चीति।
(सोरठि म० ९ : ९/१)

परम्परा में बराबर होता रहा है। गुरु तेगबहादुर ने इन प्रतीक-बिम्बों को कहीं-कहीं बड़े सुन्दर चित्र-बिम्बों के रूप में भी प्रस्तुत किया है। 'जीव का ग्रसने के लिए मुँह बाये व्याल के रूप में काल का वर्णन, उसकी भयंकरता एवं त्रास एक मूर्त बिम्ब प्रस्तुत कर देता है। 'जम-फंध'[८५] 'काल-फाँस[८६]' अथवा 'जम डंड'[८७] आदि प्रयोग-बिम्ब भी काल के भयानक रूप को मूर्त्तिमान कर देते है और साथ ही मनुष्य को इस संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न करके हरि भक्ति में प्रवृत्ति के लिए प्रेरित करते हैं। गुरुजी के इन वर्णनों की यही सार्थकता एवं लक्ष्य है।

गुरु तेगबहादुर ने भी परमात्मा के लिए 'नारायण', 'गोबिन्द', 'हरि', 'माधो', 'मुरारि', 'कनाई' (कन्हाई), 'प्रभ' आदि नामों का प्रयोग किया है जो वैष्णव भक्त कवियों की आस्था के प्रतीक हैं। इनके साथ परमात्मा की विशिष्ट चारित्रिक लीलाएँ, स्वभाव, गुण एवं आख्यान जुड़े हुए हैं। इनके प्रयोग के साथ ही पाठक अथवा श्रोता के समक्ष उनका एक ऐसा विशिष्ट बिम्ब भी उजागर हो जाता है, जो उनके लिए अत्यधिक श्रद्धा और विश्वास का केन्द्र है। निःसन्देह, ये प्रयोग बिम्ब अपने अन्तर में अनेक पौराणिक सन्दर्भों को सँजो कर जन-मानस में एक विशिष्ट संवेदना को सम्प्रेषित करते हैं और गुरु तेगबहादुर की चिन्तनधारा को मध्ययुग की व्यापक सांस्कृतिक चेतना से जोड़ने में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुए हैं।

इसके अतिरिक्त गुरु तेगबहादुर ने ब्रह्म के लिए 'गुसाईं', 'स्वामी', 'ठाकुर', 'प्रीतम', 'भक्त-रक्षक' एवं 'करुणामय' आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है। ये शब्द भी अपना-अपना एक बिम्ब रखते हैं। 'गुसाईं', 'स्वामी' एवं 'ठाकुर' उसकी सर्वोपरि सत्ता एवं शक्तिमत्ता को प्रकट करते हैं। 'भक्त-रक्षक' एवं 'करुणामय' उस परब्रह्म के गुण एवं स्वभाव को प्रकाशित करते है और 'प्रीत' उसके प्रेममय रूप को व्यंजित करता है। ये शब्द-बिम्ब परमात्मा के स्वभाव, गण और स्वरूप को ही प्रकाशित नहीं करते, वरन् गुरु तेगबहादुर की परमात्मा के प्रति आस्था के स्वरूप को भी व्यंजित करते हैं। वस्तुतः, वे सम्पूर्ण मध्ययुगीन भक्ति-चेतना और आस्था के प्रतीक-बिम्ब हैं।

प्रभु-प्रेम गरु तेगबहादुर के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषय है। इस

---

८५. कहु नानक बिनु हरि भजन परत ताहि जम फंध।

(सुलोक म० : ९ २६)

८६. काल फास जब गलि परी सभ भइउ पराइउ।१।

८७. जम को डंडु परिउ सिर ऊपरि तब सोवत ते जागिउ।१।

(मारु महलाँ ९ : २/३)

तथ्य का प्रतिपादन उन्होंने 'मीन' और 'जल'[८८] के प्रयोग-बिम्ब के माध्यम से किया है जोकि प्रेम के आदर्श प्रतीक हैं। गुरु तेगबहादुर के अनुसार वह परब्रह्म जीव के अन्तर में ही स्थित है, घट-घट में निवास करता है। इस तथ्य का निरूपण भी उन्होंने बिम्बों के माध्यम से किया है। उनके अनुसार वह प्रभु उसी प्रकार अन्तर में प्रतिबिम्बित है जिस प्रकार दर्पण में छाया और पुष्प में उसकी सुगन्ध—

'पुहप मधि जिउ बासु बसत है मुकर माहि जैसे छाई।
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई ॥१॥
(धनासरी महलां ९ : २ १)

प्रभु के 'विरुद' अथवा 'पैज', गणिका, ध्रुव, अजामिल, गज, पांचाली' आदि के भी व्यापक संदर्भ-बिम्ब हैं। इनके अन्तर में भी अनेक पौराणिक प्रसंग समाहित हैं। इन बिम्बों के प्रयोग से गुरु तेगबहादुर की वाणी नई अर्थ ऊर्जा से युक्त होकर अधिक संवेद्य एवं प्रभावपूर्ण हो गई है। परब्रह्म की आराधना में सबसे बड़ी बाधा जीव का व्यक्तित्वाभिमान है। इस व्यक्तित्वाभिमान के मूल में मोह-माया है और उसके प्रमुख अंग है—मद, लोभ, काम आदि। गुरु तेगबहादुर ने 'मद माइया के अंध' के प्रयोग-बिम्ब द्वारा उसके स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा की है।

काम का मुख्य बिन्दु है नारी और लोभ का धन। गुरु तेगबहादुर ने धन को 'स्वप्न' समान मिथ्या[८९] और दारा-सुख को 'पाँव की बेड़ी'[९०] के समान चित्रित किया है। 'मन की काई'[९१] एक ऐसा बिम्ब है जो विषयासक्त मन की मलिनता को तीव्रता से व्यंजित कर देता है। ऐसे विषयासक्त मन के लिए 'स्वान पूछ'[९२] जैसे बिम्ब का भी प्रयोग किया गया है जो अनेक प्रयास करने पर भी सीधी नहीं होती। विषय-वासना को 'विष'[९३] और कंचन को 'लोह'[९४] अथवा 'माटी'[९५] के समान बता कर उनके प्रति वितृष्णा उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। 'विष' में विषय-

---

८८. कहु नानक हरि भजु मना जिह विधि जल कौ मीन ॥१॥
(सलोकु महलां ९)

८९. सुपने जिउ धनु पछानु·····॥१॥ (जैजैवंती महला ९ : २ १)

९०. दारा सुख भइओ दीन पगहू परी बेरी ॥१॥ (जैजैवंती ९ : २३)

९१. मगन रहिउ माइआ में निसदिनी छुटी न मन की काई।
(टोडी महलां ९ : २१, ३१)

९२. सुआन पूछ जिउ होइ न सूंधो कहिउ न कान धरै।
(देव गांधारी महलां ९ : २१)

९३. बिखिआ बिख जिउ·····। (जैजैवंती महलां ९ : २२)

९४. उसतति निंदिआ नाहि जिह कंचन लोह समानि ॥४॥ (सलोकु महलां ९)

९५.·····कंचन माटी मानै ॥१॥ रहाउ (सोरठि महलां ९ : ३१ १)

वासनाओं का विनाशक धर्म अन्तर्निहित है और मिट्टी से कंचन की मूल्य-हीनता और विरर्थकता का बोध होता है। ये दोनों ही बिम्ब अपेक्षित अर्थों में सक्षम हैं।

गुरु तेगबहादुर ने एक तथ्य के निरूपण के लिए जहाँ अनेक बिम्बों का प्रयोग किया हैं, वहाँ एक बिम्ब को अनेक अर्थ-संदर्भों में भी प्रयुक्त किया गया हैं। जगत् के मिथ्यात्व के प्रतिपादन हेतु वे 'धुएँ का पहार', 'बादर की छाई', 'मृग तृष्णा', 'स्वप्न', 'पानी का बुलबुला', 'बालू की भीत' आदि बिम्बों की योजना करते हैं तो 'स्वप्न' को धन, शरीर एवं जगत तीनों की क्षणभंगुरता एवं मिथ्यात्व के निरूपण के लिए प्रयुक्त किया गया है। इसी प्रकार 'रत्न' को ज्ञान, मनुष्य जन्म, हरि-नाम के लिए; 'श्वान' को भक्ति विहीन जीव एवं विषयासक्त मन के लिए; और 'बालू की भीत' को जगत एवं माया के सुखों की अवास्तविकता के लिए प्रयुक्त किया गया है।

गुरु तेगबहादुर के बिम्ब विधान की एक विशेषता यह है कि उन्होंने कहीं भी कल्पना-क्लिष्ट, दुरूह अथवा जटिल बिम्बों का प्रयोग नहीं किया। उनके सभी बिम्ब उनके अनुभव क्षेत्र से लिए गए हैं। वे सामान्य जीवन एवं जगत् से सम्बन्धित हैं और बहुत ही सरल, सहज एवं संवेद्य हैं। वे अपेक्षित अर्थ की अभिव्यंजना में सक्षम हैं और उनके प्रतिपाद्य की अभिव्यंजना में सहायक हुए हैं। गुरु तेगबहादुर ने बिम्बों का चयन बहुत बड़े क्षेत्र से नहीं किया। उनकी वाणी में बिम्ब कम हीं आए हैं। अधिकतर बिम्ब प्राकृतिक जगत् के लिए गए हैं। कंचन, लोहा, रत्न, घट, फंदा, डंडा, जल जैसे पदार्थों एवं हंस, मीन, व्याल, श्वान, कूचर, सूकर आदि जीव-जन्तु सार्थक बिम्बों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। पौराणिक संदर्भों एवं नामों को भी बिम्ब रूप में प्रयुक्त किया गया है और 'बउरा' एवं 'स्वप्न' आदि मानसिक क्रियाओं को भी। ये सभी बिम्ब सामान्य जन के लिए चिर-परिचित हैं और अपने बिम्बार्थ को भी सहजता से सम्प्रेषित कर देते हैं।

गुरु तेगबहादुर ने अमूर्त्त एवं सूक्ष्म तथ्यों के निरूपण के लिए मूर्त्त बिम्बों का संयोजन अधिक किया हैं। 'फद', 'फाँस', 'डंड', 'श्वान-पूछ', 'मिट्टी', 'हंस', 'विष', 'व्याल', 'रत्न', 'बालू की भीत', 'कूदर', 'घट', 'मुकर', 'धुएँ का पहार', 'जल का बुलबुला' आदि मूर्त्त बिम्ब ही अधिक प्रयुक्त हुए हैं, तथापि 'स्वप्न', 'मृग-तृष्णा', 'बउरा' आदि मानसिक बिम्ब भी यथास्थान आए हैं। मूर्त्त के लिए मूर्त्त, अमूर्त्त के लिए अमूर्त्त तथा अमूर्त के लिए मूर्त और मूर्त्त के लिए अमूर्त्त बिम्बों की सर्जना भी उन्होंने कुशलतापूर्वक की है, यथा—

अमूर्त्त के लिए मूर्त्त

विषय	विष
विषयासक्त मन	श्वान पूछ

ज्ञान	रतन
काल	व्याल
आत्मा	हंस

मूर्त्त के लिए मूर्त्त

कंचन	माटी
जीव	सूकर, श्वान
जगत	बालू की भीत
शरीर	जल घट

अमूर्त्त के लिए अमूर्त्त

अज्ञान	तिमिर

मूर्त्त के लिए अमूर्त्त

मृत शरीर	प्रेत
जगत्	मृग तृष्णा, स्वप्न
धन	स्वप्न

सादृश्य पर आधारित अप्रस्तुतों की योजना रूप, वर्ण एवं आकार आदि पर ही आधारित होता है, लेकिन बिम्ब मुख्यतः समान गुण, स्वभाव, धर्म, प्रभाव आदि की अभिव्यंजना करने वाले होते हैं। गुरु तेगबहादुर ने भी सभी बिम्बों का प्रयोग इसी रूप में किया है। 'विष' विषय-वासनाओं की भाँति विनाशकारी हैं, 'व्याल' काल की भाँति घातक। 'बालू की भीत' भी अस्थायी है और माया के सुख भी। 'स्वप्न' भी मिथ्या है और 'धन-सम्पत्ति' भी। 'रतन' भी मूल्यवान है और 'ज्ञान' भी। 'हंस' भी उज्ज्वल है और 'आत्मा' भी।

गुरु तेगबहादुर के बिम्ब-प्रयोग उनकी संवेदना, काव्य-चेतना एवं चिन्तन-धारा को भी आलोकित करते हैं। वे उनकी मानसिक-चेतना के प्रतिबिम्ब हैं। वैराग्य की प्रतिमूर्ति गुरु तेगबहादुर ने संसार-सुख को 'विष' के समान, विषयासक्त जीव को 'श्वान' के समान तथा हउमै युक्त व्यक्ति के तीर्थ-स्थान को 'कूचर-स्नान' के समान कहा है, जो इनके प्रति उनकी निजी वितृष्णा एवं विरक्ति को भी व्यंजित करते हैं। इनके सभी बिम्ब-प्रयोग प्रतिपाद्य के स्पष्टीकरण में तथा उनकी काव्यानुभूति को सक्षमता से सम्प्रेषित करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। वे उनकी सहज एवं सात्त्विक प्रकृति के सर्वथा अनुरूप हैं।

काव्य-भाषा एवं काव्य-चेतना

गुरु तेगबहादुर की वाणी ब्रजभाषा का श्रेष्ठ काव्य है। उन्होंने व्यावहारिक एवं सहज भाषा का प्रयोग किया है तथापि उसमें अद्‌भुत सम्प्रेषणीयता एवं प्रभाव है। उसमें कहीं भी अलंकरण का मोह नहीं है, तथापि अद्‌भुत अर्थवत्ता से युक्त बिम्बों और प्रतीकों का स्वाभाविकता से भव्य प्रयोग हुआ है, जो उनकी कविता को एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान कर देते हैं।

कालक्रमानुसार (संवत् १६१८-१७३२) गुरु तेगबहादुर उसी काल के अन्तर्गत आते हैं, जिसे हिन्दी के इतिहासकारों ने 'रीतिकाल' 'शृंगारकाल', 'अलंकार काल' अथवा 'कलाकाल' नाम दिया है। चिन्तामणि (जन्म सवत १६८३), बेनी (रचनाकाल संवत् १७००), मतिराम (जन्म सं० १६७८), बनवारी (जन्म सं० १६९०), बिहारी (जन्म सं० १६६०) आदि रीतिकाल के कुछ ऐसे कवि हैं, जो काव्य-रचना की दृष्टि से गुरु तेगबहादुर के समकालीन थे, किन्तु चिन्तनधारा, जीवन-दृष्टि, काव्य-प्रवृत्ति, काव्य-पद्धति एवं काव्यशिल्प आदि की दृष्टि से गुरु तेगबहादुर इस सबसे पृथक श्रेणी के कवि थे। हिन्दी का अधिकांश भक्ति-कालीन काव्य धर्माश्रय में लिखा गया था। इस युग के कवि का मस्तक किसी राजा राव के सम्मुख नहीं झुका, वरन् उसके इष्टदेव की 'रीति' भी निराली थी। कोई भी सामान्य नरेश उसकी समानता नहीं कर सकता था। गोस्वामी तुलसीदास का कथन है कि "इस प्रकार के फलदार वृक्ष को छोड़कर बबूल और रेंड को कौन रोपेगा : कृपा सागर लोकपालों के स्वामी सीतानाथ रामचन्द्र जी को छोड़कर किसी से याचना क्यों की जाये।"[९६]

लेकिन, उत्तरमध्यकाल (रीतिकाल) के कवियों ने मनवांछित फलदाता 'कल्पवृक्ष' को छोड़कर बबूल और रेंड के वृक्षों का आश्रय ग्रहण किया। इन कवियों की काव्य-रचना की प्रेरणा उन आश्रयदाताओं की अभिरुचि थी, जिनका

---

९६. रीति महाराज की नेवाजिए जो मांगनो सो
दोष-दुख-दारिद्र के छोड़िये।
नाम जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि
तुलसी बिहाइ के बबूर रेंड गोंडिये।
जाँचे को नरेस, देस-देस को कलेस करे,
दैहे तो प्रसन्न हूवे बड़ी बड़ाई बोडिये।
कृपापाथनाथ लोकनाथ सीतानाथ,
तजि रघुनाथ-हाथ और काहि ओडिये।

(कवितावली—उत्तरकांड-२५)

जीवन भोग-विलास में डूबा हुआ था और कविता जिनके लिए मनोविनोद एवं कामोत्तेजना का एक साधन मात्र थी। ऐसी स्थिति में महनीय सांस्कृतिक तत्त्वों एवं जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति की उनसे अपेक्षा करना असंगत था।

इस काल का कवि क्षुद्र स्वार्थ के लिए अपनी काव्य-प्रतिभा का विक्रय करता दिखाई पड़ता है। उसमें ऐश्वर्य और वैभव के प्रति अनासक्ति के स्थान पर लौकिक स्वार्थों के प्रति आसक्ति, परमार्थ के स्थान पर स्वार्थ, त्याग के स्थान पर लोभ, विवेक के स्थान पर विषयों के प्रति मोह की प्रवृत्ति अधिक थी। इसके विपरीत गुरु तेगबहादुर की कविता 'गुरु-दरबार' की परम्परा की कविता है। वैराग्य, भक्ति एवं विवेक की कविता है और उसका प्रयोजन 'धर्म एवं मोक्ष' ही है। साथ ही उसमें लोक-मंगल की भावना निहित है। रीतिकवियों ने अलंकृत शैली में काव्य-रचना की है, जबकि इन्होंने सहज, सरस एवं अनलंकृत शैली में काव्य-रचना की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि काल-क्रमानुसार रीतिकाल की सीमाओं के अन्तर्गत आने पर भी गुरु तेगबहादुर उस काल के प्रभावों से सर्वथा मुक्त थे। चिन्तनधारा, जीवन-दृष्टि, काव्य-प्रवृत्ति एवं काव्य-पद्धति की दृष्टि से वे पूर्णतः संत काव्य-परम्परा के निकट पड़ते हैं।

४

संत-योद्धा गुरु गोबिंदसिंह—एक तेजस्वी व्यक्तित्व

कभी-कभी ही ऐसा लोकनायक इस भूतल पर अवतरित होता है जो अपनी अमृतवाणी एवं मंगलकारी कृत्यों से इतिहास को नया मोड़ देता है और संतप्त मानवता को अपने जीवन्त संदेश से सींचकर जिन्दगी के दरिया में एक नई हिलोर उत्पन्न कर देता है। दसवें एवं अन्तिम गुरु गोविंदसिंहजी ऐसे ही युग-पुरुष थे। उनका व्यक्तित्व विविधरूपात्मक था। वे एक निष्ठावान् एवं समन्वयवादी धर्म-प्रवर्त्तक, सशक्त समाज-सुधारक, युग-स्रष्टा कवि, आस्थावान् चिन्तक, आशावादी राष्ट्रनायक तथा साहसी योद्धा थे। वे सत्य, न्याय, सदाचार, निर्भीकता, समानता, दृढ़ता, त्याग एवं साहस की प्रतिमूर्ति थे। पूर्ववर्ती गुरुओं की भाँति वे भी निरन्तर विभिन्न मत-मतान्तरों एवं सम्प्रदायों के आडम्बर-युक्त बाह्याचारों, पाखण्डपूर्ण कर्मकाण्डों, अहंकारयुक्त साधनाओं, अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों का विरोध और सिक्ख मतानुकूल आध्यात्मिक विचारों का प्रतिपादन करते रहे तथा अहंकार-त्याग, संत-सेवा एवं नाम स्मरण का उपदेश देते रहे। इस प्रकार परम सत्य की उपलब्धि को लक्ष्य मानकर मानव-मात्र का मंगल चाहने वाले वे परमसंत थे, तथापि उनका जीवन, व्यक्तित्व एवं काव्य आद्यन्त वीर-भावना से ओतप्रोत है। उनका व्यक्तित्व वज्र-सा कठोर, तड़ित-सा तेजस्वी, सिंह-सा सशक्त एवं पर्वत-शिला-सा दृढ़ था। वे अदम्य साहस, अजेय शक्ति एवं अडिग धैर्य से युक्त गत्यात्मक एवं शक्तिशाली व्यक्तित्व के धनी थे। वे धर्मान्ध यवन अत्याचारियों के अनाचार एवं आतंक से पीड़ित निरीह, असहाय एवं निर्बल हिन्दू जनता के रक्षक थे। उनकी प्रसिद्ध काव्य-कृति 'दशमग्रंथ' विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार-प्रतिप्रहार, वीरों के शौर्य-प्रदर्शन, उनके साहसपूर्ण कृत्यों, उत्साहपूर्ण उक्तियों एवं वीरोचित अनुभवों की चित्रशाला है। अपनी प्रसिद्ध आत्म-कथा 'विचित्रनाटक' में वे लिखते है—

हम इह काज जगत मो आए धरम हेतु गुरुदेव पठाए।
जहाँ तहाँ तुम धरम विथारौं, दुष्ट दोखयनि पकरि पछारौं।

उनका कथन है कि वे तो हेमकूट पर्वत पर तपस्या कर रहे थे, तभी अकाल पुरुष ने उन्हें भूतल पर आकर दुष्टों का विनाश करके धर्म को स्थापित करने का आदेश दिया। इस ब्रह्माज्ञा का पालन करने के लिए ही उन्हें खड्ग धारण करना पड़ा।

उनके लिए सत्य, न्याय एवं धर्म के संस्थापक तीर, तुफंग, गदा, गुरज आदि सभी अस्त्र-शस्त्र ब्रह्म के प्रतीक हैं। 'शस्त्रनाममाला' में ब्रह्म रूप में उनकी वंदना उन्होंने इस प्रकार की हैं—

तुमी गुरज तुमही गदा, तुम ही तीर तुफंग।
दास जान मोरी सदा, रच्छ करो सरबंग।

गुरु गोबिन्दसिंह मूल रूप में धर्म-गुरु थे। सिक्खमत के प्रवर्त्तक गुरु नानक देवजी द्वारा प्रवर्त्तित धार्मिक एवं सामाजिक आदर्शों का उन्होंने बहुत ही सुन्दर, व्यापक एवं विशद निरूपण किया है, तथापि युग-परिस्थितियों ने उन्हें शस्त्र धारण करने के लिए बाधित किया। 'गीता' में भगवान् कृष्ण ने अन्याय और अत्याचार का विरोध करने का जो आदर्श प्रस्तुत किया था, गुरु गोबिन्दसिंह का आचरण ठीक उसके अनुरूप था। अन्याय और अत्याचार के प्रति विरोधात्मक स्वर आदि नानक की वाणी में भी मुखरित हुआ है। परवर्ती गुरुओं में यह भावना क्रमशः विकसित होती गई और गुरु हरगोबिन्द के वीर आचरण में इसकी प्रथम अभिव्यक्ति हुई तथा इसका चरम उत्कर्ष तथा फलागम 'खालसा पंथ' की स्थापना में हुआ। अकबर की धर्म-सहिष्णु एवं उदार नीति का स्थान औरंगजेब की धर्मान्ध, असहिष्णु एवं संकुचित नीति ने ले लिया था। अब फिर हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया जाता था, उनकी देवमूर्तियों को खंडित किया जाता था, देवालयों के स्थान पर मस्जिदें बनवाई जाती थीं। वे अपमान एवं प्रताड़ना का जीवन व्यतीत करने को अभिशप्त थे। इस धार्मिक अन्याय एवं आतंक के प्रति विरोध प्रकट करते हुए नवें गुरु तेगबहादुर ने शान्तिपूर्वक अपना बलिदान दिया था, परन्तु व्यर्थ। विवश होकर उनके पुत्र श्री गुरु गोबिन्दसिंह को स्वधर्म की रक्षार्थ खड्ग का सहारा लेना पड़ा। अपनी इस नीति को उन्होंने 'ज़फ़रनामे' में, जो उन्होंने औरंगजेब को लिखकर भेजा था, इस प्रकार स्पष्ट किया है :

चू कार अज़ हमह हीलते दरगुजश्त,
हलाल अस्त बुरदन ब शमशेर दस्त।

अर्थात्, जब सत्य और न्याय की रक्षार्थ अन्य सभी साधन विफल हो जायें तो तलवार को धारण करना सर्वथा उचित है। इस प्रकार अधर्म एवं अनीति के विनाशार्थ उन्होंने स्वय ही साहस और शौर्य का प्रदर्शन नही किया, वरन् अपनी

वीर-गाथाओं द्वारा भारत की सुप्त वीर-शक्ति को जगाने का भी अद्‌भुत कार्य किया। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह और क्रान्ति का बिगुल बजाकर उनमें स्वाभिमान एवं आत्म-सम्मान का भाव जाग्रत किया।

यवनों के अत्याचारों के विरुद्ध उन्होंने विद्रोह की पताका बुलन्द की और पवित्र आचरण-युक्त खड्गधारी 'खालसा पंथ' के रूप में भारतीय वीर-शक्ति का संगठन करना आरम्भ किया। युद्ध-भूमि में निरन्तर शत्रु-दल से जूझते हुए उनका संहार करते रहने का अकाल पुरुख से वर माँगते हुए वे 'चण्डी-चरित्र' में लिखते हैं—

देहि सिवा वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूँ न टरौं।
न डरौं अरि सौं जब जाइ लरौं निसचे कर आपनी जीत करौं।
अरु सिख हों आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरौं।
जब आव की अउध निदान बने अत ही रन में तब जूझ मरौं।

यहाँ गुरु गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व के कुछ विशिष्ट तत्त्व उभर कर सामने आते हैं। 'शुभ-करमन ते कबहूँ न टरौं' में उनके वीर-चरित्र की उदात्तता प्रकट होती है। 'न डरौं' में उनकी निर्भीकता, 'निसचे कर अपनी जीत करौं' में अपनी विजय में विश्वास, 'सिख हों आपने ही मन को' तथा 'गुन तऊ उचरौं' में प्रभु-भक्ति एवं गुरुमत में आस्था तथा 'रन सें तब जूझ मरौं' में उनके रणोत्साह आदि की व्यंजना होती है। वस्तुतः, यह एक ऐसा पद है जिसमें उनकी वीरता और शौर्य-कर्म के आदर्श, लक्ष्य और सार्थकता आदि की सही अभिव्यक्ति हो रही है। युद्धरत होते हुए भी शुभ-कर्मों के प्रति दृढ़ता से प्रतिबद्ध रहना उनके चरित्र की एक विलक्षणता है, जो उन्हें सही अर्थों में एक 'धर्मवीर' बनाती है।

पहाड़ी राजाओं, मुगलों अथवा पठानों की संयुक्त विशाल सेना के सामने साधारण कृषकों की उनकी सेना बहुत नगण्य थी, फिर भी वे साहस और निर्भीकता से उनसे निरन्तर लोहा लेते रहे। 'कृष्णावतार' में योद्धाओं की वीरता के आदर्श को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है।

कहा भयो मम ओर ते, सूर हने संग्राम।
लरबो मरबो जीतबो इह सुभटिन को काम।

'कृष्णावतार' की इस उक्ति का 'गीता' में दिये गये भगवान कृष्ण के इस आह्वान—'हतो वा प्राप्सयसि स्वर्गं', जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। तस्मात उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः'—से अद्‌भुत साम्य है।

कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी वे कभी हतोत्साहित नहीं होते थे। चाहे आनन्दपुर के चारों ओर से दीर्घ काल तक घिरे रहने पर अन्न-जल के संकट की भयंकर स्थिति हो या चमकौर युद्ध की विकट अवस्था, वे साहस, धैर्य, दृढ़ता एवं निर्भीकता के साथ एक कर्म-वीर की भाँति शत्रु-सेना का मुकाबला करते थे।

चाहे उनके कितने ही सैनिक हताहत हो जायें, या उनका साथ छोड कर चले जायें, वे तनिक भी घबराते नहीं थे। वे अकेले ही शत्रु-दल से जूझने का दृढ़ संकल्प एवं अदम्य साहस रखते थे। 'कृष्णावतार' के एक प्रसंग में इस परिस्थिति को व्यंजित करते हुए उन्होंने लिखा है कि जब जरासंध की विशाल वाहिनी से भयभीत होकर यादव सेना भाग खड़ी होना चाहती है, उस समय कृष्ण का यह ओजस्वी सिंहनाद सुनाई पड़ता है।

यौ हरिजू पुन बोलि उठयौ गज को बधि कै जिमि केहरी गाज्यौ।
अउर भली उपमा उपजी धुन को सुनकै घन सावन लाज्यौ।
राजन चित करो मन में हमहूँ दोउ भ्रात सु जाइ लरेंगे।
बान कमान क्रिपान गदा गहि कै रन भीतर जुद्ध करेंगे।
जो हम ऊपरि कोप कै आई है ताहि से अस्त्र सिउ प्रान हरेंगे।

चाहे सभी यादव साथ छोड़ जायें, कृष्ण बलराम को साथ लेकर अकेले समस्त शत्रु-दल का संहार करने को तत्पर हैं। गुरु गोबिन्दसिंह ऐसे ही दृढ़ संकल्प के यशस्वी एवं साहसी शूरवीर थे। इसी कर्मठता एवं पराक्रम से उन्होंने अनेक सशक्त शत्रुओं का संहार किया। भंगाणी, नादौन, आनन्दपुर आदि के अनेक भीषण युद्धों में उन्होंने अपने अद्भुत पराक्रम, शौर्य, साहस, दृढ़ता एवं धैर्य का परिचय दिया था। युद्धभूमि में शत्रु-सेना से घिरे वे दृढ़ता और साहस के स्तंभ की भाँति अपने स्थान पर डटे रहकर कैसे विकट बाण-वर्षा करके शत्रुओं को हताहत करते थे, इसका वर्णन 'गुरु-प्रताप-सूरज' के कर्त्ता महाकवि भाई संतोखसिंह ने इस प्रकार किया है :

यों कहि पीस के दाँत परे गुरु ऊपर एक ही बार घने।
होति भए थिर थंभ मनो गन छोरति बान को कोप सने।
अग्र जू आवति ताँ उथलावति ज्यों बड गाज मुनारे हने।
कान मान लौं तानि चलावति मारे अनेक ही कौन गिने।

बाल्यावस्था से ही वे सैन्य-संगठन एवं शस्त्र-संचालन का अभ्यास करते रहे थे और गज़ब के तीरन्दाज एवं खड्गधारी थे। उस रण-बाँकुरे के रणभूमि में अवतरित होते ही शत्रु-सेना की क्या दशा होती थी, इसका वर्णन भाई संतोख सिंह ने इस प्रकार किया है :

दल जे दिलेश अचलेश दोऊ मिलि धाए,
धुरवा से धौंसा की धुंकार उठै घोरि घोरि।
बाँधे बड़े ठट्ट भट्ट घटट के संघट्ट जुट,
लोहे की चमक छटा छवि भाँति कोरि कोरि।
गोरे परे ओरे धूम अधिक अँधेर धूर,
हल के हरौल हलाहली उठै ठौरि ठौरि।

तौ लौं ही बनाऊ श्रीगोबिन्द सिंह राऊ जो लौं,
छोरे न समीर तीर जेहि माहिं जोरि जोरि ।

दिल्लीपति एवं पहाड़ी राजाओं की सेना के प्रचण्ड योद्धा बड़े-बड़े ठट्ट बाँध कर अपनी तीक्ष्ण तलवारों को चमकाते हुए तथा ओलों की भाँति गोले बरसाते हुए चले आते थे, परन्तु उनका यह बनाव तभी तक है जब तक रण-बाँकुरे गुरु गोबिन्दसिंह युद्ध-भूमि में अवतरित नहीं होते थे । उनके सम्मुख आते ही वे ऐसे भाग खड़े होते हैं जैसे पवन के सम्मुख घन-घटा । उनके नगारों के घोष से दिग्-दिगन्तर कांप उठता था और शत्रुओं का हृदय दहल उठता था । उनके नगारों के आतंक का वर्णन उनके एक दरबारी कवि 'हीर' ने इस प्रकार किया है :

कल नहिं परत बिकल देस बंगस को,
पलक न लागै पल रुम साम सामनी ।
गोलकुंड कंपति नगारन की धुनि सुनि,
बीजापुर बदर बसत बन जामनी ।
आसमान दहल, दहल गिर्‌यौ लंक हीर
दरी मैं दबत फिरैं दसन जिऊँ दामनी ।
तेरे डर गोबिन्द भ्रिंगिद गुरु अरिनि की
टोला टोल जाइ सो खटोला माँगे भामिनी ।

कवि का कथन है कि उनके शौर्य से शत्रुदल इतना आतंकित रहता था कि उनकी धाक सुनकर उनके कलेजे दहल उठते थे । उनके तेज के त्रास से वे पारे की भाँति अस्थिर होकर तड़पने लगते थे और पुराने पत्तों की भाँति इधर-उधर भटकने लगते थे । उनसे युद्ध करने की अपेक्षा वे संन्यास ग्रहण कर लेना अधिक श्रेयस्कर समझते थे । गुरु गोबिन्द सिंह के ही एक अन्य प्रमुख दरबारी कवि अणीराय ने उनके शौर्य का यशोगान इस प्रकार किया है :

बान कपिध्वज भीम भुजान, क्रिपान सु मानस को मरदाने ।
मार के मीर अधीर किये, नित यौं डरपैं कवि राइ बखाने ।
श्री गुरु गोबिन्द सिंह चढ़ैं, अरि के सुनके हियरे थहिराने ।
तेज के त्रास ते यौं तरफें थरके थिरिआ ज्यों पारद पाने ।

गुरु गोबिन्द सिंह की तीखी तलवार ऋतुराज के समान विख्यात थी, तथा उनकी प्रचंड कृपाण जो शत्रुओं की तुरंगों की फौज को काटने वाली, मतंगों के मान का मर्दन करने वाली, धरा को विदीर्ण करने वाला तथा अरियों को अधीर कर देने वाली थी, द्वीप-देशों में प्रसिद्ध थी । 'अणीराय' के ही शब्दों में उसका चमत्कार द्रष्टव्य है—

तुरंग फौज तोर कै मतंग मान मोर कै,
लरैं करैं अधीर सत्र जत्र तत्र पान को ।

जिते समीप को गिनै किसान कोप ज्यौं हनै,
प्रचंड खंडकित मुंड तेज पुंज भान को।
घटा छटा बिदारनी, धनी धरा प्रहारनी,
कि काल व्याल कालकूट गूढ़ बिआन त्रान को।
प्रसिद्ध दीप देस में पुरी गनेस सेस मैं,
गुरु गोबिन्द सिंह की क्रिपान के समान को।

यही कारण है कि उनकी सेना के प्रस्थान से लोक-अलोक का दिल दहल जाता था। 'सूर्य-मंडल' लरज उठता था, कैलाशपति शिव भयभीत हो जाते थे और शेष-सुरेश भी डर से थर-थर काँपने लगते थे। उनके प्रसिद्ध दरबारी कवि सेनापति ने अपनी प्रसिद्ध प्रबंध-रचना 'गुरु शोभा' में उनके सेना-प्रस्थान के आतंक का चित्रण करते हुए लिखा है।

डंकन घोर सु घोर भई, सुनि कै पुरियां सब ही लरजीं।
लरजै सब भान भिआन भए किह कारन काज चढ्यो हरिजी।
लोक अलोक सभे लरजै, सिबजी कैलासपति भै डरजी।
सुन सेस महेस सुरेस बड़े लरजे सिंह गोबिन्द के डर जी।

गुरु गोबिन्दसिंह जहां स्वयं एक यशस्वी योद्धा थे, वहां वे एक कुशल सेना-नायक भी थे। अपने साहसपूर्ण कृत्यों एवं ओजस्वी उक्तियों से वे मुर्दों में भी जान डाल देते थे, कायरों को भी अद्वितीय वीर बना देते थे। बचित्तरसिंह द्वारा युद्ध-भूमि में नेजे से मस्त हाथी को मार भगाने की घटना उनके व्यक्तित्व के इस पक्ष को मुखरित करती है कि वीरों में रणोल्लास एवं युद्धोत्साह उत्पन्न करने की उनमें कितनी अद्भुत क्षमता थी। जब वे अपने हाथों वीरों की रण-सज्जा करते हैं, निजी अमोघ अस्त्र उनके हाथ में दे देते हैं और अपने आशीर्वाद का अजेय बल देकर रण-भूमि में प्रेषित करते हैं, फिर भला विजय-मुकुट उनके सिर पर क्यों न बँधता। ऐसे सुयोग्य एवं वीर नायक के लिए कोई भी सैनिक अपने प्राण हँस-हँस कर न्यौछावर कर सकता है।

निःसन्देह, गुरु गोबिन्दसिंह एक साहसी शूरवीर थे और अनेक भीषण युद्धों में उन्होंने अपने प्रचण्ड पराक्रम का प्रदर्शन किया था। परन्तु, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि तैमूर, गौरी, गजनवी अथवा अब्दाली आदि की भाँति निरीह जनता पर अत्याचार करके धन-संग्रह या राज्य सत्ता स्थापित करना उनका लक्ष्य नहीं था, न ही उनका शौर्य-प्रदर्शन किसी जाति, देश अथवा धर्म को आतंकित करने के लिए था, वरन् उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग सदा अन्याय-अत्याचार एवं अधर्म के विनाश तथा सत्य, न्याय एवं धर्म की स्थापना के लिए ही किया। उनका किसी भी धर्म, जाति या देश से कोई विरोध नहीं था; विरोध था अन्याय, अत्याचार और अधर्म से और इनके विरुद्ध वे आजीवन लड़ते रहे। दीन-दुखियों

के उद्धार, संतों की रक्षा एवं धर्म की स्थापना के लिए ही उनको योद्धा-रूप धारण करना पड़ा था और इस प्रकार वे सही अर्थों में एक 'धर्म-योद्धा' थे। "**सूरा सोई जानिये जो लड़े दीन की हेत**" इस अर्थ में वे शूरवीरों के शिरोमणि थे। परन्तु, 'दीन' उनके लिए किसी सम्प्रदाय, मत अथवा पंथ का अभिव्यंजक नहीं था। उनके लिए 'दीन' अथवा 'धर्म' सत्य और न्याय का प्रतीक था। इस तरह उनका वीर-भाव औदार्य एवं उदात्तता से युक्त था। उनकी वीरता में दया, क्षमा एवं विनम्रता थी। उनकी वीरता का आदर्श था—"हाथ में खड्ग और हृदय में हरि-नाम।"

"धन्य जीउ तिह को जग माहिं मुख ते हरिनाम चित्त में जुद्ध विचारे।"

सेवा, त्याग, सदाचार एवं नाम-स्मरण आदि के द्वारा परम सत्य की उपलब्धि को जीवन का चरम लक्ष्य मानने वाले सिक्खों में उन्होंने उदात्त वीर-भावना का संचार किया और स्वयं अन्याय तथा अत्याचारों के विरुद्ध आजीवन संघर्ष करते रहे। फिर भी उनकी आध्यात्मिक चेतना मूलतः पूर्व गुरुओं के ही अनुकूल थी। पूर्व गुरुओं की भाँति उन्होने भी धर्म-साधना के क्षेत्र में लोकतंत्रीय मूल्यों को महत्त्व दिया। कठोर परिश्रम एवं निष्ठापूर्वक कर्त्तव्य पालन द्वारा प्राप्त फल का औचित्यपूर्ण उपभोग ही लोकतंत्रीय पद्धति का मूल-आधार है। सिक्खमत में सभी मनुष्यों को धर्मसाधना का समान अधिकार दिया गया है और इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी वंशगत अथवा जातिगत वैशिष्ट्य के बिना निःस्वार्थ सेवा, अहंकार-त्याग एवं एकनिष्ठ भक्ति द्वारा परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। सिक्खों की गुरु-परम्परा सेवा और बलिदान की अपूर्व कहानी है। उसमें गुरु-पद का वही अधिकारी होता था, जो अपने सद्गुणों के कारण इसके योग्य है। वंश-परम्परा अथवा आयु को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। गुरु नानकदेव ने श्रीचंद और लक्ष्मीचंद नाम के अपने दोनों पुत्रों को अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाया, वरन् सेवा, त्याग एवं आज्ञाकारिता से सम्बन्धित अनेक कठिन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने वाले अपने निष्ठावान शिष्य लहना को गुरुपद पर आसीन किया, जो बाद में उनके अंगरूप होने के कारण अंगद कहलाए। गुरु अंगददेव ने भी सेवा की प्रतिमूर्ति अमरदास को ही इस पद के योग्य समझा। गुरु अमरदास ने तो रामदास नाम के एक दीन बालक के सद्गुणों पर रीझ कर उसे गुरुपद पर ही प्रतिष्ठित नहीं किया, वरन् अपनी पुत्री का हाथ भी उसे सौंप दिया, भले ही उनके पुत्रों तक ने उनका विरोध किया। गुरु रामदास के पश्चात् गुरुता यद्यपि उसी वंश में रही, पर उसमें भी योग्यता ही निर्वाचन का आधार रही न कि आयु। स्वयं गुरु रामदास ने अपने बड़े लड़कों को गुरुपद न देकर, सबसे छोटे पुत्र अर्जुनदेव को इस पद के योग्य समझा, जिन्होंने समय आने पर अपनी बलि देकर अपनी योग्यता का प्रचुर प्रमाण दिया। गुरु गोबिन्दसिंह ने

इस लोकतंत्रीय परम्परा को जीवित ही नहीं रखा, वरन् इसे और अधिक सुदृढ़ एवं सशक्त बनाया। उन्होंने 'पंथ' को गुरुता प्रदान की और 'खालसा' की स्थापना के पश्चात् यह आदेश जारी किया कि पाँच या उनसे अधिक गुरु-सिक्खों का सम्मिलित निर्णय गुरु आदेश समझा जाए। इस संस्था को 'गुरुमता' का नाम दिया गया। धर्म में लोकतंत्रीय आदर्शों की स्थापना का यह अनूठा उदाहरण है। इस संस्था को पूरी प्रतिष्ठा देने के लिए उन्होंने स्वयं उसके आदेशों का पालन करके दिखाया। 'खालसा' की स्थापना के समय पाँच-प्यारों को अमृत-छकाने के पश्चात् वे उनसे स्वयं अमृत-पान कर दीक्षा ग्रहण करते हैं। गुरु द्वारा शिष्यों से इस प्रकार दीक्षा ग्रहण करने की यह घटना सभी धर्मों के इतिहास में अकेली और विशिष्ट घटना है। यही नहीं, अपने लोकतंत्रीय विश्वास को भली भाँति प्रतिष्ठित करने के लिए तथा गुरु-सिक्खों की इस सिद्धान्त के प्रति निष्ठा परखने के लिए गुरु गोबिन्दसिंह ने एक अनूठी युक्ति से काम लिया। यह जानते हुए भी कि समाधि-पूजा गुरुमत विरोधी है उन्होंने संत दादू की समाधि के प्रति सम्मान प्रकट किया। सिक्ख-संगत ने अपनी दृढ़ता का परिचय दिया। उन्होंने गुरुजी को दोषी ठहराया और सिक्खों के प्रिय और अपने सिद्धान्तों के प्रति निष्ठावान गुरुजी ने उनके द्वारा निर्धारित दण्ड को सहर्ष स्वीकार किया। दशमगुरु ने सदैव 'गुरुमता' के निर्णयों एवं आदेशों का पालन किया। इसका एक उदाहरण तब प्रस्तुत होता है, जब चमकौर युद्ध में सिक्खों की भयंकर क्षति हो रही थी। आसन्न विपत्ति को देखकर गुरु-सिक्खों ने यह निर्णय किया कि गुरुजी को कुछ सिक्खों को युद्ध के लिए छोड़कर स्वयं पिछवाड़े से निकलकर सुरक्षित स्थान पर चले जाना चाहिए। गुरु गोबिन्दसिंह अपने अनुयायियों को युद्ध की आग में झोंककर खुद बच निकलने को कदापि तैयार नहीं थे। परन्तु जब सिक्खों ने उन्हें उनका आदेश याद दिलाया तो 'गुरुमता' के निर्णय के सम्मुख उनको झुकना पड़ा और वे स्थान छोड़कर चले गए। यह संस्था आने वाले समय में कितनी उपयोगी सिद्ध हुई, सिक्ख इतिहास इसका साक्षी है। एक क्रान्तदर्शी लोकनायक ही ऐसे दूरगामी परिणामों की कल्पना कर सकता है। अपनी इस लोकलीला का अन्त निकट आया जानकर उन्होंने 'गुरु ग्रंथ साहब' को गुरुता प्रदान की और इस प्रकार गुरुपद प्राप्ति के लिए सम्भावित संघर्षों एवं गुरु-व्यक्ति में आ जाने वाले सम्भावित दुर्गुणों की आशंकाओं से पंथ को मुक्त कर उसकी उन्नति की सम्भावनाओं को सुरक्षित करके अपनी दूरदर्शिता एवं नेतृत्व योग्यता का परिचय दिया।

गुरु गोबिन्दसिंह तथा अन्य गुरुओं ने अपनी धर्म-साधना में सामाजिक न्याय को अत्यधिक महत्त्व दिया है। भारतीय समाज की जातिगत विषमता की रूढ़िग्रस्त व्यवस्था के स्थान पर सामाजिक समता एवं मानवीय एकता की भावना को प्रश्रय देने के लिए 'लंगर' प्रथा का सूत्रपात किया। गुरु गोबिन्दसिंह ने

भी जिस समय 'खालसा' की स्थापना की तो सामाजिक विषमता की खाई को पाटने के लिए एक सम्मिलित भोज का आयोजन किया, जिसमें वर्ण अथवा वर्ग का कोई भेद नहीं रखा गया था। वस्तुतः, गुरु गोबिन्दसिंह एक गत्यात्मक समाज की स्थापना करना चाहते थे। धर्म-साधना के क्षेत्र में भी वे वैयक्तिक साधना के साथ-साथ सामूहिक साधना एवं मानवकल्याण पर अधिक बल देते थे। गुरु नानक का कथन है कि सच्चा साधक वही है, जो साधना द्वारा अपना मुख तो उज्ज्वल करता ही है, औरों का भी उद्धार करता है। वह स्वयं तो भव-सागर को तरता ही है औरों को भी पार कराता है। गुरु गोबिन्दसिंह जब भी अपने इष्टदेव के सामने 'अरदास' करते थे, वे अपने सिक्खों की मंगल-कामना पहले करते थे।

सिक्ख-साधना में 'सेवा' को भी अत्यधिक महत्त्व दिया गया है, जिसका सामाजिक उत्तरदायित्व से गहरा सम्बन्ध है। 'वंड खाना' का सिद्धान्त शोषण-प्रक्रिया का प्रतिद्वन्द्वी है। गुरु गोबिन्दसिंह इन सिद्धान्तों के सबल समर्थक थे। वे सामाजिक, राजनैनिक अथवा धार्मिक किसी भी प्रकार के शोषण अथवा अत्याचार के शिकार दीन वर्ग के सबसे बड़े सहायक और संरक्षक थे। अपने इष्टदेव को भी वे 'गरीबुल निवाज' कहा करते थे, और स्वयं को उनका 'दास' या 'कीट' समान कहकर अपने को भी दीनों की पंगत में खड़ा करते थे क्योंकि उन्हें वे अपना ही अंग समझते थे। इस वर्ग को अत्यधिक प्रतिष्ठा देते हुए वे कहते हैं कि उन्हीं की सहायता से उन्होंने युद्ध में विजय प्राप्त की और उन्हीं के सहारे सब शत्रुओं का विनाश किया—

जुद्ध जिते इनहीं के प्रसादि
इनहीं के प्रसादि सुदल करे।
इनहीं के प्रसादि सुविधा लइ
इनहीं की कृपा सभसत्रु मरे।

वस्तुतः, 'दीनों' का ऐसा समर्थ हित-चिंतक, रक्षक, उद्धारक और मददगार इस युग में और कोई दिखाई नहीं देता।

सिंह के समान शत्रु को उसकी माँद में ललकारने वाला, पर्वत से टक्कर जाने वाला, वज्र से भी अधिक कठोर, भारतीय संस्कृति का उन्नायक और हिन्दू धर्म का रक्षक यह तेजस्वी संत-सिपाही अपने इष्टदेव के सम्मुख कुसुम से भी अधिक कोमल और शिशु से भी अधिक विनम्र दिखाई पड़ता है। वस्तुतः, वे तेज के पुंज, शक्ति और साहस के समुच्चय, उदारता और सहिष्णुता के कोश और कोमलता एवं विनम्रता के भंडार थे। उनके चित्त में 'नामस्मरण' और हाथों में खड्ग होती थी। सामाजिक समता, मानवीय एकता एवं धार्मिक उदारता में उनका अडिग विश्वास था और अनीति एवं अत्याचार के वे कड़े शत्रु थे। वे सचमुच एक शक्तिशाली एवं गत्यात्मक युग-पुरुष के व्यक्तित्व के धनी थे।

काव्य संसार

गुरु गोबिन्दसिंह एक प्रतिभाशाली कवि भी थे और उनके काव्य-प्रेम से आकर्षित होकर कितने ही कवि उनके आश्रय में रहने लगे थे। 'दशमग्रंथ' में उनकी रचनाएँ संकलित हैं। 'दशमग्रंथ' युग-चेतना से अनुप्राणित एक प्राणवान ग्रंथ है। इसमें अनेक रचनाएँ संकलित है। कुछ विद्वान तो सम्पूर्ण 'दशमग्रंथ' को ही गुरु गोबिन्दसिंह की कृति मानते हैं, जबकि अधिकतर विद्वान 'जापु', 'अकाल उस्तति', 'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) आदि कुछ कृतियों को छोड़कर अन्य को उनके दरबारी-कवियों की रचना मानते हैं। परन्तु, यह अगर मान भी लिया जाए, कि ये सभी रचनाएँ दशमगुरु कृत नहीं है, तो भी यह मानना पड़ेगा कि इन सभी पर उनकी स्वीकृति की मुहर लगी हुई है। उन्होंने जिस प्राणवान सांस्कृतिक चेतना, स्वातन्त्र्य-भावना, राष्ट्रीय-स्वाभिमान एवं धर्म रक्षा का भाव पंजाब के जन-जीवन में जागृत किया था, उससे सम्पूर्ण 'दशम ग्रंथ' आन्दोलित है।

मोटे तौर पर 'दशम-ग्रंथ' में संकलित रचनाओं को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) भक्ति-प्रधान एवं आध्यात्मिक विचारों से युक्त रचनाएँ—'जापु,' 'अकाल उस्तति,' 'ज्ञान-प्रबोध,' 'श्री मुखवाक सवैये' आदि।

(ख) वीर-रसात्मक रचनाएँ—'विचित्र नाटक' (अपनी कथा), 'चौबीस अवतार कथाएँ', 'चण्डी-चरित्र उक्ति विलास', 'चण्डी-चरित्र द्वितीय', 'चण्डी दी वार' (पंजाबी) एवं 'शस्त्रनाममाला'।

(ग) 'पख्यान चरित्र'—जिनमें नारी के प्रेम, शौर्य और प्रवंचना का विशद वर्णत करते हुए उसके चरित्र का उद्‌घाटन किया गया है।

गुरु नानक ने पंजाब में निर्गुण भक्ति प्रधान जिस सिक्खमत की नींव डाली थी, परवर्ती गुरुओं ने उसी को विकसित एवं समृद्ध किया। गुरु गोविन्दसिंह इसी परम्परा के अन्तिम एवं प्रतिष्ठित विद्वान संत थे। उन्होने वीर-भावना का संचार कर सिक्ख-अनुयायियों को एक नई दिशा अवश्य दी, परन्तु उनकी धार्मिक अथवा आध्यात्मिक भावना मूलरूप में पूर्व गुरुओं के ही अनुरूप थी। उनके साहित्य में दार्शनिक तत्व अथवा आध्यात्मिक विचार बहुत ही पुष्ट, प्रौढ़ एवं सुस्पष्ट हैं।

गुरु गोबिन्दसिंह के आध्यात्मिक विचार

गुरु गोबिन्दसिंह ने भारतीय अध्यात्म और विशेष रूप से 'आदि ग्रंथ' का विशद अध्ययन किया था और साथ ही उन्होंने अपने युग में प्रचलित विभिन्न मतों एवं सम्प्रदायों की विचारधारा और साधना-पद्धतियों का भी सूक्ष्म निरीक्षण किया था। ऐसा कहा जाता है कि उन्हें सम्पूर्ण 'आदिग्रंथ' और 'भक्त-वाणी' कण्ठस्थ थी और भाई मनीसिंह से उन्होंने 'गुरुवाणी' स्वयं बोलकर लिपिबद्ध

कराई थी।

उन्होंने आध्यात्मिक विचारों का बिशदता से निरूपण किया है, यद्यपि उनके विचार विशुद्ध ज्ञानमार्गियों की भाँति क्रमबद्ध और संगठित रूप में प्रकट नहीं हुए। उनके दार्शनिक विचार और आचार सम्बन्धी दृष्टिकोण 'दशम ग्रंथ' में अनेक स्थलों पर मोतियों की भाँति बिखरे हुए हैं। सुरुचि एवं सुदृष्टि से यदि उन्हें संकलित किया जाए, तो एक बहुत ही सुन्दर माला बन सकती है। मुख्य रूप से 'जापु', 'अकाल उस्तुति', 'बचित्र नाटक' (अध्याय २-४), 'चौबीस अवतार' (१-३४ छन्द), 'रामावतार' (छन्द २०४, २०५, ६६६, ६६४, ७०६, ७०७, ८५६), 'कृष्णावतार' (४३४, २४६१, २४६२, २६६६), 'ब्रह्मावतार' (१-१६), रुद्रावतार (७६-१०६), 'ज्ञान-प्रबोध', 'शब्द हजारा', 'श्री मुखबाक सवैये' आदि में उनके ब्रह्म, जीव-आत्मा, सृष्टि, जगत, माया, अवतार, कर्म, ज्ञान, विरक्ति, योग, भक्ति आदि से सम्बन्धित विचार देखे जा सकते हैं।

'अकाल उस्तुति' इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण रचना है। इसमें गुरुजी ने ब्रह्म के स्वरूप, सृष्टि-रचना, आत्मा एवं जीव के स्वरूप और स्थिति, जगत की नश्वरता और क्षण-भंगुरता, आवागमन आदि पर विशदता से प्रकाश डाला है। ज्ञान, कर्म, योग, विरक्ति आदि के स्वरूप को दर्शाते हुए भक्ति के महत्व का प्रतिपादन किया गया है और बाह्याचारों, मिथ्याडम्बरों, पाखंडपूर्ण साधनाओं का खंडन करते हुए सहज और शुद्ध आचरण, मानवतावादी भावना और नाम-स्मरण पर बल दिया है।

ब्रह्म का स्वरूप

गुरुओं ने ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, अलख, अगोचर, निरंजन, अभेद, अव्यक्त माना है और साथ ही उसे सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, कर्ता-पुरख, दाता, दयालु, कृपालु, स्वामी कहकर उसके सगुण रूप को स्वीकारते हुए उसकी भक्ति का निरूपण किया है। हालाँकि उसके अवतारी रूप का उन्होंने स्पष्ट रूप से खंडन किया है। ब्रह्म के सम्बन्ध में गुरुमत का बीजमंत्र इस प्रकार है—

"१ओंकार सतिनामु करता पुरख निरभउ निरवैर अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि"।

अर्थात्, वह सत्ता एक है, सदा एक रहने वाली है, सब वस्तुओं में व्यापक होकर सबको धारण करने वाली है। सब वस्तुओं को उत्पन्न करने वाली है, अपनी सृष्टि में व्यापक है। बिना भय के है, बिना वैर के है। उस पर समय का प्रभाव नहीं पड़ता, वह जन्म-मरण से रहित है। उसका प्रकाश अपने आप से ही है तथा गुरु की कृपा से जानी जाती है।

प्रायः सभी गुरुओं ने ब्रह्म के इसी रूप को स्वीकार किया है। 'आदि ग्रंथ' में

निर्गुण और सगुण की अभेदता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि 'जो निर्गुण है वही सगुण भी है', क्योंकि सारी सृष्टि का वही कर्ता है, वही कण-कण में व्याप्त, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान है' :

निरगुन हरिआ सरगुन धरीआ (आदिग्रंथ—रागु सुही महला ५/१/१/४६
निरगुणु सरगुणु आपे सोई (वही, माझ महला ३/१/३१/३२)
निरगुणु आपि सरगुनु भी ओही (वही गउडी सुखमनी महला ५/२/२८)

गुरु गोबिन्दसिंह ने भी 'अकाल उस्तुति' में ब्रह्म का इसी रूप में निरूपण किया है। उसके अनुसार वह 'ओंकार, आदि पुरुष, अव्यक्त, अविनाशी, अकाल, अद्वैत, अलख, अविगत[1], अक्षय, रूप-रंग-रेख, वर्ण-चिह्न रहित, अविकारी[2], राग-द्वेष, माता-पिता, जाति-पाँति, शत्रु-मित्र रहित[3], अजन्मा, भरमरहित, परमपुरुष, निर्गुण और निराकार है। वह स्त्री है न पुरुष[4], अदेश, अनादि और अनन्त हैं[5]। वह माया-रहित, इच्छा-रहित और निरंजन है।[6] उसे किसी प्रकार भी जाना नहीं जा सकता।[7] ब्रह्मा, विष्णु भी उसका अन्त नहीं पा सकते, वे चारों मुखों से उसे 'नेति-नेति' कहते हैं।[8], गंधर्व, देवता, यक्ष, कृष्ण, राम, इन्द्र आदि सभी विचार करते हैं, मगर उस निराकार का पार नहीं पा सकते।[9] बहुत से लोग शरीर पर शीत, गर्मी और वर्षा सहते हैं, समाधि लगाकर कई कल्प बिता देते हैं; कई प्रकार के योग साधते हैं, तब भी उस अलख, अरूप का अन्त नहीं पा सकते, जिसे वेद 'नेति नेति' और कतेब 'अलख' कहते हैं।[10]

गुरु गोबिन्दसिंह पर वैष्णवों के प्रपत्तिवाद का भी प्रभाव था। वे पूर्व गुरुओं की भाँति ब्रह्म के सगुण रूप का भी इस प्रकार निरूपण करते हैं कि वह माया-

---

१. अकाल उस्तुति २
२. वही, ३,२३६
३. वही, ४
४. वही, २६१,
५. 'जिह आदि अन्त नहीं रूप रस', वही, : १२६
६ वही, २५२-२६३
७. खोज थके सभ ही खुजीआ, सुर हार परे हरि हाथ न आवै, वही : २४६
८. वही : ५
९. वही : २५७
१०. वही : १२१-१२६

पति[११], सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वकालदर्शी[१२], सर्वोपरि[१३], कण-कण में व्याप्त, कीट-कुंजर में समान रूप से स्थित, घट-घट का अन्तर्यामी[१४], जल, थल, हृदय, वन, पर्वत, आकाश, यहाँ, वहाँ—सर्वत्र विद्यमान[१५], त्रिलोक व्यापी, चौदहों लोकों में प्रकाशवान[१६], महाकाल का भी काल, जगतपति, विश्वम्भर[१७], अपार रूपवान-अनन्तरूप, अतुल-प्रताप, अनाहद-वाणी, करोड़ों इन्द्रों, वामन, ब्रह्मा, रुद्र, राम, कृष्ण, मुहम्मद, दैत्यों, देवों, शेषनाग, गंधर्व, यक्षों को बनाने और खपाने वाला[१८], स्वेदज, अंडज, भूतज, जीरज—चारों योनियों की रचना करने वाला[१९], सभी का कर्त्ता, पालक, संहारक, रोग, शोक, दोष का हरता; मुक्ति-प्रदाता, अकलंक[२०] सूर्य, चंद्र, जल, थल, आकाश, पवन, अग्नि और रात-दिन का निर्माता[२१]; भूत, भविष्य, वर्तमान में विद्यमान[२२]; दुष्टहंता[२३]। बैरियों का घातक[२४]; युद्ध का जितैया[२५]; अनाथ-नाथ[२६]. दयालु; कृपालु, भयत्राता[२७]; दाता[२८]; पवित्र, शुद्ध, सिरताज[२९]; दीनबन्धु, स्वामी[३०]; सब जीव-जन्तुओं की पालना करने वाला

---

११. वही, १
१२. वही, ५१, १६४, ५-८
१३. वही, २
१४. 'सर्वठौर विखे रमियो,' वही, ५१
१५. वही, ४
१६. वही, १
१७. वही, १६४
१८. वही, १५२, ३०, ३६, ६
१९. वही, १४८
२०. वही, ३३
२१. वही, १५१-१५२, २४६
२२. वही, ९२
२३. वही, १९४
२४. वही, १९४
२५. वही, १५३
२६. वही, १६२
२७. वही, ७५
२८. यही, १२२
२९. वही; १७२
३०. वहा, १९०, २३३, २३६

राजक रहीम[31] है। परन्तु सर्जन, संहार, पालन आदि का कार्य वह अकाल पुरुष ही करता है, विष्णु या ईश्वर नहीं, जैसा कि कुछ अन्य मतों में माना गया है।

वस्तुतः, उन्होंने ब्रह्म का 'नेति-नेति' और 'तत्त्वमसि'—दोनों रूपों में स्मरण किया है। एक ओर उसे 'नेति-नेति' और 'बिअंत-बिअंत' कहा है[32]—तो दूसरी ओर उसका 'तुहीं-तुहीं,' 'तुहीं-तुहीं', 'तुहीं-तुहीं, तुहीं-तुहीं। जले हरि थले हरि···[33] के रूप में निरूपण किया गया है। वह उसे एक रूप और सर्वरूप भी मानते हैं और अरूप भी। उनके अनुसार कहीं वह हिन्दू होकर गुप्त गायत्री पाठ करता है, कहीं तुर्क होकर बांग देता है, कहीं मुंडिया, कहीं योगी, कहीं पुराणपाठी, कहीं कुराण-पाठी, कहीं त्रिगुणातीत, कहीं सर्वगुण सम्पन्न, कहीं यती, कहीं जती, कहीं जटा-धारी, कहीं कामी, कहीं दैत्य, कहीं दानी, कहीं भिखारी, कहीं राजा, कहीं रंक, कहीं कीट, कहीं कुंजर, कहीं सुन्दर कहीं कुरूप, कहीं ब्राह्मण, कहीं मुसलमान, कहीं बालक, कहीं वृद्ध, सर्वत्र सभी कुछ वही है।[34] वह अशरीरी भी है और तेजयुक्त भी, रूपवान भी है और नाशरहित भी, द्वैत से युक्त भी है और आशारहित भी, दाता भी है और बेअंत भी, सर्वत्र उसी का प्रसार और प्रकाश है; सातों आकाशों और सातों पातालों में उसी अदृश्य का विस्तार है।[35] वह सबसे दूर और सबके निकट है, पूर्ण प्रकाश है।

मध्यकाल में उत्तर भारत में कितने ही सम्प्रदाय प्रचलित थे, जो परमात्मा को अलग-अलग नाम से पुकारते थे और आपस में लड़ते रहते थे। गुरु गोबिन्दसिंह ने इन सम्प्रदायों द्वारा दिये गये ब्रह्म के सभी नामों को ग्रहण किया है। 'जाप साहब' में उन्होंने 'विष्णुसहस्रनाम' की शैली मे उसके असंख्य नामों और रूपों का उल्लेख किया है, यद्यपि वे बार-बार इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि उसका कुछ भी नाम रख लिया जाए, वह रूपरहित, भेदरहित और नामरहित है। पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, अरब, फ्रांस, चीन, तिब्बत, बंगाल, द्रविड़ सभी स्थानों पर उसे ही ध्याते हैं, नाम भले ही भिन्न रख लें।[36]

---

३१. वही, २३९, २६९
३२. वही, २१९
३३. वही, ६९
३४. वही, ११-२०, ११४
३५. वही, २६८
३६. वही, २५४, २५५

अवतारवाद

'आदिग्रंथ' में ब्रह्म के लिए राम, श्याम, गोबिन्द, हरि आदि नाम आए है यथा :

गोबिन्द गोबिन्दु गोबिन्दु हरि गोबिन्दु गुणु निधान
(महला ४ वार कानड)

राम राम राम कीरतनु गाइ। राम राम राम सदा सहाइ।
(महला राग गोंड)

सिआम सुन्दर तजि नींद किउ आइ (५, सूही)

परन्तु वहाँ गोबिन्द, राम, श्याम, 'अकाल पुरुष' के नाम है, किसी अवतार के नहीं, क्योंकि अवतारवाद का 'गुरु ग्रंथ साहब' में स्पष्ट रूप से खंडन किया गया है—

नानक निरभउ निरंकार होरि केते राम रवाल
(गु० ग्रं० सा० आसा महला १—पृ० ४६४)

इसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने भी ब्रह्म के लिए गोबिन्द, राम, श्याम, कृष्ण, अदेस, कामल, कमाल, रहीम, करीम आदि कितने ही ऐसे नामों का प्रयोग किया है। उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रावतार की अनेक कथाओं का भी निरूपण किया है। इन तथ्यों के आधार पर कुछ विद्वानों ने गुरु गोबिन्दसिंह को अवतारवादी भावना के पोषक कहा है और कुछ ने उनके अवतार विरोधी विचारों को ध्यान में रखते हुए उसे 'अवतार प्रायः' भावना का नाम दिया है। यह मानकर कि, 'उनका अकाल पुरख अवतार न होकर भी अवतार के जितने निकट है, उतना पूर्ववर्ती गुरुओं का अकाल पुरख नहीं।' परन्तु हम समझते हैं कि ये दोनों ही धारणाएँ भ्रामक हैं। न तो गोबिन्दसिंह अवतारवादी भावना के पोषक थे और न ही 'अवतार प्रायः' भावना से कोई अर्थ निकलता है। अवतारवाद का तो दशम गुरु ने स्पष्ट रूप से खण्डन किया है। उनके अनुसार ब्रह्मा, विश्म्भर, चक्रधर, चक्रपाणि, गोविन्द गोपाल, गोपीनाथ, हरि, माधव, बनवारी, मुरारि, नारायण, मुकन्द, पद्मापति, श्रीपति, नीलकंठ, राम, कृष्ण आदि सभी प्रतीक हैं, ऐसे दहधारी अवतार नहीं, जिन्हें अकाल पुरुष के समकक्ष माना जाए, क्योंकि उनका कथन है कि यदि "वह नारायण (जल में घट वाला) है तो कच्छ-मच्छ सभी नारायण है।" "गोपीनाथ है तो सब ग्वाले गोपीनाथ हैं"; "माधव है तो सभी भँवरे माधव है"···इत्यादि।[३७] गुरु जी का कथन है कि ऐसा मानने वाले रूढ़ि को पीटते हैं, वे भेद को नहीं जानते। उस ब्रह्मने करोड़ों ही ब्रह्मा, विष्णु, राम, कृष्ण उपाए और खपाये हैं।

---

३७. वही, पृ० २४

ये सब यहीं उत्पन्न होते हैं और यहीं मिट जाते हैं। ये सभी काल के अधीन हैं। इनमें से कोई भी ब्रह्म या उसके बराबर नहीं है :

एक सिब भए एक गए एक फेर भए,
रामचन्द्र क्रिसन के अवतार भी अनेक हैं।
ब्रह्म अरु बिसन केते बेद ओ पुरान
केते सिम्रति समूहन कै हुइ हुइ बितए हैं।
मौदनी मदार केते असुनी कुमार केते,
अंस अवितार केते काल बस भए हैं।
पीर औ पिकाम्बर केते गने न परत ऐसे,
भूम ही ते हुइ कै फेरि भूम ही मिलए हैं। (अकाल उस्तुति : ७७)

ये सभी कीड़ों के समान हैं, करोड़ों की संख्या में जिन्हें परमात्मा बनाता है और फिर नष्ट कर देता है।[३८] वह ब्रह्म तो आदि, अद्वैत, अविनाशी है।

'दशमग्रन्थ' में चौबीस अवतार कथाओं का निरूपण अवश्य किया गया है, परन्तु, उनमें कहीं भी उन्होंने अपनी ओर से यह नहीं कहा कि वे इन अवतारों के ब्रह्मत्व में विश्वास रखते हैं। पुराणों में जैसी अवतार कथाएँ वर्णित हैं उन्हें उसी रूप में चित्रित कर दिया गया है। इन्हे ग्रहण इसलिए किया गया है कि उन्हें इन कथाओं की दुष्ट-दमनकारा प्रवृत्ति से अपने उद्देश्य की सफलता में बल मिलता था और उनके अनुयायियों की उत्साहित करने में भी वे सहायक हो सकती थीं और हुईं। वैसे भी वैष्णव-मत और पुराणवाद का उस युग में सामान्य जनता पर इतना गहरा प्रभाव पड़ चुका था कि उसे उतार फेकना आसान नहीं था। गुरुजी ने उनके इन विश्वासों से लाभ उठाया और इन अवतार-कथाओं से उनके हृदय में "धर्मयुद्ध के लिए अतुल चाव" व उत्साह पैदा करने में वे सफल हुए।[३९] परन्तु, ऐसा करने से वे कदापि अवतारवादी सिद्ध नहीं होते। यदि जायसी, कुतवन, मंझन जैसे सूफी कवि हिन्दू कहानियों को अपनाने से हिन्दू नहीं हो जाते, बल्कि सूफी ही रहते हैं; वरन् उनकी कथाओं के माध्यम से सूफी मत का प्रचार और प्रसार करने में अधिक सफल रहते हैं; तो गुरु गोबिन्दसिंह अवतार-कथाओं का वर्णन करने मात्र से अवतारवादी भावना में विश्वास रखने वाले कैसे हो सकते हैं? जबकि इन अवतार कथाओं में भी वे स्थान-स्थान पर, आरम्भ अथवा अन्त में भी, इन अवतारों

---

३८. कितै क्रिसन से कीट कोटे उपाए, उसारे गड़े फेरि मेटे बनाए।
अगाधे अभै आदि अद्वै अबिनासी। पार अपारा परम पूरन प्रकासी। ९६।
(अकाल उस्तुति)

३९. दसम कथा भागौत की भाखा करि बनाई।
अबर वासना नाहि प्रभु धरमजुद्ध की चाई। (कृष्णावतार : २४९१)

के ब्रह्मत्व का खण्डन करते ही रहे हैं।

'चौबीस अवतार' के आरम्भ में वे लिखते हैं कि ब्रह्म अजन्म, अरूप, अलख है, फिर भी घट-घट वासी है। वह सृष्टि का कर्ता, पालक और संहारक है, मगर ये जो चौबीस अवतार कहे गए हैं, वे यूँ ही भटकते रहते हैं, उस बेअन्त को नहीं पा सकते। देखिए--

जो चउबीस अवतार कहाए। तिन भी तुम प्रभ तनक न पाए।
सभ ही जग भरमे भरमायं। ताते नामु बिअन्त कहायँ॥

(चौ० अवतार आरम्भ : ७)

'कृष्णावतार' में भी वे लिखते हैं कि मैं इनमें से किसी अवतार के बारे में नहीं जानता। मैंने उनके सम्बन्ध में सुना जरूर है, मगर मैं उन्हें ब्रह्म नहीं मानता।[४०] इसीलिए उन्हें गणेश, कृष्ण, विष्णु के ध्यान से कोई वास्ता नहीं। उन्होंने अन्य अवतार कथाओं के अन्तर्गत भी ऐसे विचार प्रकट किए हैं।[४१] कुछ उदाहरण देखिए :

काल पुरख की देहि मो कोटिक बिसन महेस।

(शेष शय्या अवतार : ११)

जब जब होत अरिसटि अपारा। तब तब देह धरत अवतारा।
काल सबन को पेख तमासा। अंतह काल करत है नासा।

(चौबीस अवतार, आरम्भ : २)

'रामावतार' में भी उन्होंने कहा है--

पाइ गहे जब ते तुमरे तब ते कोऊ आँख नरे नहीं आन्यो।
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहे मत एक न मान्यो। ८६३।

ये अभी 'अकाल पुरख' की आज्ञा से यहाँ आए है[४२] स्वयं अकाल पुरुष कैसे हो सकते हैं। गुरुजी का कथन है कि समय-समय पर जब पृथ्वी पर अत्याचार बढ़ता है तो सन्तों का पुकार पर परमात्मा ने अन्याय, अधर्म एवं अत्याचार के विनाश के लिए और धर्म की स्थापना के लिए अनेक पीरों, पैगम्बरों, नबियों, देवों-अवतारों

---

४०. कृष्णावतार: ४३४ : मै न गनेसहि प्रथम मनाऊँ, किसन बिसन काइ नहिं धिआऊँ (वहीं)

४१. पारस अवतार: ४, जालन्धर अ० : २०-२१, रद्रा० अ० : ४, अरहंत अ० ७-८, मनु० अ० : २-३, धनंतरण० अ० : ३, सूर्य० अ० : ३, चन्द्र अ० : ७-८, राम० अ० : ३, कृष्ण अ० : २-३ आदि।

४२. दीयों आइसं काल पुरखं अपारं। धरो बावना बिसन असटमावतारं।
लई बिसन आगिआ चलयो धाई ऐसे। लइयों दारदी भूपभंडार जैसे॥

(बावन अ० : १३)

को भेजा, परन्तु वे यहाँ आकर परमात्मा को भूल गये और स्वयं को ही परमात्मा कहकर पुजवाने लगे, तब परमात्मा ने उन्हें भी नष्ट कर दिया।[४३] गुरुजी ने 'बिचित्र नाटक' में ऐसे पथभ्रष्ट अवतारों की घोर भर्त्सना की है और स्वयं को परमात्मा का 'दास' कहा है और घोषणा की है कि उन्हें भी अकाल पुरुष ने इसी उद्देश्य से भेजा है—दुष्ट दमन-हेतु, परन्तु जो कोई उन्हें अवतार कहेगा वह नरक में गिरेगा।[४४] उन्होंने अपने को 'कीट' कहा है और युद्ध में अपनी विजय को भी परमात्मा की कृपा माना है।

अतः, स्पष्ट है कि गुरु गोविन्दसिंह ने पुराणों की अवतार कथाओं का अवश्य ग्रहण किया, परन्तु अवतारवाद में उन्हें विश्वास नहीं है। उन्होंने इन अवतार कथाओं को इस रूप में ढाला है कि उनमे अवतारों के प्रति भक्ति उत्पन्न नहीं होती, जैसा कि पुराणों का उद्देश्य है, किन्तु 'धयुर्मद्ध' के लिए उत्साह और प्रेरणा मिलती है। उन्होंने लिखे ही ये[४५] इस उद्देश्य से थे और इसमें युद्ध-प्रसंगों को ही अधिक विस्तार दिया गया है। वस्तुतः, उन्होंने पौराणिक शैली को अवश्य अपनाया, पुराणों की अवतारी-भावना को ग्रहण नहीं किया।

गुरु गोबिन्दसिंह को वष्णवों की भाँति ब्रह्म की कृपालुता, दयालुता में आस्था है और उसकी भक्त-वत्सलता, दीनबन्धुता आदि का वर्णन उन्होंने पूरी निष्ठा और श्रद्धा से किया है। यथा—

दीनन की प्रतिपाल करै नित सन्त उबार गनीमन गारै।
पच्छ पसु नग नाग नराधम सरब समै सभ को प्रतिपारै।
पोखत है जल मै थल मै पल मै कल के नहि करम विचारे।
दीन दइआल दइआनिधि दोखन देखत है पर देत न हारै।
(अकाल उस्तुति : २४३)

परमात्मा सभी का पालन करता है, पेट तक में खाने को देता है। जिस पर उसकी रक्षा का हाथ होता है, उसका कोई बार भी बाँका नहीं कर सकता, शत्रु के अनेक वार भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते।[४६] इसीलिये वे कहते है कि व्यर्थ की कल्पना-जल्पना बेकार है। उसी 'पद्मापति' का स्मरण करना चाहिए जो सबकी सुध लेता है :

काहे को डोलत है तुमरी सुध सुन्दर स्री पदमापति लै है।
(अकाल ३० २४७)

---

४३. विचित्र नाटक ६ : २-६४
४४. वही ६ : ३२
४५. कृष्णावतार : २४६ १
४६. अकाल उस्तति : २४८

जो उसका स्मरण करते हैं वे पूर्ण प्रताप को प्राप्त करते है, सब प्रकार के सुख एवं वैभव को पा लेते हैं।

वह दीनदयाल, कुंजर से भी पहले चींटी की पुकार सुनता है :

हाथी की पुकार पल पाछे पहुँचत ताहि।
चींटीं की चिंघार पहले ही सुनीअतु है। (वही, २५६)
यह थी उनकी आस्था और विश्वास।

गुरुजी ने अकाल-पुरुष का स्मरण 'सर्वलोह' के रूप में भी किया है, वह 'सर्वलोह' जो असुर-संहारक, दुष्टदमनकारी एवं सन्त-रक्षक है। 'विचित्र नाटक' के आरम्भ में 'खड्ग' के रूप में उन्होंने इस 'सर्वलोह' की वन्दना की है। उसे उन्होंने 'चक्रपाणि', 'खड्गपाणि', 'असिकेतु', 'खड्गकेतु', 'अस्त्रपाणि', 'शस्त्रपाणि' भी कहा है।

'जापु साहब' में ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण बड़ी विलक्षणता से किया गया है जोकि सिक्ख-परम्परा में 'जपुजी' के पश्चात् सर्वाधिक महत्त्व की रचना है और एक 'स्तोत्र काव्य' है।

संस्कृत साहित्य में स्तोत्रों की एक विशिष्ट परम्परा मिलती है, जिनमें, 'शिवसहस्रनाम स्तोत्रं', 'विष्णु सहस्रनाम स्त्रोत्रं', 'काली सहस्रनाम स्तोत्रं' 'श्यामा स्तोत्रं', 'दुर्गादिनाम स्तोत्रं उल्लेखनीय हैं।

भक्ति-स्तोत्रों का लक्ष्य किसी देव या देवी की स्तुति करना है, जबकि 'जापु साहब' का लक्ष्य एक ऐसा अनिर्वचनीय ब्रह्म है जो मानवीय दैहिक तावों सें परे है; काल, जन्म एवं मरण से मुक्त है। भक्ति स्तोत्रों में ब्रह्म के सगुण रूप की प्रवृत्ति मिलती है, किन्तु 'जापु साहब' में ब्रह्म के निर्गुणत्व तथा अकाल की भक्ति की प्रतिष्ठा की गई है। इन स्तोत्रों में नाम-परिगणन शैली में स्तुत्य देव के विविध अभिधानों एवं विभूतियों से युक्त विभिन्न विशेषणों आदि का वर्णन होता है, जैसा कि 'विष्णु-सहस्रनाम स्तोत्र' में विष्णु के शील, शक्ति और सौन्दर्य सम्बन्धी गुणों-विशेषणों का परिगणन किया गया है। इसी प्रकार 'जापु साहब' में भी 'अकाल पुरुष' की विविध विशेषताओं, विभूतियों एवं अभिधानों की स्तुति की गई है। इसीलिए 'जापु' को 'अकाल स्तोत्र' की संज्ञा भी दी जाती है।

'जापु साहब' में सिखमत के मूल मन्त्र "१ ओंकार सतिनामु करता पुरख निरभउ निरवैर अजूनी अकाल मूरति सैभं गुरु प्रसादि" की अवधारणा के अनुरूप परब्रह्म के इन सभी गुण-बोधक विशेषणों का ही विशदता से निरूपण हुआ है। गुरु गोबिन्दसिंह के परब्रह्म परमतत्व, निर्विकार, निर्विकल्प' निरुपाधि, निर्गुण-निराकार हैं। 'जापु साहब' में परब्रह्म के इस स्वरूप की स्तुति उपनिषदों की 'नेति' 'नेति, एवं 'तत्त्वमसि'—इन दोनों पद्धतियों में की गई है। 'जापु साहब' में भी इस परम तत्त्व परमेश्वर का वर्णन इस प्रकार किया गया

है :

परम वेद पुराण जाकहि नेत भाखत नित ।
कोटि सिमंत पुराण शास्त्र न आवई बहु चित ।

परब्रह्म के अकालत्व और उसकी समस्त विभूतियों, विशेषताओं का व्यक्तिकरण 'जापु साहब' में निषेधात्मक एवं विधेयात्मक दोनों पद्धतियों में किया गया है। गुरु गोबिन्दसिंह ने उसके विराट, गतिशील, अमूर्त, द्वैताद्वैत, विलक्षण, घट-घट वासी, सरब निवासी स्वरूप का वर्णन सभी धर्मों, मतों, जातियों, देशों और भाषाओं में प्रयुक्त शब्दावली में किया है।

'नेति' 'नेति' की अभावात्मक पद्धति का अनुसरण करते हुए 'जापु साहब' में उसके निराकार, निर्विकल्प रूप का वर्णन शब्दों के साथ 'अ' उपसर्ग लगाकर —अरूपे, अभेखे, अलेखे, अकाए, अजाए, अगंजे, अभंजे, अनामे, अठामे अकरमे, अधरमे, अजीते, अभीते, अबाहे, अठाहे, अनीले, अनादे, अछेदे, अगाधे, अपारे, अभूते, अजूझे, अजूपे, अलोके, अनासे, अबरने, असोके, अथापे, अधामे आदि शब्दों द्वारा किया गया है। कतिपय स्थानों पर—आधिज्जै देसे/आभिज्जै भेसे/आगंज करमं/आभंज भरमं आदि शब्दों में 'आ' उपसर्ग का भी उपयोग किया गया है।

इसी प्रकार उस ब्रह्म के निरुपाधि रूप को 'निर' अथवा 'अन' उपसर्ग लगाकर—निरकरमे, निरभरमे, निरदेसे, निरभेसे, निरनामे, निरकामे, निरघाते, निरधाते, निरतापे, निरबूझ, निरसीक; अनडंड, अनउसतुति, अनभेस आदि शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है। कहीं-कहीं 'न' अव्यय के साथ भी उसके इस स्वरूप का निरूपण हुआ है। यथा—

न पोत्रै न पुत्रै ।
न सत्रै न मित्रै ।
न तातै न मातै ।
न जातै न पातै ।

ब्रह्म की इस अवधारणा को व्यक्त करने के लिए एक ही विशेषण का प्रयोग भिन्न-भिन्न स्थलों पर, भिन्न-भिन्न छन्दों में, विभिन्न विभक्तियों के साथ उन्हीं शब्दों में अथवा पर्यायवाची शब्दों में भी हुआ है। यथा—

भुजंग प्रयात छन्द में	चाचरी छंद में
नमसतं अरुपे	अरुप है।
नमसतं अनूपे	अनूप है।
नमसतं अजाए	अजू है।
नमसतं अलेखे	अलेख है।
नमसतं अभेखे	अभेख है।
नमसतं अगंजे	अंगज है।

नमसतं असरगे	असरग है।
नमसतं अनीले	अनील है।

पर्यायवाची रूप में

अकाए	अनंगी
अगंजे	अढाहे

स्तुतिपरक आवेश में एक या दो छन्दों में भिन्न-भिन्न चरणों में उन्हीं शब्दों का प्रयोग बार-बार किया गया है :

अजीत है। अभीत है। अबाह है। अजाह है।
अजीत है। अभीत है। अबाह है। अजाह है।

इसी प्रकार 'सरब गउने' एवं 'सरब पाले' आदि शब्दों का प्रयोग भी कई बार हुआ है।

परमात्मा की अनिर्वचनीयता का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है :

चक्रचिह्न अरु बरन जाति अरु पाति नहिन जिह।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकत किह।

अर्थात्, वह किसी चिह्न को धारण करने वाला, किसी वर्ण का, किसी जाति का नहीं है, न उसका कोई रूप है, न रंग, न वेश, अर्थात् वह विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि में से कोई सगुण-स्वरूपा या अबतार पुरुष नहीं है। वह तो :

"अकाल मूरति अनभउ प्रकाश, अमितोजि" है।

'तत्त्वमसि' की अवधारणा का अनुसरण करते हुए ब्रह्म की विभूतियों का निरूपण 'सर्व' संख्या विशेषण-युक्त शब्दों द्वारा इस प्रकार किया गया है :

सरब पालक। सरब घालक। सरब का पुनि काल।
सरब काले। सरब पाले। सरब खापे। सरब थापे।
सरब गउने। सरब भगे। सरब धंधे।
सरब करता। सरब हरता। सरब माने।
सरब रसे। सरब रंगे। सरबं दृस्सं। सरबं कृस्सं।

'त्रिमाने' (तीनों लोकों में मान्य), त्रिवर्ग आदि मे 'त्रि' संख्या-विशेषण; तथा 'प्रभोगे', 'सुहागे', निधाने 'आदि' में 'प्र', 'सु', 'नि' उपसर्ग से भी ब्रह्म की सर्वज्ञता, सवशक्तिमान, व्यापकता आदि को व्यक्त किया गया है।

'नेति' 'नेति' और 'तत्त्वमसि' के उभयपक्षीय रूपों को 'जापु साहब' में विपरीतार्थक अथवा परस्पर-विरोधी गुणात्मक शब्दों द्वारा इस प्रकार प्रकट किया गया है—

एकै	अनेकै
अकाल	सरब काल

अरूपे	सरब रूपे
अभेवे	देवे
अकर्मी	सरब कर्मी
राजान राज	रकांन रंक
नमो साँत रूपे	नमो कलह करता

इस प्रकार 'जापु साहब' में ब्रह्म के स्वरूप-निरूपण के सन्दर्भ में 'एकता' और 'अनेकता', 'अंधकार' और 'प्रकाश', 'योग' और 'भोग', 'शत्रुता' और 'मित्रता' का एक साथ वर्णन हुआ है।

नमसतं सु एकै/नमसतं अनेकै/नमो जोग जोगे/नमो भोग भोगे।
नमो अंधकारे/नमो तेज तेजे/नमो कलह कर्ता/नमो सान्त रूपे।

ब्रह्म के विराटत्व का बोध कराने के लिए 'जापु साहब' में अनेक देशों, वेशों, धर्मों, मतों, सम्प्रदायों में परमात्मा की विभूतियों के सूचक शब्दों का प्रयोग किया गया है।

जैसे—सरगुन निरगुन निरंकार॥
सुन्न समाधि आपि॥
नमो सरब देसे।
नमो सरब भेसे।

वह सूर्यों का सूर्य, चन्द्रमाओं का चन्द्रमा है, वही अंधकार है, वही प्रकाश। वह सूर्यों का सुखाने वाला (आदित सीकै) है—

नमो सूरज सूरजे। नमो चन्द्र चन्दे।
नमो अंधकारे। नमो तेज तेजे।

वह अति प्रचण्ड, अखण्ड गति, चारों दिशाओं में व्याप्त, चारों दिशाओं का पालक एवं ज्ञेय तथा चारों दिशाओं में मान्य है—

अति दुति प्रचण्ड। मिति गति अखण्ड।
चतर चक्र करता। चतर चक्र हरता।
चतर चक्रवती। चतर चक्र भरती।

वस्तुतः, वह समस्त ब्रह्माण्ड स्वरूपा—'कॉस्मिक' है, पंच तत्व से स्वतन्त्र परम तत्व है—नमो परम ततं। अनन्त सरूप।

उपर्युक्त शब्दावली एवं पद-रचना ब्रह्म के इस रूप को समर्थता से व्यक्त करती है।

स्तुतिपरक रचना होने के कारण 'स्तोत्र' में भक्ति की भाव-प्रवणता के साथ-साथ इष्टदेव के शील, शक्ति, सौन्दर्य सम्बन्धी गुणों का वर्णन होना स्वाभाविक ही है। 'जापु साहब' में भी प्रभु की कृपालुता, दयालुता, करुणा, त्राता, रक्षक, पोषक, शक्तिमत्ता एवं सुन्दरता आदि गुणों का निरूपण वैष्णवों, संतों एवं

इस्लामी परम्परा की शब्दावली में इस प्रकार हुआ है—

नमसतं रहीमे। नमसतं करीमे।
नमसतं सरब दयाले। नमो सरब पाले।
कि कामल करीम है। कि राजक रहीम है।
रोजी दहिंद है। कि राजक रहिंद है।

इसके लिए प्रभु के लिए पोखं। कृपाले। उदारे। अजीते। अभीते। परम ज्ञाता। अमितोजं। प्रमार्थ। प्रमाथे। लोकमाता। रोग हरता। सदा अंग संगे। अभंग विभूते। कलंक बिना। नेकलंकी। रूप रसाले। परम रूपे। सरब रूपे—आदि का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार के स्तुतिपरक वर्णनों में एक विलक्षण बात यह सामने आती है कि पहले कुछ छन्दों में कवि भारतीय अध्यात्म-परम्परा की शब्दावली में ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करके स्तुति करता है, फिर कुछ छन्दों में इस्लामी परम्परा से फारसी शब्दावली में उसकी विभूतियों एक विशेषताओं को व्यक्त करता है और फिर कुछ छन्दों में दोनों प्रकार की शब्दावली का एक-साथ प्रयोग करके दोनों संस्कृतियों के मेल का उदाहरण प्रस्तुत करता है। जैसे— भारतीय परम्परा में— अभंग। अजंग। अभेख। अलेख। अनादि। जगादि। अनित। सुनित आदि के रूप में ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करके 'जापु साहब' में इस्लाम धर्म के अनुसार उस प्रभु की स्तुति इस प्रकार की गई—

रोजी रजाकै (आजीविका देने वाला)। रहीम रिहाकै (मोक्षदाता)। पाक विआवै (परम पवित्र)। गैबुलगैब (इन्द्रियातीत)। अफूअल गुनाह (पापों को क्षमा करने वाला)। शहान शाह (राजाओं का राजा)। कारन कुनिंद (कारण कर्ता)। राजक रहीम। करमं करीम (करुणामय)। फहीमै (प्रज्ञावान)। आकल अलामै (बुद्धि-विद्या का स्वामी)। साहिब कलामै (वाक्यपति)। हुसनल वजू (परम सुन्दर आकृति वाला)। तमामुल रुजू (सब की ओर ध्यान देने वाला)। हमेसुल सलामै (शाश्वत)। सलीखत मुदामै (सनातन सृष्टि वाला) इत्यादि। परमात्मा के ऐसे अनेक अन्य गुणों का वर्णन इसी भाषा-शैली में 'जापु साहब' में किया गया है। इस्लामी परम्परा से ग्रहीत अल्लाह, रहीमे, करीमे शब्दों का प्रयोग इस रचना में अनेक बार किया गया है।

वैष्णवी एवं इस्लामी दोनों परम्पराओं के अभिधानों एवं विशेषताओं का एक साथ प्रयोग इस प्रकार हुआ है—

गुविंदे। मुकंदे। हरीअं। करीअं।

वैष्णव तथा इस्लाम-धर्मावलम्बियों के अतिरिक्त योगियों की 'अदेसं', 'अदेसें', 'अदेसं', 'जोग जोगे', 'नमो धिआन-धिआने'; ज्ञानमार्गियों की 'नमो मंत्र मंत्रं। नमो जंत्र-तंत्रं'। आदि शब्दावली का भी 'जापु साहब' में प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार उसके स्तुति-पद सभी साधना-मार्गों से ग्रहण किए गए है, जिससे स्पष्ट है कि 'जापु साहब' के अनुसार वह ब्रह्म सभी धर्मों, मतों, पंथों, सम्प्रदायों, देशों, जातियों का है। किसी एक धर्म, जाति या वर्ग का नहीं। किन्तु, साथ ही 'जापु साहब' में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि वह ब्रह्म इन सभी धर्मों-सम्प्रदायों से परे है। वह धर्मातीत है, वह 'अधरमे' है, वह अभेखी है। वह तो बस कुकरमं प्रणासी (कुकर्मों का नाश करने वाला) और 'सुधरमं विभूते' है।

गुरु गोबिन्दसिंह ने ब्रह्म की स्तुति करते समय ब्रह्म की विभूतियों, लक्षणों, गुणों की सूचक शब्दावली विविध धर्मों अथवा मतों की अवश्य ली, किन्तु उनका प्रभु शैवों, वैष्णवों, ज्ञानमार्गियों, कर्म-काण्डियों, योगियों, मुसलमानों में से किसी एक का नहीं है, बल्कि सब का है। उसे किसी भी नाम, किसी भी लक्षण, किसी भी अभिधान, किसी भी गुण, किसी भी शब्द से स्मरण कर लिया जाए। वैष्णवों की मान्यतानुसार न वह स्वर्ग में है, न इस्लामी मान्यतानुसार सातवें आसमान पर रहता है। उसका कोई लोक नहीं है, वह 'अधामे' है। लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती जैसी कोई स्त्री भी उसकी नहीं है—वह 'निरबामें' है। उसका कोई धर्म अथवा मज़हब भी नहीं है—वह 'अमजबे' है, वह 'अभवने' है—अधामे निरवामे अधरमे।

युग-चेतना के अनुरूप गुरु गोबिन्दसिंह ने 'जापु साहब' में अकाल पुरुष के भैरव, तेजस्वी एवं शक्ति सम्पन्न रूप का निरूपण ओजस्वी भाषा में किया है। उनका ब्रह्म युग-चेतना से सम्बद्ध विभूतियों का स्वामी है। वह अधर्म और अन्याय का नाश करने के लिए शस्त्र धारण करता है, इसीलिए कवि उनकी स्तुति अस्त्र-शस्त्र धारणकर्त्ता एवं युद्ध-जयी शब्दों में इस प्रकार करता है—

नमो ससत्र पाणे। नमो असत्र पाणे।
नमसतं अजीतै। नमसतं अभीते।

'जापु साहब' के अनुसार वह 'अमितोज' है, नित नारायण 'क्रूर करमे' है। दुष्टों के विनाश के लिए वह रोष भी करता है, इसीलिए 'नमो रोख रोखे' से उसकी वंदना की गई है। वह युद्ध में दुष्टों के अहंकार को नष्ट करने वाला है और उन पर विजय प्राप्त करता है। ब्रह्म के इस 'क्रूरकरमी' शूरवीर रूप की स्तुति 'जापु साहब' में इस प्रकार ओजस्वी भाषा में की गई है—

गरब गंजन सरब भंजन, नमो जुद्ध-जुद्धे।
गरब गंजन दुसट भंजन। मुकति दाइक काम।

गुरु गोबिन्दसिंह मनुष्य-मात्र को समान मानते थे और वर्ण-वर्ग विषमता एवं जाति-पाति के विरोधी थे। इसी प्रवृत्ति का बोध कराने के लिए 'जापु साहब' में भी परमात्मा के स्वरूप-वर्णन में उसे जाति-पाति रहित बताया गया है। उसकी न कोई जाति है न पाँति—

चक्र चिह्न अरु वरण जाति पाति नहिन जिह।

न जातै । न पातै ।

इस प्रकार 'जापु साहब' का प्रत्येक शब्द ब्रह्म के स्वरूप का परिचायक है, एक अनुभव है, एक चेतना है, एक कथा हैं, एक दर्शन है । गुरु गोबिन्दसिंह ने 'जापु साहब' में ब्रह्म के लिए 'अलख', 'अरूप' आदि संस्कृत के तत्सम तथा 'पोख', 'असभ' आदि तद्भव शब्दों के अतिरिक्त फारसी के शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है । संस्कृत एवं फारसी के शब्दों के साथ हिन्दी की विभक्तियों का भी प्रयोग हुआ है । कई स्थानों पर हिन्दी और फारसी की शब्दावली का संयुक्त रूप से प्रयोग किया गया है, जैसे 'समसतुल निवासी', 'नमो साह', 'नमो भूप भूपे ।' फारसी के शब्दों पर संस्कृत के अनुस्वार अथवा विभक्ति लगाने का विलक्षण प्रयोग 'जापु साहब' में द्रष्टव्य है । कुछ उदाहरण देखिए—

नमसते अमजबे/नमसते अजबे/मुदामै सलामै/फहीमै/बिआवै/रहीमे/करीमे ।

वस्तुतः, ब्रह्म की अवधारणा के सन्दर्भ में 'जापु साहब' में भाषा सम्बन्धी कुछ नये प्रयोग देखने को मिलते हैं । शब्द किसी भी भाषा का हो, संस्कृत का तत्सम शब्द हो या तदभव, हिन्दी का हो या पंजाबी का, अरबी का हो या फारसी का, स्थानीय बोली का हो या ग्राम्य, गुरुजी ने अ, आ, निर, अन आदि उपसर्ग; सु, सरब, भि आदि विशेषण तथा 'ऐ' आदि विभक्तियों का प्रयोग सभी भाषाओं के शब्दों के साथ स्वतन्त्रता से किया हैं । जैसे—

अथापे । अझंझ (झगड़े से रहित) । अनझंझ । अनरंज । अनटूट । अनठट । असूझ । असरगे । निरबूझ/निलंभ । निरनाथे । निरसंगी । निरसाके । निरसीक । त्रिमानं । त्रिभंगी (तीनों भवनों के नाशक) ।

यहाँ समानार्थक दोहरे शब्दों द्वारा भी 'ब्रह्म' के स्वरूप का चिंतन किया गया है जिनके उच्चारण से भक्ति के मनोवेगों के अनुरूप संगीतात्मक ध्वनि एवं लय की सृष्टि करने में सहायता मिलती है और भावों की प्रेषणीयता अधिक प्रभावपूर्ण हो जाती है । इसी प्रकार के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

अक्रितक्रित हैं । अम्रिताअम्रित हैं ।
अम्रताम्रित हैं । करुणाक्रित हैं ।
अक्रिताक्रित हैं । अम्रिताम्रित हैं ।
अजबाक्रित हैं । अम्रिताअम्रित हैं ।

एक-से शब्दों का एक ही अथवा दो-तीन छन्दों में इस तरह का प्रयोग 'जापु साहब' की निजी विशेषता है । परिनिष्ठित एवं सहज शैली में भी ब्रह्म की विराटता की स्तुति के कुछ पद द्रष्टव्य हैं—

जगतेस्वर हैं । परमेश्वर हैं ।
करुणाकर हैं । विस्वंभर हैं ।
सरवेस्वर हैं । जगतेस्वर हैं ।

आत्मा का स्वरूप 'मानववाद'

'आदिग्रंथ' में आत्मा को 'भगवद्गीता' की भाँति सत्, चित् आनन्द स्वरूपा एवं अद्वैतवादियों की भाँति आत्मा और परमात्मा को अभिन्न माना गया है। आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए वहाँ जल-तरंग तथा कनक-कुण्डल आदि की उपमा दी गई है। यथा—

जल ते उठहि अनिक तरंगा। कनिक भूखन कीने बहु रंगा।
बीज बीज देखिउ बहु परकार। फाके पाके ते एकंकारा।
(सूही महलाँ—५)

गुरु गोबिन्दसिंह भी आत्मा को परमात्मा का हीं रूप मानते हैं। उन्होंने भी इनके सम्बन्ध को नदी-तरंग, अग्नि-स्फुलिंग, धूलि-कन आदि के माध्यम से प्रतिपादित किया हैं। यथा—

जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे,
निआरे निआरे हुइ कै फेरि आग में मिलिहिंगे।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है।
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहगे।
जैसे एक नद ते तरंग कोट उपजत हैं।
पान के तरंग सबै पान ही कहाहिंगे।
तैसे विस्वरूप ते अभूत भूत प्रकट हुई।
ताहि ते उपज सबै ताहि मैं समाहिंगे। (अ० उस्तुति : ३७)

उसी का सारा प्रकाश हैं। यह प्रकाश उसी में से निकलता है, उसी में समा जाता हैं। जैसे एक अग्नि से करोड़ों अग्नि-स्फुलिंग उत्पन्न होकर अलग-अलग दीख पड़ते हैं, परन्तु उसी में मिलकर एक रूप हो जाते हैं, जैसे एक नद से करोड़ों तरंगें उत्पन्न होती हैं, मगर जल ही कहलाती हैं, उसी प्रकार एक ब्रह्म से अनेक जीव प्रकट होते हैं और उसी में समा जाते हैं। इसीलिए गुरु जी ने प्राणी मात्र की एकता और अभिन्नता में विश्वास प्रकट किया है। उनका कहना हैं कि सभी मनुष्यों के एक ही से कान, नाक, आँख, शरीर हैं, सभी एक-से तत्त्वों से बने हैं, फिर भेद-भाव कैसा। सभी मानव एक हैं—भेद भ्रम हैं।[४७] हिन्दू, तुर्क, गंधर्व, यक्ष सभी देशों के प्राणी एक ही हैं। वे केवल बाह्य वेश-भूषा से भिन्न प्रतीत होते हैं।[४८] एक ही वह बनावट है, उसी का वह सारा प्रसार है। एक का ही स्वरूप सब में व्याप्त हैं।[४९]

---

४७. अकाल उस्तुति : ८६
४८. वही।
४९. वही : ८५

इसी आधार को ग्रहण करते हुए गुरु गोबिन्दसिंह ने जाति-पाँति, वर्ग-भेद आदि के भेद-भाव को 'भ्रम-जाल' बताते हुए उसका खंडन किया है और हिन्दू-मुसलमान, योगी, संन्यासी, क्षत्रिय-ब्राह्मण, राव-रंक सभी को ब्रह्म का रूप मानते हुए मानववादी भावना में विश्वास प्रकट किया है। यथा—

कहूँ हुइ कै हिन्दुआ गाइत्री को गुपत जपिओ।
कहूँ हुइ कै तुरका पुकारे बाँग देत हो।१२।
कहूँ धरमधारी कहूँ सरब ठौर गामी,
कहूँ जती कहूँ कामी कहूँ देत, कहूँ लेत हो।१४।
कहूँ जटाधारी कहूँ कंठी धरे ब्रह्मचारी।
कहूँ जोग साधी कहूँ साधना करत हो।१५।

जब ब्रह्म की कोई जाति-पाँति, रूप-रंग नही है तो उसी के अंशरूप जीव में इस प्रकार की विभेदता को मानना भ्रम ही है। पूर्ववर्ती गुरुओं ने इसी मानववाद का प्रतिपादन किया है और गुरु गोबिन्दसिंह ने भी उन्हीं का अनुकरण किया है। उनका विश्वास है कि बिना किसी जाति-पाँति एवं भेद-भाव के सच्चे हृदय से भक्ति करने पर सभी उसे प्राप्त कर सकते है।

पुनर्जन्म एवं आवागमन

'दशम गुरु' ने पुनर्जन्म और आवागमन में भी विश्वास प्रकट किया है। 'बचित्र नाटक' में उन्होंने अपने पूर्व जन्म की कथा का वर्णन किया ही है। 'अकाल उस्तुति' में उन्होंने अनेक बार इस बात का उल्लेख किया है कि जीव जब तक भक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता, वह काल के फंदे में फँसा रहता है। 'सांसारिक जीव' विषय-वासनाओं में लिप्त रहते हैं और अनेक प्रकार के बाह्याचार, जप, तप करने पर भी 'मुक्ति' प्राप्त नहीं कर पाते। 'मुक्ति' का तो एक हीं साधन है—'नाम-स्मरण'। उनका कथन है कि यदि तुम ब्रह्म को पाना चाहते हो, तो उसमें लीन हो जाओ।[५०] मानव, इन्द्र, राजे, कुबेर, बेहद दान-स्थान करने वाले भी यम के फंदे में फँसे रहेंगे, परन्तु 'श्रीपति' के चरण स्पर्श से वे फिर देह धारण नहीं करेंगे। उसके आश्रय में गये बिना मुक्ति हो ही नहीं सकती।[५१]

सृष्टि रचना

गुरुमत के अनुसार वह ब्रह्म स्वयं ही इस सृष्टि का कर्त्ता और कारण है। यथा—

---

५०. अकाल उस्तुति : २५५
५१. वही : २८

करण कारण प्रभु एक है, दूसर नाहीं कोइ।
(आदि ग्रंथ, गउडी सुखमनी, महलाँ ५, पृ० २७६)
आ कारण करता करै स्रिसटि देखे आपि उपाई।
(आदिग्रंथ, सिरीराग, महलाँ ३/१/२०/६५०/३०)

'अकाल उस्तुति' में गुरु गोबिन्दसिंह ने भी ब्रह्म को ही सृष्टि का कर्त्ता और सहंरता कहा है। सारी सृष्टि उसी से उत्पन्न होकर उसी में समा जाती है। जल-थल, आकाश-पाताल, कीट-कुंजर सभी में वही व्याप्त है। सृष्टि के कण-कण में वही समाया है। उसी विश्वरूप से ये सब अभूत-भूत प्रकट होते हैं और उसी में समा जाते हैं। उसी के सब बनाए हुए हैं, और वही इन्हें नष्ट करता है। चौदहों भवनों में उसी ने अपना खेल रचा है और फिर वह अपने में ही उसे समेट लेता है। यथा—

तैसे विस्वरूप ते अभूत भूत प्रगट होई ।
ताही ते उपज सबै ताही मै समाहिगे ।१७/८७।
कोटि इन्द्र उपइन्द्र बनाए । ब्रह्मा रुद्र उपाए खपाए ।
लोक चदुरदस खेल रचायो। बहुर आप ही बीच मिलायो। ६।

गुरुमत में सृष्टि की रचना ब्रह्म के 'हुकम' से मानी गई है, उसमें ईश्वर, माया या किसी अन्य शक्ति का कोई हाथ नहीं होता।

माया

सन्तों ने अद्वैतवादियों की भाँति आत्मा और परमात्मा के मिलन में माया को ही मुख्य बाधा माना है। माया के ही कारण जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर सांसारिक भोग-विलास में डूबा रहता है। माया को उन्होंने नटनी कहा है, जो सारे संसार को भ्रम में डाले हुए है और माया के मुख्य साधन—कंचन-कामिनी के त्यागने का आग्रह किया है। गुरु गोबिन्दसिंह ने इतने विस्तार से तो माया के स्वरूप पर प्रकाश नहीं डाला, तथापि सांसारिक सुख, धन, वैभव आदि की नश्वरता का प्रतिपादन करते हुए उनके मोह में न फँसने का प्रतिपादन उन्होंने भी किया है। 'अकाल उस्तुति' में उन्होंने यह भी कहा है कि ब्रह्म स्वयं मायारहित निरंजन है और वही मायापति है। माया उसके चरणों की दासी है।

साधना पद्धति

भारतीय धर्म-साधना का विकास मुख्यत: ज्ञान-प्रधान, कर्म-प्रधान तथा भाव-प्रधान इन तीन पद्धतियों पर हुआ। वैदिक युग की साधना कर्मप्रधान थी, उप-निषदों में ज्ञान को महत्त्व दिया गया, बौद्धों ने भी वैदिक कर्म कांड और रीतियों का खंडन करके सम्यक् ज्ञान का प्रतिपादन किया। आगे चलकर भावनाप्रधान

उपासना-पद्धति का अधिक प्रचार हुआ। विशेष रूप से 'पौराणिक युग' की अवतारवादी भावना से बल पाकर उसे अधिक प्रश्रय मिला। सातवीं-आठवीं शती में बौद्ध-सिद्धों की अनेक गुह्य-साधनाओं का प्रचलन हुआ और नाथों ने योग-साधना को अधिक महत्त्व दिया। वस्तुतः, भारत का मध्य-कालीन इतिहास सिद्धों, नाथों, शैवों, शाक्तों, वैष्णवों, वेदान्तियों, ज्ञानमार्गियों, कर्म-कांडियों, मूर्तिपूजकों आदि के संघर्ष का युग था और उनमें से अधिकांश में—प्रायः सभी में बाह्याचारों का ज़ोर था और धर्म ने पाखंडों, आडम्बरों का रूप धारण कर लिया था। संतों ने इन सभी प्रकार के मिथ्याचारों और विकृत पद्धतियों का खंडन किया और सरल भक्ति-मार्ग का प्रतिपादन किया, जिसके लिए उन्होंने ब्रह्मज्ञान, शुद्ध-आचरण, शुद्ध-कर्म के महत्त्व को भी स्वीकार किया। सिक्खमत के प्रवर्त्तक गुरु नानक ने भी भक्ति को ही अधिक महत्त्व दिया और ब्रह्मज्ञान अथवा शुद्ध कर्मों को उसके अंग रूप में स्वीकार किया। गुरु गोबिन्दसिंह उसी परम्परा के साधक और संत हैं। अन्य गुरुओं की भाँति उन्होंने भी ज्ञान, कर्म, योग आदि के महत्त्व को स्वीकार तो किया है, परन्तु उन्हें भक्ति की धारा से सिंचित करते हुए मुख्य भक्ति को ही माना हैं। जहाँ ज्ञान-मार्गियों के लिए ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि के स्वरूप और सम्बन्ध का चिंतन ही ध्येय है, मुख्य साधना है, वहाँ भक्ति-मार्गियों के लिए यह चिंतन उनकी भक्ति को दृढ़ करने का साधन मात्र है।

ज्ञान के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए गुरु गोबिन्दसिंह कहते हैं कि जो लोग कामना (विषय वासना) के अधीन होकर नाच रहे हैं, वे ब्रह्म-ज्ञान के बिना ब्रह्म लोक को कैसे प्राप्त कर सकते हैं?[५२] कोई आकाश में उड़ते हैं तो कोई जल में रहते हैं, मगर ब्रह्म ज्ञान के बिना वे धधकती ज्वाला में जलकर ही मर जाते हैं।[५३] ज्ञान के बिना काल फाँस में फँसे जन्म-मरण की चक्की में पिसते रहते हैं।[५४] जो लोग काम के वशीभूत हैं वे ज्ञान बिना भवसागर को कैसे पार कर सकते हैं।[५५]

इस प्रकार के आत्म-चिंतन से जीव अपने वास्तविक स्वरूप का बोध प्राप्त करता है और विषय-वासनाओं को त्याग कर भगवद्भक्ति में लीन होकर उसे

---

५२. कामना अधीन परीओ नाचत है नाचन सो।
गिआन के बिहीन कैसे ब्रह्म लोक पावई। (अ० उस्तुति : ८२)

५३. गैन म उडत केते जल मैं रहत केते।
गिआन के बिहीन जक जरेइ मरत है। (वही, ८९)

५४. गिआन के बिहीन काल फाँस के अधीन सदा,
जुगन की चउकरी फिराए ई फिरत है।७६।

५५. अँगना अधीन काम क्रोध में प्रवीन एक,
गिआन के बिहीन छीन कैसे के तरत है।७१।

प्राप्त करने में सफल होता है; क्योंकि भावना विहीन होकर उस जगदीश को प्राप्त नहीं किया जा सकता।[५६]

गुरुओं ने अपनी साधना में 'नाम स्मरण' को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उनके अनुसार नाम से ही इस सृष्टि की रचना हुई है और 'नाम' में ही सब समा जाते हैं।[५७] उनके अनुसार 'नाम' ही जन, तप, संयम का सार हैं। लाखों करोड़ों कर्म और तपस्याएँ भी 'नाम' के सदृश नहीं है। 'नाम' के बिना सारे कर्म, तप, जप व्यर्थ हैं।

हरि नामें तुलि ने पूजइ जे लख कोटी करम कमाइ।
(गुरु ग्रंथ साहब, मारू सोलहे महलाँ २:१४, पृ० १०३)

गुरु गोबिन्दसिंह ने भी नाम की महिमा का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि 'नाम स्मरण' से पुण्यों का प्रचंड तेज बढ़ता है और पापों का झुण्ड जल जाता है।[५८] परमात्मा के प्रेम के बिना वह कदापि प्राप्त नहीं हो सकता।[५९] सभी धर्मों कर्मों को त्याग कर 'नाम जाप' करना चाहिए, जिससे भवसागर को पार किया जा सकता है और फिर देह धारण नहीं करनी पड़ती :

जिह फोकट धरम सबै तजि हैं। इक चित्त क्रिपानिधि को जप है
तेउ या भवसागर को तर है। भव भूल न देह पुनह धर है।१५९।

मध्ययुग के विभिन्न सम्प्रदायों में थोथे ज्ञान, पाखण्डपूर्ण यौगिक क्रियाओं तथा मिथ्याडम्बर युक्त कर्मों का प्रचार हो रहा था और सामान्य जनता धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूलकर इन पाखंडों और आडम्बरों में फँसी हुई थी। कबीर तथा नानक ने इन पाखंडों का कड़ा विरोध किया था, मगर गुरु गोबिन्दसिंह के साहित्य का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उस समय भी इस प्रकार के बाह्य-कर्मों एवं अंधविश्वासों का बाहुल्य था, तभी तो उन्हें इनका खंडन करने की आवश्यकता पड़ी। उनका कथन है कि कर्मकाण्डी, सिद्ध, योगी संन्यासी, वेद-पाठी, शैव, जंत्र-मन्त्रों की सिद्धि में फँसे हुए, महायानी, मंत्रयानी, नाथ, उदासी, तुर्क, ब्राह्मण, यती, पुराण अथवा कुरानपाठी, चंद्रमा, सूर्य अथवा अग्नि पूजक, फल-फूल भक्षी, पवनाहारी, जपी, तपी, तीर्थ-व्रत करने वाले सभी ऐसे साधक हैं, जो मिथ्याचारों, बाह्याडम्बरों, पाखंडपूर्ण कर्मों में फँसे हुए हैं। ये सभी अपना पेट भरने और लोगों को धोखा देने के धंधे हैं[६०] अन्यथा इनमें से कोई भी उस 'वाहि-

---

५६. भावना बिहीन कैसे पावै जगदीस को।७९।
५७. जपजी पौडी—१९, गउडी पूर्वी महलाँ ३, पृ० १४६
५८. अकाल उस्तुति : २७
५९. वही : २४५
६०. चौ० अ० ४२५

गुरु' को प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि इनमें से कोई भी 'वाहिगुरु' के प्रति प्रेम से युक्त नहीं है। उस करतार के प्रति श्रद्धा और प्रीति के बिना सभी एक रत्ती के समान हैं।[६१] ये सभी अभिनेता और पाखंडी हैं।[६२]

इन पाखंडियों और ढोंगियों पर तीखे व्यंग्य कसते हुए वे लिखते हैं कि बगुलों की भाँति आँखें मूंदकर ध्यान लगाने से अथवा वन में रहने से कोई लाभ नहीं। पशुओं अथवा विषयी लोगों में बैठकर ऐसे ही जन्म गँवा दिया। प्रभु को तो वही पाता है जो उसे प्रेम करता है।[६३] सजदे करने, मूर्ति पूजने, कंठी पहनने, समाधि लगाने, कब्र पूजने आदि का विरोध करते हुए वे कहते हैं कि कोई पत्थर सिर पर रख रहा है, किसी ने शिवलिंग को गले में लटका रखा है, कोई हरि को पूर्व दिशा में देखता है, कोई पश्चिम में सीस नवाता है, कोई बुतों को पूजता है, तो कोई कब्रों को पूजने के लिए भागता है। परन्तु ये सभी क्रूर क्रियाओं में उलझे हुए हैं, ये निरंकार का भेद नहीं पा सकते।[६४]

जप, तप, व्रत, तीर्थ, यज्ञ, योग, वेद, पुराण, कुरान पाठ आदि का खंडन करते हुए वे कहते हैं—

कई सदा भुजाएँ ऊपर उठाए खड़े रहते हैं, कई उलटे होकर अग्नि में लटकते हैं; कई वेद-शास्त्र, श्रुति-स्मृति कोक-कुरान-पुराण पढ़ते हैं, कई तीर्थ, व्रत, होम-यज्ञ, दान-स्नान करते हैं, कई शाक, पुष्प-पत्र खाकर रहते हैं तो कई पवनाहारी हैं, कई देशाटन करते हैं और अनेक भाषाएँ रटते हैं, मगर इनमें से कोई भी उसका (ब्रह्म का) पार नहीं पा सकता; वह प्रत्यक्ष नहीं होता।[६५] अश्वमेध, ब्रह्म-विद्या, धूप-दीप-अर्घ्यदान, पितृ कर्म, जल-निवास, अग्नि-ताप, उल्टे लटक कर जाप करने अथवा अन्य करोड़ों यत्न करने पर भी उसका अंत नहीं पा सकते। उसके दर्शन नहीं होते।[६६] शेख अल्लाह चिल्लाते हैं[६७] और मुल्ला पाँच बार बाँग

---

६१. अकाल उस्तुति २१, २५२

६२. वही, ८२

६३. वही, २९

६४. काहू लै पाहन पूज धरियो सिर काहू लै लिंगु गरे लटकाइओ।
काहू लखिओ हरि अवाची दिसा महि काहू पछाह को सीस निवाइओ।।
कोऊ बुतान को पूजत है पसु कोऊ भ्रितान को पूजन धाइओ।
क्रूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जगु स्री भगवान को भेद न पाइओ।
(वही, ३०)

६५. चौ० अ० १२१-१३६

६६. वही, १४०

६७. वही, ४१-५०

देता है, मगर सब बेकार। बाँग देने से यदि वह मिले तो गदहा और कुंजर कितनी ही बार पुकारता है, उन्हें क्यों नहीं मिल जाता ?

पंच बार गीदर पुकार परे शीत काल,
कुंजर औ गदहा अनेकदा पुकारही।८३

इन पाखंडियों पर अपने क्षोभ को और तीखा करते हुए वे कहते हैं कि यदि दुखों के सहने से ही वह मिलता है, तो जख्मी व्यक्ति अनेक कष्ट सहन करता है; यदि जाप करने से ही न जपने योग्य स्वामी मिल सके तो पूतना (पक्षी) सदा ही 'तुही, तुही' करती है। आकाश में उड़ने से यदि नारायण मिले तो अनल पक्षी सदा ही आकाश में फिरता है, आग में जलने से यदि मुक्ति प्राप्त हो तो पति के साथ जलने वाली विधवा को मुक्ति मिलनी चाहिए, पाताल में रहने से परमात्मा मिले तो साँप पाताल में ही रहता है। मगर जिस प्रकार जख्मी, पूतना, अनल, सर्प आदि को परमात्मा नहीं मिल सकता, उसी प्रकार प्रेम के बिना ऐसी साधना करने वाले पाखंडियों को भी परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते।[६८] इसी प्रकार गंदगी खाने से, भस्म रमाने से, श्मशान में रहने से, उदासी होकर फिरने से, मौन धारण करने से, वीर्य रोकने से, नंगे पाँव घूमने से भी परमात्मा नहीं मिलता, क्योंकि सुअर हमेशा गंदगी खाता फिरता है, हाथी और गदहा भस्म लगाते रहते हैं, बिज्जू सदा श्मशान में ही रहता है, मृग उदासियों की भाँति वन में घूमते रहते हैं, वृक्ष सदा मौन धारण किए खड़े रहते हैं, हिजड़े वीर्य को रोके रखते हैं, वानरों के झुंड नंगे पाँव घूमते रहते हैं, मगर इनमें से किसी को भी परमात्मा नहीं मिल सकता। जो लोग ज्ञान से हीन, स्त्री के अधीन और काम के वशीभूत हैं, वे भला मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकते हैं।[६९]

भूत वनचारी हैं, बच्चे दुग्धधारी होते हैं, सर्प पवनाहारी होते हैं, घास-फूंस खाने वालों को बैल कहा जाता है, आकाश में पक्षी उड़ते हैं, बगुला और बिल्ला आँखें मींचकर बैठते हैं। इनमें से कोई भी सच्चा साधक नहीं है।

गुरु गोविन्दसिंह का कहना है कि ऐसे कितने बड़े-बड़े ज्ञानी हुए जो इन बाह्याचारों के मिथ्यात्व और निरर्थकता को जानते तो थे, मगर इनके विरोध में किसी ने कहा कुछ नहीं। परन्तु वे ऊँचे स्वर में पुकार कर कहते हैं कि ऐसे प्रपचों में मन को भूलकर भी फँसाना नहीं चाहिए। क्योंकि जो फलों को खाकर जीते हैं, उन्हें वानर ही कहना चाहिए, जो छिपकर फिरने को बड़ी भारी साधना समझते हैं, उन्हें भूत समझना चाहिए, जो पानी पर तैरने में ही बड़ाई समझते हैं, उन्हें जल जुलाहा

६८. चौ० अ० ८४
६९. वही, ७१

कहना चाहिए, और आग को खाने वाले को चकोर कहना चाहिए।[७०] आक और फल को खाने वाला बकरे जैसा और कोई नहीं है, भेड़ सदा अपने सिर को वृक्षों से रगड़ती फिरती है और जोंक सदा ही मिट्टी खाकर जीती है।[७१] भला इस प्रकार की व्यर्थ की साधनाओं से कभी उस अनंत ब्रह्म को पाया जा सकता है। ये सब तो स्वाँग हैं, पेट भरने के साधन हैं, लोगों को धोखे में डालने के प्रपंच हैं। सभी फोकट धर्म हैं, इनमें भूलकर भी फँसना नहीं चाहिए। मूर्ख लोग ही ऐसी रूढ़ियों को पीटते हैं। इन सभी बाह्य-कर्मों को त्यागकर उस परमात्मा को भजना चाहिए जो सबका रक्षक है, सभी की पालना करता है। ज्ञान के बिना जीव कालचक्र में फँसा रहता है और भक्ति के बिना जगदीश को प्राप्त नहीं किया जा सकता। भक्ति के बिना सभी कर्म, यज्ञ, होम, योग, पुराण, कुरान, वेद, कतेब, तीर्थ, व्रत बेकार हैं।[७२]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि दशमगुरु ने बाह्य कर्मों, मिथ्याचारों, पाखंडपूर्ण योग, जप, तप आदि का कड़ा विरोध किया है, और इनपर बड़े ही तीखे और कटु व्यंग्य किये हैं। पाखंडों, आडम्बरों एवं ढोंगों के विरुद्ध उनकी वाणी कबीर से कम प्रखर, कम तीखी और कम कटु नहीं थी। गुरुजी ने ऐसे पाखंडी साधकों को गदहे, सुअर, बंदर, बकरे, बिल्ले, बगुले, बिज्जू, भूत, मोर, वृक्ष, पक्षी, जल जुलाहे, पूतना, जोंक आदि के समान कहकर उन्हें बुरी तरह से फटकारा है। उन्होंने देहरी मसीत को पूजने वाले, राम और रहीम को लेकरझगड़ने वाले, पुराण और कुरान की कथाओं में उलझे हुए, उलटे लटक कर या भूखे रह कर तप करने वाले और बाँग देकर खुदा को पुकारने वाले बहुरूपियों और ढोंगियों की भर्त्सना करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उन्होंने खूब कसकर उनकी खबर ली है। उन पर बड़ी ही तीखी और चुभती चोटें की हैं। धर्म-साधना के परिष्कार, उन्नयन और सुधार का यह अत्यन्त मंगलकारी अभियान था। हमारे सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की आज भी यह विडम्बना है कि जो लोग ऐसी बुराइयों, अन्ध-विश्वासों, रूढ़ियों, चारित्रिक हीनता आदि के विरुद्ध बढ़-चढ़ कर 'सरमन' देते फिरते हैं, वे स्वयं बहुधा उनके शिकार हैं। गुरु गोबिन्दसिंह के जीवन से हम आज भी यह शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं कि उन्होंने जो उपदेश दिये, स्वयं उन पर आचरण भी किया। वे साधक पहले थे, उपदेशक बाद में।

---

७०. चौ० अ० ८०

७१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, पृ० ७६

७२. अकाल उस्तुति, ७५, ७६, ७९, ८२

जगत, ऐश्वर्य, अहंकार आदि

सिक्ख गुरुओं ने जगत् को मिथ्या, अस्थिर, क्षणभंगुर, एवं नश्वर कहा है। उनके अनुसार यह बुदबुदे, मृग-तृष्णा, धुएँ के धबलहर की भाँति असत्य और भ्रम-पूर्ण हैं।[७३] जगत असत्य है, तो इसके सभी सम्बन्ध और आकर्षण भी नाशवान और असत्य है। सांसारिक जीवन जगत के वैभव, श्री और ऐश्वर्य आदि आकर्षणों और प्रलोभनों से मोहित होकर विषय-वासना में इतना लीन हो जाता है कि अपने वास्तविक स्वरूप को सर्वथा भूल जाता है। परमात्मा को वह दत्तचित्त होकर कभी भी स्मरण नहीं कर सकता।

सांसारिक सुख और वैभव 'अहंकार' को जन्म देते हैं और अहंकारी मनुष्य कभी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। यह 'अहंकार' (हउमै) मनुष्य को विनाश की ओर ले जाता है। गुरु गोबिन्दसिंह ने भी कहा है कि 'देव और दैत्य इसी अहंकार के कारण विनष्ट हुए।'[७४] यह 'अहंकार' शरीर की सुन्दरता, धन, वैभव एवं ऐश्वर्य की वृद्धि, बल-विक्रम, विद्या, जाति एवं परिवार आदि की बड़ाई के कारण हो सकता है। 'गुरुमत' में ऐसे पाँच प्रकार के 'हउमै' का निरूपण किया गया है। यही 'हउमै' मनुष्य को परमात्मा से विरत करने वाले मुख्य कारण है। गुरुओं के अनुसार ब्रह्म-नाम, गुरु-कृपा, साधु-संगति आदि के द्वारा 'हउमै' का विनाश किया जा सकता है।[७५] 'हउमै' के विनाश से ही भक्ति और मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

गुरु गोबिन्दसिंह ने भी सांसारिक धन, वैभव, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, विक्रम आदि से उत्पन्न 'अहंकार' को मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु कहा है।[७६] इसीलिए उन्होंने इन पदार्थों की नश्वरता, असत्यता, क्षण-भंगुरता आदि का प्रतिपादन करते हुए मनुष्य को उनके आकर्षणों के जाल से बचे रहने को सावधान किया है। इस सम्बन्ध में उनका कथन है कि "अनेक मस्त हाथियों, पवन से भी तीव्रगामी अश्वों और अनेक बलशाली राजाओं के भी स्वामी हुए तो क्या, अन्त में सभी को नंगे पाँव जाना पड़ता है।"[७७] "जो देश-देशान्तर को जीतते फिरे, जिनके यहाँ नित्य ढोल, मृदंग, पखावज और धौंसे बजते रहें, जिनके द्वार पर सहस्त्रों हाथी, घोड़े झूलते रहे, तीनों कालों में ऐसे कितने ही राजा हुए, मगर अंत में सभी

---

७३. गुरुग्रंथ दर्शन, पृ० ११३

७४. अकाल उस्तुति २४५, ११७

७५. गुरुग्रन्थ दर्शन, पृ० १२०-१४३, डॉ० जयराम मिश्र।

७६. अकाल उस्तुति, २४५

७७, वही २२२

(मायापति परमात्मा के स्मरण बिना) यमपुरी को चले गये।"[७८] श्रीपति भगवान की कृपा बिना अत्यन्त पराक्रमी शत्रुओं का मर्दन करने वाले अहंकारी और साहसी विश्वजयी वीर, रणभूमि में विचलित न होने वाले रणधीर, मस्त हाथियों को मर्दन करने वाले योद्धा, बड़े-बड़े सेनापति, राजे-महाराजे, सामंत, महादानी, प्रबल एवं वैभवशाली शासक, योगी, यती, ब्रह्मचारी, बड़े-बड़े राजाओं के अहंकार को मिटा देने वाले मानधाता जैसे राजा, दिलीप जैसे चक्रवर्ती, दारा जैसे दिल्ली पति, दुर्योधन जैसे अहंकारी इस दुनिया में भोग-भोगकर अंत में इसी में मिल गये। कुछ उदाहरण देखिए :—

सुद्ध सिपाह दुरंत दुबाह सु साजि सनाह दुरजान दलैंगे।
भारी गुमान भरे मन मैं कर परबत पंख हलै न हलैंगे।
तोर अरीर मरोर मवासन माते मतंगन मान मलैंगे।
श्रीपति श्री भगवान क्रिपा बिनु तिआग जहानु निदान चलैंगे॥२५॥

जोगी जती ब्रह्मचारी बड़े-बड़े छत्रधारी।
छत्र ही की छाइया कई कोस लौं चलतु हैं।
बड़े-बड़े राजन के दावति फिरति देश,
बड़े-बड़े राजन के द्रप को दलतु हैं।
मान से महीप ओ दिलीप कैसे छत्रधारी।
बड़ो अभिमान भुज दंड को करतु हैं।
दारा से दिलीसर दुजोधन से मानधारी,
भोग भोग भूंम अंत भूम मैं मिलत है।।७८॥

इस प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह ने स्पष्ट रूप से सांसारिक वैभव और ऐश्वर्य से मिलने वाले सुखों को क्षणिक एवं नाशवान बताकर उनके मोह-त्याग पर बल दिया है। क्योंकि वे समझते थे कि धन-वैभव, बल-विक्रम से युक्त जितमे भी जीव हैं वे भगवद्-भक्ति के बिना खप कर यहीं मिट जायेंगे। इन सभी सुखों की सार्थकता भगवद्-भजन से ही है, उसके बिना सभी कुछ निरर्थक है। इसलिए जीव को इनसे विरक्त होकर परमात्मा के स्मरण में मन लगाना चाहिए। परन्तु, इन आकर्षणों एवं सुखों से विरक्ति तभी संभव है, जब ममुष्य ज्ञान का प्रकाश पा ले। स्पष्ट है, गुरु गोबिन्दसिंह ब्रह्म 'ज्ञान' के साथ-साथ 'विरक्ति' के महत्त्व को भी स्वीकार करते हैं, परन्तु मुख्य 'भक्ति' को ही मानते हैं। भक्ति की दृढ़ता और परिपक्वता के लिए इनकी बड़ी आवश्यकता है, ये उसके अंग हैं।

इस प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह ने ब्रह्म, जीव, जगत, सृष्टि के स्वरूप का निरूपण अन्य गुरुओं की परम्परा में, बड़ी गम्भीरता और विशदता से किया और

---

७८. वही, २३

साथ ही विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, मत-मतान्तरों के आडम्बरपूर्ण बाह्याचारों, पाखंडपूर्ण साधना-पद्धतियों का विरोध और खंडन एक 'धर्मवीर' के उत्साह से करते हुए सामान्य और सरल भक्ति मार्ग का महत्त्व स्थापित किया। उन्होंने बार-बार इसी तथ्य पर जोर दिया कि मन्दिर-मसीत, हिन्दू और मुसलमान, राम-रहीम, पुराण-कुरान, वेद-कतेब, एक ही हैं, सभी में उस ब्रह्म का प्रसार है, उसी का प्रकाश है। इसीलिए उन्होंने जाति-पाति, वर्ग-वैषम्य का विरोध करते हुए मानवीय एकता में विश्वास प्रकट किया और मानववादी भावना को प्रश्रय दिया।

दशम गुरु की वीर भावना

सिक्खमत मूलत: आध्यात्मिक आन्दोलन था, परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह को वीर आचरण अपनाना पड़ा, इसका उत्तरदायित्व उस युग की परिस्थितियों पर है। जिस समय गुरु गोबिन्दसिंह का प्रादुर्भाव हुआ, देश अत्यन्त दयनीय स्थिति से गुज़र रहा था। इस समय दिल्ली के शासन पर औरंगज़ेब सत्तारूढ़ था। उसकी धर्मान्धता, असहिष्णुता, आतंक और अत्याचार से हिन्दू-जनता त्रस्त और पद-दलित थी। निर्बल और असहाय बने भारतीयों को अपमान और अवमानना का जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था। इस शोषण और दमन के विरुद्ध दक्षिण में सिरजा शिवाजी के नेतृत्व में मराठों ने और पंजाब में गुरु गोबिन्दसिंह के नेतृत्व में सिक्खों ने एक शक्तिशाली विद्रोहात्मक स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का सूत्रपात किया था। गुरुगोबिन्दसिंह ने शाही फरमान की कोई चिन्ता न करते हुए अपना झण्डा लहराकर और धौंसे की धुंकार से स्वतन्त्रता और विद्रोह की घोषणा कर दी थी। उन दिनों कोई भी हिन्दू अपना झण्डा नहीं लहरा सकता था और न ही धौंसा बजा सकता था। शिवाजी का विरोध मुख्यत: राजनैतिक था, जबकि गुरु गोबिन्दसिंह सांस्कृतिक एवं राजनैतिक (सैनिक) दोनों स्तरों पर लड़ रहे थे। हिन्दू-धर्म की रक्षार्थ गुरु गोबिन्दसिंह के पिता श्री गुरु तेगबहादुर अपना बलिदान दे चुके थे। इसलिए विवश होकर गुरु गोबिन्दसिंह को 'सर्वलोह' का आश्रय लेना पड़ा और उन्होंने 'खालसा' पंथ की स्थापना की। स्वयं खड्ग धारण करके उन्होंने चण्डी-स्वरूपा भारत की गुप्त वीर-शक्ति का आह्वान किया। परिणाम-स्वरूप यवनों से उन्हें कई युद्ध करने पड़े जिनका वर्णन उन्होंने 'विचित्र नाटक' में किया है।

'दशम ग्रन्थ' युग-चेतना से अनुप्राणित एक प्राणवान ग्रन्थ है। इसमें अनेक रचनाएँ संकलित हैं। कुछ विद्वान तो सम्पूर्ण 'दशम ग्रन्थ' को ही गुरु गोबिंदसिंह की कृति मानते हैं, जबकि अधिकतर विद्वान् 'जापु', 'अकाल उस्तुति', 'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) आदि कुछ कृतियों को छोड़कर अन्य को उनके दरबारी

कवियों की रचना मानते हैं । परन्तु, यह अगर मान भी लिया जाए कि ये सभी रचनाएँ दशमगुरु कृत नहीं हैं तो भी यह मानना पड़ेगा कि इन सभी पर उनकी स्वीकृति की मुहर लगी हुई है। उन्होंने जिस प्राणवान् सांस्कृतिक चेतना, स्वातंत्र्य-भावना, राष्ट्रीय-स्वाभिमान एवं धर्म-रक्षा का भाव पंजाब के जन-जीवन में जागृत किया था, उससे सम्पूर्ण 'दशम ग्रन्थ' आन्दोलित है।

मोटे तौर पर 'दशम ग्रंथ' में संकलित रचनाओं को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) भक्ति-प्रधान एवं आध्यात्मिक विचारों से युक्त रचनाएँ—जापु, अकाल उस्तुति, ज्ञान-प्रबोध, श्री मुखवाक सवैये--आदि।

(ख) वीर-रसात्मक रचनाएँ—विचित्र नाटक (अपनी कथा), चौबीस अवतार कथाएँ, चण्डी-चरित्र उक्ति विलास, चण्डी-चरित्र द्वितीय, चण्डी दी वार (पंजाबी), शस्त्रनाम-माला, एवं ज़फरनामा (फारसी)

(ग) पख्यान-चरित्र—जिनमें नारी के प्रेम, शौर्य और प्रवंचना का विशद वर्णन करते हुए उसके चरित्र का उद्‌घाटन किया गया है।

दूसरे वर्ग की रचनाएँ वीर-रस प्रधान हैं, यद्यपि प्रथम वर्ग की रचनाओं में भी कवि की वीर-प्रवृत्ति का आभास मिलता है। 'अकाल उस्तुति' में ब्रह्म का उन्होंने 'सर्वलोह' के रूप में स्मरण किया है और उसके असुर संहारक, दुष्ट-विदारक रूप की भी वंदना की है। 'ज्ञान प्रबोध' में भी अश्वमेध-यज्ञ के प्रसंग में तथा जनमेजय के पुत्रों के युद्धों का ओजस्वी वर्णन किया गया है।[७९] इन युद्धों का कारण भी शासकों की विलासिता, अहंकार और प्रजा के प्रति विमुखता कहा गया है, जिसके द्वारा कवि ने अपने युग के अत्याचारी और अन्यायी शासकों के विनाश की आवश्यकता की ओर संकेत किया है। इन युद्धों के कारण पर प्रकाश डालते हुए कवि लिखता है कि मदमत्त दैत्यों के विनाश के लिए ही ये युद्ध हुए।[८०]

असुर-विनाश की यही भावना उनके सम्पूर्ण वीर काव्य में परिव्याप्त है। इसी प्रकार 'पख्यान-चरित्र' में भी अनेक स्थलों पर शौर्य-प्रदर्शन के साथ उत्साह की व्यंजना हुई है।

वस्तुतः, 'दशम ग्रंथ' की भक्ति-भावना बहुत पुष्ट है तथापि उसका मुख्य स्वर वीरता का है और उसका अधिक अंश युद्ध वर्णनों से परिपूर्ण है।

'दशम ग्रंथ' में दो प्रकार के वीर-काव्य उपलब्ध हैं--एक ऐतिहासिक प्रबन्ध के रूप में, जैसे 'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) और दूसरे पौराणिक प्रबन्धों के

---

७९. ज्ञान प्रबोध, २४५-२६९

८०. वही, ३६६

रूप में—जैसे 'चौबीस अवतार', 'चन्डी-चरित्र उक्ति विलास' एवं 'चण्डी चरित्र द्वितीय'।

ऐतिहासिक वीरकाव्य

विचित्र नाटक

अपनी कथा—गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा चरित्र-काव्य शैली में रचित यह एक ऐसा वीर-काव्य है, जिसमें किसी देवी-देवता या अन्य वीर-पुरुष के चरित्र में अनेक अतिमानवीय, अलौकिक अथवा चमत्कारपूर्ण घटनाओं का समावेश करके उसकी वीरता, शौर्य, दृढ़ता, साहस, पौरुष आदि गुणों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा नहीं की गई, वरन् यह गुरुजी के अपने जीवन से सम्बन्धित है और उसमें 'आत्म-कथा' की सी सत्यता, यथार्थता एवं सहजता है। तटस्थ आत्म-निरीक्षण एवं प्रभावपूर्ण आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से यह एक आदर्श, उत्कृष्ट एवं विशिष्ट रचना है। यह अत्यन्त विश्वासपूर्ण, दृढ़, स्वच्छ एवं आकर्षक शैली में रचित मनोहर 'आत्मकथा' है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की साहसिक एवं ओजस्वी पद्यात्मक 'आत्मकथा' दुर्लभ है। परन्तु, इस रचना का उद्देश्य केवल मात्र आत्म-अभिव्यक्ति अथवा आत्म-प्रकाशन नहीं है, आत्म-विज्ञापन तो बिल्कुल नहीं। शहीद के पुत्र और शहीदों के पिता संत-योद्धा गुरु गोबिन्दसिंह ने इस काव्य-ग्रन्थ की रचना भी असहाय एवं निराश हिन्दू जनता में जातीय स्वाभिमान, राष्ट्र-प्रेम एवं धर्म-रक्षा के उच्च भावों को जाग्रत एवं उत्तेजित करने के महान उद्देश्य से ही की है।

इस धरातल पर अपने आगमन के उद्देश्य की ओर संकेत करते हुए वे लिखते हैं कि मुझे गुरुदेव ने धर्म-स्थापन के लिए भेजा है और कहा है कि जहाँ-जहाँ दुष्टों को देखो, उन्हें मार गिराओ।[८१] वे हिन्दुओं के मन में यह बात बिठाना चाहते थे कि वे यवनों के अन्याय और अत्याचारों से उनका उद्धार करने के लिए ही यहाँ आए हैं और जो इस धर्म-युद्ध में उनका साथ देगा (वह ईशकार्य में योगदान देने के फलस्वरूप) ब्रह्म-लोक को प्राप्त करेगा। उन्होंने यह भी स्पष्ट कहा कि "जो कोई भी किसी लोभ या मुगलों के भय से अन्याय और अधर्म के विरुद्ध लडने से विमुख होकर उनका साथ छोड़कर जाएगा, वह अपने दोनों लोकों को खराब करेगा। यहाँ उसका मुंह काला होगा,[८२] मुगल भी उसकी दुर्दशा करेंगे तथा

---

८१. हम इह काज जगत मो आए। धरम हेत गुरुदेव पठाए।
जहाँ जहाँ तुम धरम विथारो। दुसट दोखयनि पकरि पछारो॥
(विचित्र नाटक : ७ : २८)

८२. वही, १ ४: २-७

उसका परलोक भी बिगड़ेगा।[८३] ऐसे कायरों की उन्होंने भर्त्सना की है और उन्हें सचेत भी किया है कि एक बार साथ छोड़ देने पर फिर वे उनकी रक्षा नहीं करेंगे,[८४] भले ही उन्हें मुगल लूटें या अपमान करके अन्य कष्ट दें।[८५] वे उन्हें यह विश्वास भी दिलाते हैं कि जो उनकी शरण में आयेगा, वे उसे सच्चा पाहुल (अमृत) प्रदान करेंगे[८६] और शत्रु भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकेंगे"।[८७] इस प्रकार वे योद्धाओं में उत्साह और साहस के साथ-साथ दृढ़ता, आशा और विश्वास भी पैदा करना चाहते थे। वे यह स्पष्ट कर देना चाहते थे कि वे अपने लिए नहीं वरन् उन्हें ही मुगलों के अन्याय और अत्याचार से मुक्त करने एवं देश और धर्म की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं। वे प्रत्येक हिन्दू के हृदय में अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की भावना जाग्रत करना चाहते थे। वे चाहते थे कि उनमें ऐसा स्वाभिमान जगे कि वे स्वयं अन्याय और अनीति के विरुद्ध लड़ें। इसलिए उन्होंने सिक्खों को उन मसन्दों का विरोध करने का भी आदेश दिया जो उनसे अनुचित कर लेते थे।[८८] कहना न होगा कि राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक प्रेम से युक्त ऐसी वीर-भावना का इस युग के अन्य वीरकाव्यों में अभाव है।

मध्यकालीन भारत की हिन्दू जनता रूढ़ि-ग्रस्त, प्रमाद युक्त, आलसी और विरुद्यमी हो चुकी थी। उनके अन्दर एक नई कर्मण्यता एवं कर्मठता पैदा करने की जरूरत थी, ऐसी कर्मण्यता जो उनमें शक्ति, साहस, स्वाभिमान एवं उत्साह का संचार कर सके। 'विचित्र नाटक' में गुरुजी ने इन भावों को जाग्रत करने का स्तुत्य कार्य किया है। परिश्रम का महत्व प्रतिपादित करते हुए उन्होंने लिखा है कि जो हँसी में भी परिश्रम, उद्यम करेगा वह सभी सुखों और सिद्धियों को प्राप्त करेगा।[८९]

व्यक्तित्व—'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) में गुरु गोबिन्दसिंह एक वीर एवं साहसी यशस्वी शूरवीर, कुशल सेना-संचालक, राष्ट्र-प्रेमी, धर्म-रक्षक, दुष्ट-संहारक, संत-उद्धारक, निर्भीक, पराक्रमी, दृढ़निश्चयी, आशावादी, आस्थावान एवं विनम्र राष्ट्रनायक के रूप में सामने आते हैं और देश और धर्म की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर दिखाई देते हैं। वे एक महान

---

८३. वही, १४ : १८
८४ वही, १४ : ९-११
८५. वही
८६. वही, १४ : १८
८७. वही, १४ : १२
८८. वही, १४ : १२
८९. वही, १४ : १५

अभियान का संगठन और संचालन करने में समर्थ हैं। उनमें औदार्य भी हैं और साहस भी, उत्साह भी है और विनम्रता भी। वे गज़नवी और चंगेज़खाँ की भाँति शक्ति संचित कर अत्याचार और अन्यायपूर्ण राज-भोग करने वाले योद्धा नहीं हैं, वरन्, वे शक्ति संगठन ही अत्याचार और अन्याय का विनाश करने के लिए करते हैं। वे बाह्याचारों, पाखंडों एवं जाति-पाँति-भेद के कट्टर विरोधी और अकाल-पुरुष के सच्चे सेवक और भक्त हैं। वस्तुतः, यहाँ वे एक संत-योद्धा के रूप में प्रकट हुए हैं।

रचना-सौन्दर्य—'विचित्र नाटक' में कुल १४ अध्याय हैं। जिनमें से आठ में युद्ध वर्णन है। रचना की उदात्त वीर-प्रवृत्ति का परिचय आरम्भ से ही मिल जाता है, जब कवि अधर्मी और अत्याचारी शत्रु की विनाशक खड्ग की वंदना इस प्रकार करता है—

खंड खंड विहंड खल दल खंड अति रण मंडं बखंडं।
भुज दंड अखंड तेज प्रचण्ड जोति अमंडं भान प्रभं।
सुख संता करणं दुर्मति दरणं किलविख हरणं अस सरणं।
जै जै जग कारण स्रिसट उबारन मम प्रतिपारन जै तेगं। १ : २।

अर्थात्, "तलवार टुकड़े अच्छी तरह करती है", दुष्टों के समूह के टुकड़े करती है, युद्ध को बहुत सुन्दर बना देती है, ऐसी बलवान है। यह न टूटने वाला हाथ का डंडा है। बहुत तीक्ष्ण तेज वाली है। इसकी ज्योति सूर्य प्रभा को शोभा-हीन कर देती है। यह तलवार संतों को सुखी करने वाली; दुष्टों का मर्दन करने वाली; पापों का नाश करने वाली है; यह मेरा आश्रय हैं; जगत की कारण; सृष्टि की पालक; मेरा प्रतिपालन करने वाली हैं। ए! खड्ग! तेरी जय हो।"[९०] वस्तुतः, यह खड्ग ही उनकी उद्देश्य पूर्ति का मुख्य साधन है।

इसी तरह दुष्ट-विनाशक, संतों की रक्षक एवं धर्म-संस्थापक कृपाण, कटार, तीर, तुफंग, गदा, ग्रिसट, सैंहथी आदि अस्त्र-शस्त्रों को भी नमस्कार किया गया है।[९१] कवि ने 'अकाल पुरुख' की भी 'बाणपाणि', 'चक्रपाणि' (१ : ८६-८९) कह कर वंदना की है और उनके दुष्ट-विनाशक, असुर-संहारक, संत-रक्षक, वीर रसात्मक रूप का वर्णन किया है।

कथानक—कथानक का आरम्भ गुरु जी की पूर्वजन्म की कथा से होता है, जिसमें वे अपने इहलोक में आगमन के उद्देश्य की ओर भी संकेत कर देते हैं। बीच में लव-कुश की संतानों के युद्धों का भी ओजस्वी चित्रण किया गया है। गुरु जी ने अपने सोढ़ी वंश का सम्बन्ध सूर्य वंश से स्थापित किया है, जिससे उनके वीर-

---

९०. 'रामावतार' में भी दुष्ट विनाशक खड्ग की प्रशंसा में एक ऐसा ही छन्द आया है—रामावतार : ५८९

९१. विचित्र १ नाटक : ८८

चरित्र का ही परिचय मिलता है और हिन्दुओं और सिक्खों की अभिन्नता का निरूपण होता है। युग की धार्मिक स्थिति का चित्रण करके उस युग में प्रचलित आडम्बर-पूर्ण धार्मिक आचारों का खंडन करने के जिस उद्देश्य की ओर कवि ने संकेत किया है, वह इस ग्रन्थ की वीर-भावना की पृष्ठभूमि का कार्य करता है। ऐसी धार्मिक प्रेरणा से उत्तेजित वीर-भावना का इस युग के अन्य वीर-काव्यों में सर्वथा अभाव है।

इस रचना में गुरु गोबिन्दसिंह का सम्पूर्ण जीवन-वृत्त चित्रित नहीं है। अकाल स्तुति, वंश-वर्णन तथा पूर्व जन्म एवं इस जन्म की संक्षिप्त कथा के पश्चात् उन्होंने भंगाणी, नादौन, खानजादा तथा हुसैनी युद्ध का वर्णन किया है। आनन्दपुर तथा चमकौर जैसे प्रसिद्ध युद्धों का इसमें उल्लेख भी नहीं है, जिससे विदित होता है कि इस ग्रन्थ की रचना इन युद्धों के घटित होने से पूर्व ही हो चुकी थी।

युद्ध-कथाएँ— गुरु गद्दी पर बैठने के बाद उन्होंने धर्म-प्रचार का कार्य आरम्भ किया परन्तु कुछ समय पश्चात् वे आनन्दपुर छोड़कर कालिन्दी तट पर पऊँटे के स्थान पर जा बसे और निकट के घने वनों में सिंह, रीछ आदि का शिकार भी करने लगे। वहाँ बिना किसी कारण के श्रीनगर (गढ़वाल) के पहाड़ी राजा फतेशाह ने उन पर आक्रमण कर दिया[९२], जिसका उन्होंने डट कर मुकाबला किया। यहाँ कवि ने दोनों पक्षों के प्रमुख वीरों के नामों का उल्लेख करते हुए उनके शौर्य की प्रशंसा की है और उनके प्रहार-प्रतिप्रहार एवं भिडन्त का अत्यन्त सजीव एवं ओजस्वी चित्रण किया है। उदाहरण-स्वरूप महन्त कृपाल तथा नंदचंद आदि के युद्ध का वर्णन देखिए उन्होंने कितना भव्य किया है। वे कहते हैं कि 'कृपाल ने क्रोधित होकर कुतका उठाई और हठी शूरवीर हयातखाँ के सिर पर दे मारी। उसके सिर में से मिझ की छींटें इतनी ज़ोर से निकली जैसे कृष्ण द्वारा मक्खन की मटकी फोड़ देने पर मक्खन के छींटे उठी हों। उसी समय नंदचंद भी बहुत क्रोधित हुआ और उसने नजाबत खाँ को बरछी मारी और साथ ही तलवार खींच ली। वह तीखी तलवार युद्ध करते-करते टूट गई। तलवार के टूट जाने पर उसने कटार निकाल ली। उस शूरवीर ने सोढ़ी वंश की लाज रख ली। कृपालदास का क्रोध भी भड़क उठा, क्रोध में भरे उस शूरवीर ने भी घमासान युद्ध किया। उस वीर ने अपने शरीर पर अनेक तीर सहे और अपने तीखे बाणों से बांके खानों के तीक्ष्ण

---

९२. इस युद्ध का कारण यह था कि गुरु जी के पास एक सफेद हाथी और तंबू था, जिन्हें फतेशाह ने अपने पुत्र के विवाह के लिए गुरु जी से आकर माँगा था परन्तु गुरु जी ने उसकी बदनीयती का संकेत पाकर ये वस्तुएँ देने से इंकार कर दिया। यही घटना इस युद्ध का कारण बनी।

घोड़ों को खाली कर दिया। साहब चंद ने भी अनेक खानों का वध किया और जो बाकी बचे वे जान बचाकर भाग गए—

क्रिपाल कोपीयं कुतका सँभारी। हठी खान हयात के सीस झारी।
उठी छिच्छि इच्छं कढ़ा मेझ जोरं। मनो माखनं मटकी कान्ह फोरं।७।
तहाँ नंदचंद कीयो कोपु भारो। लगाई बरछी क्रिपाणं संभारो।
तुटी तेग त्रिक्खी कढ़े जमदंडं। हठी राखीयं लज्ज बंसं सनंदं।८।
तहाँ मातलेयं क्रिपालं क्रुद्धं। छकियो छोभ छत्री कर्‌यो जुद्ध सद्धं।
सहै देह आपं महावीर बाणं। करो खान बानीन खालीं पलाणं। ९।
हठियाँ साहब चंद खेतं खत्रियाणं। हने खान खूनी खुरासान मानं।
तहाँ वीर बंके भली भाँति मारे। बचे प्राण लेके सिपाही सिधारे।१०।

(८ : १०)

कितना सजीव, यथार्थ और ओजस्वी चित्रण है। निःसन्देह, कवि ने स्वयं अपनी आँखों से देखकर युद्ध की प्रत्येक घटना का यथार्थ चित्रण किया है। योद्धाओं के भाव, अनुभाव, क्रोध, शस्त्र-संचालन, युद्ध-कुशलता, घाव-सहने, रक्त-प्रवाह आदि का सजीव चित्र नेत्रों के सामने आ जाता है। हरीचंद के क्रोध, दृढ़ता, अस्त्र-शस्त्र प्रहार एवं प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध का भी कवि ने ऐसा ही वर्णन किया है।

युद्ध की भीषण गति एवं युद्ध की विकरालता एवं भयानकता को प्रकट करने के लिए कवि ने डाकणी, भूत-प्रेत, बीर-बैताल आदि के हंसने, नाचने, रक्तपान करने तथा चबी-चाबड़ियों, गिद्धों, शृंगालों आदि के मांस नोचने का भी वर्णन किया है (वही, ८ : १८)। यही नहीं युद्ध में संलग्न वीरों की एक-एक गति, क्रिया, अनुभाव आदि का अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण करके उसका यथार्थ एवं सजीव चित्र अंकित किया है। हरीचन्द के अपने साथ हुए युद्ध में एक-एक करके बाण को छोड़ने एवं उसकी मार का चित्र देखिए—गुरु जी ने किस प्रकार प्रस्तुत किया है—

हरिचंद कोपे कमाणं सभारं। प्रथम बाजीयं त्राण बाणं प्रहारं।
द्वितीय ताक के तीर मौकों चलायं। रखियो देई बमै कान छुवै कै सिधायं।
त्रितीय बाण मार्यो सुपेटी गझारं। विधिअं चिलकंत दुआल पार पधारं।
चुभी चिच चरमं कुछ घाइ न आयं। कलं केवलं जान दासं बचायं।३०।

यहाँ कवि (गुरु जी) ने हरीचंद के निशानों का ही चित्रण नहीं किया वरन् उसके क्रोध, उत्साह, शौर्य आदि को भी प्रकट किया है।

भंगाणी की इस युद्ध-कथा में कवि ने सामरिक विद्या एवं युद्ध-नीति का भी परिचय दिया है। युद्ध में विजय प्राप्त करके वे उस नगर में नहीं रहे, आनन्दपुर में आ बसे और जिन्होंने युद्ध में गुरु जी का साथ नहीं दिया था, उन सभी को नगर से निकाल दिया, क्योंकि ऐसे व्यक्ति ही भेदियों का काम करके हानि पहुँचाते हैं। (८ : ३६-३८)

भंगाणी के युद्ध में विजय प्राप्त कर गुरु जी आनन्दपुर पहुँचे। इसी समय नादौन के राजा भीमचंद पर अलफखाँ ने आक्रमण किया, जिसमें गुरु जी ने भीमचंद की सहायता करके अलफखाँ को पराजित किया। इस युद्ध का भी उन्होंने अत्यन्त वेगपूर्ण एवं सजीव चित्रण किया है। दोनों पक्षों के योद्धाओं के नाम बता कर उनकी वीरता की प्रशंसा भी की गई है और उनके उत्साह, रणोल्लास[९३], प्रहार-प्रतिप्रहार[९४], अनुभाव[९५] आदि के चित्रण के अतिरिक्त युद्ध के कोलाहलमय, विकराल एवं भयावह वातावरण[९६] को भी प्रस्तुत किया गया है। हरीचंद जैसे वीरों का व्यक्तित्व भी खूब उभर कर सामने आता है। सेना के भागने और संधि का भी संक्षिप्त उल्लेख है (९ : २२-२३)। फाग के रूप में युद्ध वर्णन का एक उदाहरण देखिए—

परी मार वेगं छुटी बाण गोली। मनो सूर बैठे भली खेल होली।९।
गिरे वीर भूमं सरं सांग पैलं। रंगे स्रोण बसंत मनो फाग खेलं (९ : २०)

इस युद्ध के कुछ समय अनन्तर एक मुगल योद्धा दिलावर खाँ ने रात के समय गुरु जी पर आक्रमण किया, परन्तु उसे भी हार खानी पड़ी। रात्रि के इस युद्ध का भी यथार्थ चित्रण किया गया है।

रात्रि के अंधकार में आकस्मिक आक्रमण से जो कोलाहल मचा और अस्त्र-शस्त्रों की कैसे वर्षा होने लगी, इसका सजीव चित्र अंकित किया गया है। इस युद्ध में से दिलावरखाँ भयभीत होकर भाग गया और सेवक हुसैनी को युद्ध करने के लिए भेजा गया। उसने कुछ पहाड़ी गाँवों की लूट-मार की, जिससे पहाड़ी राजाओं का उससे युद्ध भी हुआ, इस युद्ध में वह स्वयं तो मारा गया और उसकी सेना वापिस लौट गई। गुरु जी को इस युद्ध में भाग नहीं लेना पड़ा।

'विचित्र नाटक' में मुगल-सेना तथा कुछ पहाड़ी राजाओं के अन्य पहाड़ी राजाओं से किये गये एक अन्य युद्ध का भी वर्णन है। इस युद्ध में जुझारसिंह नाम

---

९३. सबै वीर बोले हमें भी बुलायं ('अपनी कथा' बिचित्र नाटक) (९ : ६)

९४. कुप्पिओ क्रिपालं। नच्चे मरालं।
बज्जे बजंतं। कर अनंत।
जुज्झत जुआना। वाहे क्रिपाल।
जीअ धार क्रोध। छड्डे सरोध।९।
लुज्झे निदान। तज्जेत प्राण।
गिर परत भूम। जणु मेघ झूम।१०१। (वही)

९५ खरे दांत पीसैं छुभैं छत्रधारी।९ : ५।

९६. महानाद बाजं। मणे सूर गाजे।१२।
महावीर गज्जे। महाँ सार बज्जे। (वही, ९ : १३)

का राजपूत योद्धा बड़ी शूरवीरता से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त करता है। कवि ने जुझारसिंह के शौर्य, उत्साह, साहस आदि का भव्य चित्रण किया है। इस युद्ध के समाचार सुनकर औरंगजेब ने अपने पुत्र को सेना सहित भेजा जिससे भय-भीत होकर बहुत-से लोग गुरु जी का साथ छोड़कर भाग गए। भागे हुए बहुत-से लोगों का मुगलों ने वध कर दिया।

इस युद्ध के बाद की किसी भी अन्य घटना का उल्लेख 'विचित्र नाटक' में नहीं है। इस प्रकार यह प्रबन्ध गुरु गोबिन्दसिंह का सम्पूर्ण जीवन-वृत्त उपस्थित नहीं करता, वरन् उनकी २६-२७ वर्ष की आयु तक के कुछ युद्धों का ही इसमें वर्णन है, फिर भी कथानक में अधूरापन नहीं झलकता। अन्त में कवि ने बाह्याचारों, मिथ्याडम्बरों का विरोध करते हुए, ब्रह्म की भक्ति का महत्त्व दर्शाया हैं और अपने उद्देश्यों की ओर संकेत करते हुए कथानक को पूर्णता तक पहुँचा कर उसे उदात्त रूप प्रदान किया है।

युद्ध-प्रसंग ही इस कृति के सर्वाधिक रोचक एवं महत्त्वपूर्ण अंश है। इन युद्ध-कथाओं में भी कवि ने योद्धाओं की बीरता, शौर्य-प्रदर्शन एवं प्रहार-प्रतिप्रहार (भिडन्त) और उसमें किए गए लोह-वर्षण का ही अधिक चित्रण किया है। युद्ध-कथा का सम्पूर्ण इतिवृत्त नहीं दिया। उसके कारणों, दोनों पक्षों की तैयारी, सेना-प्रस्थान, दूत भेजने, वीरों की साज-सज्जा, उनकी ललकार-प्रतिललकार, गर्वोक्तियों, व्यूह रचना, छावनी डालने, मार्ग में विश्राम करने, आक्रमण करने, घेरे में पड़ी सेना की कठिनाइयों आदि का चित्रण उन्होंने अधिक नहीं किया। लेकिन, जिस उत्साह से उन्होंने ये युद्ध लड़े उसी उत्साह से वे उनकी भिड़न्त का वर्णन करते हैं और इन युद्धों का सजीव, ओजस्वी, भीषण एवं उग्रतापूर्ण चित्रण करने में वे पूर्ण सफल रहे हैं। इसी प्रकार आपस में जूझते हुए गोपाल और कृपाल के पौरुष, बल एवं शौर्य को चित्रमय बनाते हुए कवि लिखता है कि मानो दो दांतों वाले मस्त हाथी आपस में लड़ रहे हैं अथवा सिंह बबर शेर से लड़ रहा है।

जुटे आप मे वीर वीर जुझारे।
मनो गज्ज जुट्टे दँतारे दँतारे।
किधों सिंह सो सारदूलं अरुज्झे।
तिसी भाँति क्रपाल गोपाल जुज्झे। ११:३०।

हुसैनी-युद्ध में कवि ने सेनापति के मिथ्याभिमान एवं गर्व का भी मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

युद्ध-भूमि के विकराल, भीषण एवं भयावह चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि ने युद्ध-भूमि में टूटे हुए अस्त्र-शस्त्रों, क्षत-विक्षत योद्धाओं, रुण्ड-मुण्डों के बिखरने, लोथों पर लोथों के गिरने, खाली फिरते घायल घोड़ों, रक्त प्रवाह एवं उन पर मँडराते गिद्ध, शृंगाल, कंक एवं नाचते भूत-प्रेत, डाकिन, जोगिनी आदि का भी

विशद् चित्रण किया है।

परम्परा रूप में अप्सराओं के वीरों को वरण करने एवं किन्नरों, गंधर्वों, यक्षों के प्रसन्न होने का भी उल्लेख किया गया है। कहीं-कहीं योद्धाओं के अनुभाव भी सजीव रूप में प्रकट हुए हैं।

रस—यह रचना वीर रस प्रधान है और सभी युद्ध-कथाओं में वीर रस का पूर्ण संचार है। भंगाणी युद्ध में फतेशाह 'आलम्बन' है और गुरु जी तथा उनके वीर 'आश्रय' हैं, फतेशाह का अकारण आक्रमण करना तथा गुरु पक्ष के योद्धाओं पर प्रहार करना 'उद्दीपन' का कार्य करते हैं। कृपाल का क्रोधित होकर कुतकी उठाना और हयातखां के सिर पर दे मारना 'अनुभाव' है। उसके सिर से जो मिझ निकलती है वह कृपाल के उत्साह की वृद्धि ही करती है। इसी प्रकार हरीचंद (आलम्बन) के तीक्ष्ण प्रहारों से क्रोधित होकर (उद्दीपन) गुरु जी उस पर तीरों की बौछार करते हुए टूट पड़ते हैं (अनुभाव)। अतः, यहां आलम्बन, आश्रय, उद्दीपन, अनुभाव आदि रस के सभी अवयव मौजूद हैं। बीच-बीच में अमर्ष, मति, धृति, धैर्य, दृढ़ता, दर्प आदि संचारी संचरणशील हैं, जिनके संयोग से वीररस की पूर्ण निष्पत्ति हो जाती है।

हुसैनी युद्ध में हुसैनी 'आलम्बन' है और गोपाल तथा उसके साथी राजा 'आश्रय' हैं। हुसैनी का अहंकार के कारण संधि-प्रस्ताव ठुकरा कर उन पर आक्रमण कर देना 'उद्दीपन' का कार्य करता हैं, कृपाल द्वारा गोपाल को छल से पकड़ने या मारने का प्रयत्न भी 'उद्दीपन' का कार्य करते हैं, जिससे क्रुद्ध (उत्साहित) होकर गोपाल के मुख और नेत्रों का लाल होना तथा शस्त्र धारण कर युद्ध में कूद पड़ना 'अनुभाव' हैं। दोनों पक्षों के वीरों का मस्त हाथियों एवं सिंह-शार्दूल की भाँति जूझना वीरों के 'उत्साह' को उत्तेजित करता है। रोष, अमर्ष आदि कई मनोवेग 'संचारी' का काम करते हैं; जिनसे पुष्ट होकर रस पूर्ण परिपाक की स्थिति में पहुंच जाता है। हुसैनी अकारण आक्रमणकारी एवं अत्याचारी है और उसके विरुद्ध लड़ने वाले गोपाल आदि वीर उदात्त भावों से युक्त वीर रस के उपयुक्त नायक हैं।

इस प्रकार भाव-व्यंजना, युद्ध कथा-वर्णन एवं उद्देश्य की महानता के कारण 'अपनी कथा' एक उत्कृष्ट रचना है।

पौराणिक वीर काव्य

'संत योद्धा' गुरु गोबिन्दसिंह एक साहसी शूरवीर और कुशल सेना-नायक थे। वे जानते थे कि युद्ध किस प्रकार लड़े जाते हैं और सैनिकों में युद्धोत्साह कैसे पैदा किया जाता है। वे एक ओजस्वी कवि थे और अनेक शौर्यपूर्ण वीर-गाथाओं द्वारा वीरों के रणोत्साह को उत्तेजित करते थे। जैसाकि पहले कहा गया है; 'दशमग्रंथ' में 'चौबीस अवतार कथाओं' के अन्तर्गत पुराणों में जैसी अवतार कथाएँ वर्णित हैं,

इन्हें इसलिए ग्रहण किया गया है कि उन्हें इन कथाओं की दुष्टदमनकारी प्रवृत्ति से अपने उद्देश्य की सफलता में बल मिलता था और उसके अनुयायियों को उत्साहित करने में भी वे सहायक हो सकती थीं और हुईं। गुरु जी ने इन अवतार कथाओं को इस रूप में ढाला है कि उनसे 'धर्मयुद्ध' के लिए उत्साह और प्रेरणा मिलती है। इसी-लिए इसमें युद्ध-प्रसंगों को ही अधिक विस्तार दिया गया है। वस्तुतः, ये मुख्यतः 'युद्ध कथाएँ' ही हैं।

'दशम-ग्रंथ' में मच्छ, कच्छ, नर-नारायण, मोहिनी, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, ब्रह्मा, रुद्र, जालन्धर, विष्णु, दुर्गा, अर्हन्तदेव, मनु, धन्वन्तरि, सूर्य, चन्द्र, राम, कृष्ण, निहकलकी, बौद्ध आदि अवतारों की कथाओं का निष्ठापूर्वक वर्णन किया गया है। ये कथाएँ मुख्यतः 'शिवपुराण' (वराह), 'भागवत-पुराण', 'पद्म-पुराण' (नृसिंह, राम), 'ब्रह्मवैवर्त', 'ब्रह्माण्ड', 'भविष्य', 'मार्कण्डेय' (ब्रह्मावतार), 'हरिवंशपुराण' (धन्वन्तरि) आदि से ली गई हैं। आरम्भ में कवि ने ब्रह्म के स्वरूप एवं पृथ्वी पर अवतार आगमन के कारण एवं उद्देश्य का निरूपण किया है। जब पृथ्वी पर असुरों की शक्ति और आतंक बढ़ता है तथा सन्त दुःखी होते हैं, तो दुष्टों के विनाश के लिए और सन्तों के उद्धार के लिए अवतार यहाँ आते हैं।

जब जब होत अरिस्ट अपारा। तब तब देह धरत अवतारा।

(चौबीस अवतार १:२)

इन कथाओं में कच्छ, मच्छ, नर, नारायण, मोहिनी, वराह, अर्हन्त, धन्वन्तरि, मनु, सूर्य, चन्द्र आदि अवतारों से सम्बन्धित प्रसंग अत्यन्त संक्षिप्त हैं। अधिक विस्तार 'रामावतार' तथा 'कृष्णावतार' को ही दिया गया है। वस्तुतः, ये ही दो रचनाएँ स्वतंत्र प्रबन्ध की कोटि में रखी जा सकती हैं। इनमें भावों की विशदता, मार्मिकता एवं सजीवता है। इनमें वीरों का शौर्य और उत्साह, स्त्री-पुरुष का रूप-चित्रण, नख-शिख, प्रेम-मिलन, विरह; वन, पुष्प-लता, नदी, मेघ, वर्षा आदि से सम्बन्धित प्रकृति-चित्रण, बारह-माहा; युद्धों; जन्म एवं विवाहोत्सव आदि के आकर्षक और प्रभावशाली वर्णन तथा विदग्धतापूर्ण एवं रोचक संवाद भी उपलब्ध हैं। छन्द-वैविध्य, अलंकार-सौष्ठव एवं रचना-कौशल की दृष्टि से भी ये रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

'रामावतार' एक विशुद्ध वीर काव्य

'रामावतार' उदात्त वीर-भावना से ओतप्रोत एक उत्कृष्ट प्रबन्ध-काव्य है, जिसमें 'वाल्मीकि रामायण', 'पद्मपुराण', 'भागवत्', 'हनुमान नाटक' आदि राम-कथाओं के आधार पर प्रचलित राम की 'बीन-कथा'[९७] का वर्णन किया गया है।

---

९७. तिह ते कही थोरीए बीन कथा—रामावतार १:५

रामकथा किसी भी एक ग्रंथ से नहीं ली, वरन्, उपर्युक्त कई ग्रंथों से ली है। अधिकतर प्रसंग 'पद्मपुराण' की कथा पर आधारित हैं।

इस ग्रंथ में कथा का आरम्भ रघुवंश के प्रवर्त्तक रघु की कथा से और अन्त लव-कुश को राज्य देकर राम-लक्ष्मण सहित सभी अयोध्यावासियों के स्वर्गारोहण से होता है। राम-जन्म से पूर्व की कथा अत्यन्त संक्षिप्त है। राजा दशरथ के विवाह, कैकेयी को वरदान देने और दशरथ के बाण से श्रवणकुमार की मृत्यु सम्बन्धी सभी प्रसंग मुख्य कथा की पूर्व-पीठिका का कार्य करते हैं।

कथा में पूर्ण संतुलन एवं प्रवाह नहीं है। राम-कथा के सभी प्रसंगों को समुचित विस्तार भी नहीं दिया गया। कवि ने 'बीन-बीन' कर कुछ ही प्रसंगों को अधिक उठाया है। बहुत-से प्रसंगों को तो "इन बातन को इक ग्रंथ बढ़ै, तहिते कही थोरीउ बीन कथा" कहकर चलता कर दिया है। रामकथा के मार्मिक प्रसगों पर भी कवि का अधिक ध्यान नहीं गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कैकेयी के राम-वनवास का वरदान माँगने पर दशरथ की प्रचंड प्रतिक्रिया, मौन, उन्माद, क्रोध, दया-याचना आदि की संक्षिप्त, परन्तु नाटकीय व्यंजना की गई है, सीता की पति-परायणता, लक्ष्मण के क्रोध एवं सुमित्रा की वेदना का भी बहुत संक्षेप में ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है; परन्तु राम के वनवास को कवि ने दो छंदों में ही चलता कर दिया है। धनुष यज्ञ एवं सीता खोज का प्रसंग भी अत्यन्त संक्षिप्त है। दो-तीन छदों में ही कवि जटायु-वध, राम की हनुमान-सुग्रीव आदि से भेंट और हनुमान के लंका से सीता की खबर लाने तक का वर्णन कर देता है। स्पष्ट है कि कवि की रुचि इन प्रसंगों के वर्णन में नहीं है। वह घटनाओं का उल्लेख मात्र करके पवन-सुत हनुमान की ही गति से किसी अन्य महत्त्वपूर्ण प्रसंग पर तेजी से पहुँचना चाहता है।

यदि हम 'रामावतार' कीं कथा को ध्यानपूर्वक देखें तो मालूम होगा कि कवि की रुचि युद्ध-वर्णनों में ही अधिक है, अन्य प्रसंगों का या तो उल्लेख मात्र किया है, या अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन करके आगे बढ़ गया है। जैसे युद्ध के लिए उत्साहित वीर-योद्धा के लिए मार्ग में ठहरने का अधिक अवकाश नहीं होता, वह केवल इधर-उधर दृष्टि डालता जाता है और शीघ्रातिशीघ्र रण-भूमि में पहुँचना चाहता है, उसी प्रकार 'रामावतार' का लेखक भी वायुयान की तीव्र गति से युद्ध-भूमि की ओर बढ़ जाता है। वह मार्ग की भूमियों-घटनाओं पर नजर जरूर डालता है, मगर वह वहाँ उतरता नहीं। उतरता वह युद्ध-भूमि में ही है। वास्तव में कवि कथाओं को जोड़ने के लिए रेशम के क्षीण डोरों से काम लेता है और बहुधा रसपूर्ण एवं मार्मिक प्रसंगों पर भी उनका मन नहीं रमता। पूरे मनोयोग से तो वह युद्ध का वर्णन ही करता दिखाई देता है। अन्य प्रसंग तो उसके पूरक या पूर्व-पीठिका मात्र हैं। एक प्रसंग से हम अपनी बात की पुष्टि करना चाहते हैं। कवि दशरथ के घर

पुत्र-जन्म पर उत्सव मनाए जाने की चर्चा कर रहा है, तभी अपने यज्ञ की रक्षार्थ विश्वामित्र जी राम को माँगने आ पहुँचते हैं और दशरथ भी मुनि के क्रोध से डर कर तुरन्त राम को उन्हें सौंप देते हैं। राम को मुनि को सौंपते समय राजा की क्या मनोदशा हुई इसका उल्लेख तक भी नहीं किया गया। कवि पुत्र-जन्म तथा जन्मोत्सव से राम को माँग ले जाने तक की घटना का वर्णन तो इतनी तेजी से कर देता है पर ताड़का, सुबाहु आदि के वध के वर्णन को पर्याप्त विस्तार देता है। इससे भी कवि की प्रवृत्ति युद्ध-वर्णन की ओर ही प्रकट होती है।

वैसे भी 'रामावतार' के ८६४ छन्दों में से लगभग ४२५ छन्द युद्ध-कथाओं से सम्बन्धित हैं। वस्तुतः, 'रामावतार' प्रबन्ध-कथा की दृष्टि से एक शिथिल रचना है, क्योंकि उसकी कथा में संतुलन नहीं है, मार्मिक स्थलों का चित्रण भी अधिक नहीं हो पाया। परन्तु, यह एक सफल 'वीर-काव्य' है और वीर-रसात्मक युद्ध कथाओं का वर्णन कवि ने विशदता, सजीवता एवं कुशलता से किया है।

यह ग्रंथ न तो 'वाल्मीकि रामायण' अथवा 'उत्तररामचरित' की भाँति करुणा-प्रधान है, न 'रामचरितमानस' की भाँति भक्ति-प्रधान, न ही 'अध्यात्मिक रामायण' की भाँति इसमें दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है और न ही 'पउम चरिउ' की भाँति जैनमत के आदर्शों का आख्यान है। 'रामचंद्रिका' की भाँति यह छंदों और अलंकारों के चौखटे में जड़ी हुई चमत्कारपूर्ण रामकथा भी नहीं है और न ही इसमें 'साकेत' की भाँति बौद्धिक एवं सामाजिक तथ्यों का प्रतिपादन हुआ है। इस रचना के नायक 'भुएँ भार उतारने' के लिए; 'असुरों का संहार' और 'संतों का उद्धार' करने के लिए अवतरित हैं, जिसके लिए उन्हें वीर-रूप धारण करना पड़ता है और उनके वीर-चरित्र का ही इस रचना में विशद आख्यान उपलब्ध है। यह विशुद्ध 'वीर काव्य' है।

युद्ध कथा—इस ग्रंथ की रचना कवि ने पाऊंटा निवास के समय संवत् १७५५ में की थी। इस समय गुरु जी बड़े युद्धों की तैयारी में थे और अपने अनुयायियों को संगठित एवं उत्साहित कर रहे थे। इस ग्रंथ की रचना भी इसी उद्देश्य से हुई थी और इसीलिए इसमें राम के ताड़का, विराध, धूम्राक्ष, अकंपन, नारांतक, भूवांतक, कुंभकर्ण, त्रिसुंड, सहोदर, इन्द्रजीत, कंतकाई, मकराक्ष, कुंभ-अनकुंभ एवं रावण आदि दैत्यों से युद्ध का विशद, सजीव एवं ओजपूर्ण वर्णन किया गया है। इन युद्ध वर्णनों में 'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) की भाँति योद्धाओं की भीषण भिड़ंत और प्रहार-प्रतिप्रहार का ही वर्णन अधिक है तथा योद्धाओं, अश्वों, गजों के क्षत-विक्षत होकर गिरने, भूत-प्रेत, डाकनी-योगनी, वीर-बैताल आदि के नाचने एवं गिद्धों, काक, कंक, शृगाल आदि द्वारा मांस नोचने, रक्तपान करने आदि का भयावह दृश्य उपस्थित किया गया है। कवि ने युद्ध-कथा का वर्णन अधिक नहीं किया।

राम के असुरों के साथ युद्ध के दो मुख्य कारण सामने आते हैं। विश्वामित्र के यज्ञ को असुरों द्वारा भंग किया जाना और सीता-हरण। तथापि 'संत-उबारन' और 'असुर-संहार' का मूल उद्देश्य सर्वत्र कवि के सम्मुख रहा है। कवि ने बीच-बीच में इस लक्ष्य की ओर संकेत भी किया है। यथा—

भुंअ भार उतार्यो। रिरवीस उबार्यो।
भयो जग्ग पूरं। गए पाप दूरं।९३-९५।

सेना-प्रस्थान—कहीं-कहीं सेना प्रस्थान का वर्णन करते हुए कवि ने उसकी विशालता, भयंकरता आदि के साथ उसके प्रमुख योद्धाओं का भी उल्लेख किया है।[९८] राम जब लंका पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान करते हैं तो उनके दल-बल का इसी प्रकार का चित्रण किया गया है।

इस आक्रमण की सूचना पाते ही रावण अपने शूरवीरों को सनद्ध-बद्ध कर युद्ध के लिए भेज देता है। इसके बाद कवि अनेक दैत्यों के साथ राम के युद्धों का ओजस्वी, उग्रतापूर्ण एवं विशद वर्णन करता है। जब राक्षस हल्लागुल्ला करके राम को घेर लेते हैं, उस समय के कोलाहल, मेघ के समान रणवाद्यों की गर्जना, कमानों के कड़कड़ाने, कृपाणों के झड़कने, तीरों की वर्षा और योद्धाओं के उत्साह से जूझने में उनके रणोल्लास आदि का कवि ने अत्यन्त सजीव वर्णन किया है। उत्तरोत्तर तीव्र होती हुई युद्ध की गति के कुछ उदाहरण देखिए—

मार मार पुकार दानव ससत्र असत्र सँभार।
बान पान कमान कउ धर तवर तिच्छ कुठार।
घेरि घेरि दसो दिसा नहिं सूरवीर प्रमार्थ।
आई कै जूझे सबै रण राम एकल साथ।६८
रणं पेख रामं। धुजं धरम धामं।
चहूँ ओर ढूके। मुखं मार कूके।६९।
बजे घोर बाजे। धुणं मेघ लाजे।
झंडा गढं गाडे। मंडे बैर बाडे।७०।
कड़क्के कमाणं। झड़क्के क्रिपाणं।
ढला ढुक्क ढालै। चली पीत पालै।७१।
रण रंग रत्ते। मनो मल्ल मत्ते।
सरं धार बरखे। महिखुआसु करखे।७२।
करी बान बरखा। सुणे जीत करखा।
सुबाहं मरीचं। चले बाछ मीचं।७३।

---

९८. रामावतार : ३३८, ३६७

अन्यत्र भी कवि ने संयुक्ताक्षरों[९९], दोहरे अक्षरों[१००] ध्वन्यात्मक एवं संगीतात्मक शब्दों[१०१], आरोह-अवरोह-पूर्ण क्षिप्रगति, लघु एवं संगीत छन्दों[१०२] तथा समानान्तर बिम्ब विधान[१०३] के सहयोग से युद्ध के चित्रात्मक, गत्यात्मक, ध्वनिपूर्ण, सजीव एवं भीषण चित्र उपस्थित किए हैं। ढोल, नफीरी, तंबूरा, शंख, तबला, तूरं, धौसों आदि रणवाद्यों का तुमुल-नाद भी युद्ध का कोलाहलमय भीषण वातावरण उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हुआ है।[१०४] इसी प्रकार योद्धाओं की भिड़ंत में बखतर, टोप, जिरा, पटा, खड्ग, गोफल, गुरज, चंद्रहास, गलोल, त्रिशूल, जंबुआ, कमान, तीर, बरछी, जमदंड, गदा, सहथी, सरोही, कृपाण, कटार, ढाल आदि अस्त्र-शस्त्रों की ढका ढकु, कटाकट, टंकार, झंकार, कड़ाक, सड़ाक आदि का भी ओजपूर्ण चित्रण किया गया है। कवि ने अस्त्र-शस्त्रों की ध्वनि के अनुरूप नादात्मक शब्दों का चयन करके, संगीत छन्दों में बाँध कर उनके प्रहार को सजीव रूप में प्रस्तुत किया है।

जूझते हुए योद्धाओं के अस्त्र-शस्त्रों के खंडित होने, योद्धाओं के क्षत-विक्षत होकर गिरने; अंग-भंग होकर लोथों के इधर-उधर बिखरने; हाथियों की मेघ गर्जन को लज्जित कर देने वाली गर्जन; अश्वों के हिनहिनाने एवं कट-कटकर गिरने; सेना के भागने; मांस मज्जा एवं रक्त-प्रवाह पर गिद्ध, काक, कंक, शृगाल आदि के मँडराने एवं मांस नोचने; भूत-प्रेत, वीर-बैताल एवं योगनियों के नाचने आदि से सकल युद्ध-भूमि का भयावह, विकराल एवं भीषण वातावरण अंकित करने में कवि पूर्ण सफल रहा है।[१०५]

रावण की ओर से एक-एक शूरवीर राम की सेना से युद्ध करने आता है और राम-लक्ष्मण अथवा कोई अन्य वीर उससे जूझता है। इस प्रकार के द्वन्द्व-युद्ध का भी 'रामावतार' में सजीव चित्रण किया गया है। राम और रावण का द्वन्द्व-युद्ध वर्णन इस दृष्टि से अत्यन्त ओजपूर्ण है। कुछ उदाहरण देखिए—

---

९९. रामावतार ५४३, ३०८, ३०९

१००. वही, ५४०, ३०८, ३०९

१०१. वही, ६०९, ३२०, ३०८, ३०९

१०२. 'रामावतार' युद्ध वर्णनों में अजबा, अनूपनिराज, भुजंगप्रयात, रसावल, पद्धरि, सुन्दरी, तोटक, कलस, त्रिभंगी, नवनामक, बहडा, छप्पय, त्रिगदा, त्रिर्णाणण, सवैया, सिरखंडी, तिलकडिया, अपूरब, संगीत, पधिसटका, दोहा आदि छंदों का प्रयोग हुआ है।

१०३. देखिए छंद संख्या ७०, ३४८, ५११, ४२१, ५१४, ५१५ आदि।

१०४. देखिए छन्द संख्या ९०, ३१४, ३१५

१०५. रामावतार, ८४, ३१९, ४०६, ४०७, ४०९, ४२७, ४२८, ४३२, ५०१, ५०९ आदि छन्द भी देखे जा सकते हैं।

रावन रोस भयो रन भो रिस सो सरओघ प्रओघ प्रहारे।
भूमि अकास दिसा बिदिसा सब ओर रुके नहि जात निहारे।
स्री रघुराज सरासन लै छिन मौ छु के सर पुंज निवारे।
जानक मान उदै निस कउ लखिकै सबही तप तेज पधारे।६१३।
रोस भरे रन मो रघुनाथ कमान लै बान अनेक चलाए।
बाज गजी गजराज घने रथराज बने करि रोस उडाए।६१४।
रावन रोस भरियो गरज्यो रन मै लहिकै सब सैन भजान्यो।
आप ही हाक हथ्यार हठी गहि स्री रघुनन्दन सो रन ठान्यो।६१५।
स्री रघुनंदन की भुज ते जब छोर सरासन बान उडारे।
भूमि अकास पतार चहूंचक पूर रहे नहीं जात पछाने।६१६।
रावन रोस भर्यो रन मों गहि बीसहुं बाहि हथ्यार प्रहारे।
भूमिअकास दिसा बिदिसा चकिचार खके नहि जात निहारे।

यहाँ राम और रावण के एक-दूसरे पर प्रहार-प्रतिप्रहार का ही वर्णन नहीं किया गया, वरन् दोनों वीरों के शौर्य, उत्साह, साहस, दृढ़ता, निर्भीकता, युद्ध-कुशलता, प्रचंडता आदि का भी सजीव चित्रण किया गया है। ऐसे ही युद्धों से वीरों का ओजस्वी चरित्र उभर कर सामने आता है। कवि ने दोनों पक्षों के योद्धाओं की वीरता की समान रूप से प्रशंसा की है। जहाँ राम, लक्ष्मण, हनुमान, अंगद आदि की वीरता उसकी प्रशंसा का विषय रही है, वहाँ उसने अकंपन, मेघनाथ, कुंभकर्ण, रावण आदि की बीरता की भी खूब प्रशंसा की हैं। अंगद, राम तथा लक्ष्मण भी उनके शौर्य एवं साहस से मोहित होकर उनकी प्रशंसा करते दिखाई देते हैं।[१०६]

रण-भूमि में योद्धाओं की उत्साहपूर्ण गर्वोक्तियाँ जहाँ वीररस को पुष्ट करने में सहायक होती हैं, और युद्ध की गति को तीव्र करती हैं, वहाँ उन वीरों के उत्साह और साहस को भी प्रकट करती हैं। 'रामावतार' में ऐसी गर्वोक्तियों के भी दर्शन होते हैं।

इसी प्रकार कवि ने मस्त होकर रण-रंग में लीन योद्धाओं के क्रोधित होकर दाँत पीसने (३४५), नेत्रों और मुख के लाल होने (७८, ५४), कटु वचन बोलने (५०४); क्रोध से गरजने और मूछें ऐंठने (७७) आदि विविध अनुभावों का भी उल्लेख किया है।

रस—इन प्रसंगों में सभी अवयवों से पुष्ट होकर वीर-रस की पूर्ण निष्पत्ति होती है। शत्रुपक्ष का क्रोधित होकर (रौद्र) भीषण प्रहार करना, युद्ध-भूमि के भयावह, विकराल दृश्य (बीभत्स) एवं शत्रु सेना का भयभीत होकर भागना

---

१०६. रामावतार, ३८८, ४७४

(भयानक) आदि भी वीरों के उत्साह की वृद्धि करते हैं और रसोत्कर्ष में सहायक होते हैं। इन युद्धों का मुख्य कारण 'असुर-संहार', 'दुष्ट-विनाश' तथा 'संत-उद्धार' एवं 'धर्म-रक्षा' है। इसलिए वीर-रस में उदात्तता है। गुरु गोबिन्दसिंह की युग-परिस्थितियों के अनुरूप होने के कारण राम की वीरता उनके अनुयायियों में मुगल-आसुरी-शक्ति के विरुद्ध लड़ने के लिए साहस और उत्साह का संचार करने में सहायक सिद्ध हुई। निःसन्देह, 'रामावतार' युग-चेतना से स्पन्दित एक उत्कृष्ट वीर-काव्य है।

'कृष्णावतार'—युद्ध प्रबन्ध

२८९२ छन्दों का एक वृहदाकार एवं उत्कृष्ट प्रबन्ध-काव्य है, जिसमें कवि ने कृष्ण के चरित्र का व्यापक एवं विशद चित्रण किया है। इसमें कथानक का संतुलित एवं संयमित ढंग से विकास होता है और सभी प्रसंगों का यथायोग्य निरूपण किया गया है। इसमें जीवन की विविधता एवं शक्ति है। प्रस्तुत प्रबन्ध चार खण्डों में विभाजित है—

(क) रसभ (बाल-लीला)	१-४४०	४४० छन्द
(ख) रास मण्डल	४४१-७५६	३१६ छन्द
(ग) गोपी विरह	७५७-१०२८	२७२ छन्द
(घ) युद्ध प्रबन्ध	१०२९-२४९२	१४६४ छन्द

प्रथम खण्ड में कृष्ण-जन्म, शिशु-सौन्दर्य, उसकी मोहक एवं आकर्षक चेष्टाएँ, हाव-भाव, शिशु-कौतुक, बाल-क्रीड़ा एवं नन्द-यशोदा के वात्सल्य आदि के साथ कृष्ण द्वारा पूतना, शकटासुर, अघासुर, तृणावर्त, चंडूर, बकासुर आदि दैत्यों के वध का वर्णन किया गया है। उल्लेखनीय है कि जहाँ सूरदास कोमल वत्सलता को लेकर चले हैं, वहाँ गुरु गोबिन्दसिंह वीररसपूर्ण दृश्यों में अपना मन अधिक रमा पाए हैं। जहाँ सूर की यशोदा अपने बालकृष्ण को 'हाऊ' के डर से घर से बाहर नहीं जाने देती, वहाँ गुरु जी की यशोदा अपने बाल-कृष्ण को पालने में झुलाते हुए भी यही कामना करती है कि उसका यह नन्हा-सा पुत्र ही बड़ा होकर शत्रुओं का संहार करेगा—

बालक रूप धरे हरि जी, पलना पर झूलत है तब कैसे,
मात लड़ावत है तिह कौं, और झुलावत है करि मोहित कैसे।
ता छवि की उपमा अति ही कवि स्याम कहे ते फुनि ऐसे,
भूम दुखी अति ही मन में जनु घालत है रिपुदैतन जैसे॥

'सूरसागर' और 'कृष्णावतार' के काव्य-नायक यद्यपि श्रीकृष्ण ही हैं, तथापि उनका अलौकिकत्व भिन्न धरातलों पर चित्रित हुआ है। सूरदास के कृष्ण पूर्ण पर-ब्रह्म, सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी हैं, लेकिन गुरु जी के कृष्ण सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी

होते हुए भी पूर्ण परब्रह्म नहीं हैं। गुरु जी ने 'काल' अथवा 'अकाल' को ही पूर्ण परब्रह्म की संज्ञा प्रदान की है, जिसकी आज्ञा पाकर विष्णु ने कृष्ण अवतार धारण किया है। इस प्रकार गुरु जी के कृष्ण परब्रह्म के अनुचर सिद्ध होते हैं।

द्वितीय खण्ड 'रास-मण्डल' में श्रीकृष्ण तथा राधा-गोपियों का सौन्दर्य-वर्णन, पारस्परिक आकर्षण, प्रेम, मान-मनुहार, मिलन, अभिसार आदि का विशद वर्णन किया गया है। गोपियाँ अपने कृष्ण के वेणु-वादन पर मोहित होकर यमुना-तट पर जाती हैं और किस प्रकार कृष्ण के साथ नृत्य, गान, जल-विहार, अभिसार और मान आदि करती हैं, इसका बहुत ही सरस चित्र उपस्थित किया गया है। संयोग शृंगार के अन्तर्गत कुच-मर्दन, केलि-क्रीड़ा, आलिंगन, चुम्बन आदि के उत्तेजक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। निःसन्देह, गोपियों की आसक्ति, मोह, विलास, दीप्ति, उल्लास, गर्व, लज्जा, ईर्ष्या, जड़ता आदि का चित्रण करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है, लेकिन, कहीं-कहीं अश्लीलता का पुट भी आ गया है।

राधा का मान तथा कृष्ण की मनुहार 'रास मण्डल' खण्ड का विशेष आकर्षण है। राधा का मान उसके भोलेपन के कारण अधिक देर तक नहीं टिक पाता। वह शीघ्र ही मान जाती है। कृष्ण की निकटता ही उसके मान-मर्दन का आधार है। रोमांचित हुई वह कठोर बनी भी ढल जाती है तथा कृष्ण के गले लगकर वह सारा मान भुला देती है—

दोउ जउ हसि बातन संग ढरे नु हुलास विलास बढ़े सगरे।
हसि कंठ लगाइ लई ललना गहि गाढे अनंग ते अंक भरे।
तरकी है तनी, दरकी अँगिआ गर माल ते टूटकै लाल परे।
पिय के मिलाए त्रिय के हिये अंगरा विरहा गिनके निकरे॥

'गोपी विरह' खण्ड में कृष्ण के मथुरा-गमत के समय तथा तत्पश्चात गोपियों की जो करुण दशा हुई, उसका चित्रण किया गया है और गोपियों की अधीरता, विह्वलता, व्याकुलता, आतुरता, वेदना और उन्माद आदि की व्यंजना की गयी है। उद्धव-गोपी संवाद भी इस दृष्टि मे महत्त्वपूर्ण है, परन्तु यहाँ कृष्ण भक्त कवियों सूरदास एवं नंददास आदि की तरह भक्ति एवं योग अथवा निर्गुण-सगुण के विवाद से उनकी करुण अभिव्यक्ति को बोझिल नहीं बनाया गया। उनमें नन्ददास की गोपियों की-सी वाक्-पटुता, तर्क-नैपुण्य एवं वाक्-विदग्धता भी नहीं है। वे उद्धव के सामने अपनी हृदयगत करुण-मनोदशा को सहज एवं संवेदनशील रूप में प्रकट करती दिखायी गयी है। उनके विरह-वर्णन में ऊहात्मकता, कृत्रिमता एवं चमत्कार-प्रदर्शन भी नहीं है। 'बारहमासे' के माध्यम से भी कवि उनकी विरह-वेदना की संयमित एवं मार्मिक अभिव्यंजना करता है।

प्रस्तुत खण्ड में गुरु गोबिन्दसिंह ने अनेक नवीन उद्भावनाओं का भी समावेश किया है। यथा—

(१) यद्यपि प्रस्तुत खण्ड का शीर्षक 'गोपी-विरह' है, तथापि इसमें श्रीकृष्ण द्वारा सर्पयोनि से सुदर्शन ब्राह्मण का उद्धार; वृषभासुर, केशी दैत्य, कंस, चाणूर, मुष्टक आदि का वध; कुब्जा उद्धार; माता-पिता की मुक्ति; अग्रसेन को राज्य देना; धनुर्विद्या सीखना आदि का सुरुचिपूर्ण चित्रण करके यह दर्शाया गया है कि कवि को कृष्ण के वीरभाव से ही अधिक लगाव है।

(२) गुरुजी के उद्धव और अक्रूर, सूरदास के उद्धव और अक्रूर के समान मात्र सन्देशवाहक ही नहीं, अपितु वीर योद्धा भी हैं।

(३) गुरुजी ने बाबा नन्द के विरह-वात्सल्य का भी हृदयग्राही चित्रण किया है, जबकि हिन्दी-कृष्ण-काव्य में बाबा नन्द का यह रूप प्रायः उपेक्षित ही रहा है। उद्धव के आने पर नन्द बाबा भी गोपियों की तरह द्रवित हो उठते हैं—

नन्द कह्यो संगि उधव के कबहूँ हरि जी मुहि चित कर्यो है।
ये कहि कै मुध स्यामहि कै धरनी पर सो मुरझाई पर्यो है॥

अथवा

दै विधि ने हमरे गृह बालक पाप बिना हमते फिर छीनो।
यौं कहि सीस झुकाई रह्यो बहु सोक बढ्यो अति रोदन कीनो॥

(४) सूरदास ने 'भ्रमरगीत' के अन्तर्गत भ्रमर को माध्यम बनाकर प्रेमा-भक्ति की महत्ता प्रतिपादित की है, जबकि गुरुजी ने भ्रमर का सहारा लिए बिना 'गोपी-उद्धव संवाद' के माध्यम से उसी उद्देश्य की पूर्ति की है।

(५) गुरुजी ने विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत 'बारहमासा' का सुन्दर प्रयोग किया है, जो सूरकाव्य में उपलब्ध नहीं है।

जहाँ तक यशोदा के विरह-जनित वात्सल्य का सम्बन्ध है, यदि यह कहा जाए कि गुरुजी ने सूरदास का अनुसरण किया है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। निम्नांकित उदाहरण हमारे इस कथन के साक्षी हैं—

जसुदा बार-बार यों भाखे।
है कोउ हितू हमारो ब्रज में जो चलत गोपालहि राखे।

(सूरसागर)

रोवन लाग जबै जसुधा अपुने मुखि ते इह भाँत सो भाखै।
को है हितु हमरो ब्रिज में चलते हरि को ब्रिज मैं फिरि राखै॥

(दशमग्रंथ)

युद्ध-प्रबन्ध—वस्तुतः, 'युद्ध-प्रबन्ध' ही इस रचना का मुख्य एवं महत्त्वपूर्ण भाग है, जिसमें कवि ने कृष्ण के जरासंध, शिशुपाल आदि के साथ अनेक युद्धों का विस्तृत वर्णन किया है। इस प्रबन्ध में कृष्ण के पारिवारिक जीवन की अन्य घटनाओं का भी वर्णन हुआ है। उनके पुत्र-पौत्रों के विवाह, कुरुक्षेत्र में सूर्य-ग्रहण

के अवसर पर सारे ब्रजवासियों के साथ एकत्रित होने, द्विज के मृत पुत्र को यम-लोक से वापिस लाने एवं युधिष्ठिर के यज्ञों आदि का भी वर्णन किया गया है, परन्तु अधिक बल और विस्तार युद्ध कथाओं को ही दिया गया है। यही इस रचना की एक प्रमुख विशेषता है।

पुराणों में अवतारों के आगमन के दो मुख्य कारणों का उल्लेख है। एक दुष्टदमन-हेतु, दूसरा भक्तों के लिए लीला-हेतु। राम, नृसिंह आदि अवतार दुष्ट-दमन के लिए आए और कृष्ण का लीलामय रूप ही अधिक स्वीकार किया गया। हिन्दी में भी कृष्ण को रसेश्वर, लीलामय रूप में चित्रित किया गया है। अनेक कृष्ण-भक्त कवियों ने उनकी अनेक मन-मोहक रास-रसपूर्ण लीलाओं का वर्णन किया है। यदि वे किसी दैत्य का वध भी करते हैं तो वह भी 'लीला' में ही ऐसा करते हैं। उनका यह लोक-रंजनकारी रूप ही हिन्दी साहित्य में प्रचलित रहा है। परन्तु, 'दशमग्रन्थ' का कृष्ण केवल लीला-हेतु नहीं आया, वरन् दुष्ट-दमन करना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। कंस के केश पकड़कर जिस प्रकार कृष्ण उसका वध करते दिखाए गए हैं उससे उनकी 'बाल-लीला' या 'किशोर-कौतुक' प्रकट नहीं होता, वरन् वे एक दुष्टदमनकारी, असुर-संहारक, संतरक्षक, लोक-नायक के रूप में सामने आते हैं। सम्भवतः, हिन्दी के कृष्ण-काव्य में यह पहला ग्रंथ है, जिसमें कृष्ण के युद्धों का इतना विशदता और विस्तार से वर्णन किया गया है। सम्भवतः पहली बार इस काव्य-कृति में ही कृष्ण एक असुर-संहारक, धर्म-संस्थापक, धर्मवीर एवं युद्धवीर, लोक-रक्षक के रूप में चित्रित हुए हैं। कृष्ण के इतने विशद व्यापक चरित्र को लेकर लिखा जाने वाला भी सम्भवतः यह पहला और अकेला प्रबन्ध है। ब्रज के कृष्ण-भक्त कवियों ने तो उसके रसेश्वर रूप की रसिक लीलाओं में ही रस लिया है, वे उनकी युद्धवीरता से उत्साहित नहीं हुए। 'कृष्णावतार' की रचना युद्धोत्साह प्राप्त करने के लिए ही की गई थी, इसलिए इसमें 'युद्ध-प्रबन्ध' पर ही इतना बल दिया गया है। 'कृष्णावतार' में कवि ने कृष्ण के इस रूप को ग्रहण कर युग-चेतना के प्रति अपनी जागरूकता का परिचय दिया है। उसने युग परि-स्थितियों की माँग को पूरा करते हुए कृष्ण के युद्ध-वीर, देश और धर्म के रक्षक रूप को ही महत्त्व दिया है। कवि ने अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए एक स्थान पर लिखा भी है।[१०७]—

अवर वासना नाहि प्रभ धरम जुद्ध की चाइ (२४६१ : कृष्णावतार)

वस्तुतः, 'कृष्णावतार' के कथानक में विविध मानवीय मनोवेगों की व्यंजना हुई है। उसमें सम्बद्धता भी है और संतुलन भी। प्रवाह भी है और विविधता भी।

---

१०७. छन्द १६०० तथा १६०१ में भी कवि यही वर माँगता है कि वह संतों की रक्षार्थ दुष्टों का संहार करता हुआ युद्धभूमि में जूझता रहे।

उसमें बाल्य-जीवन का चांचल्य, कैशोर्य की अल्हड़ता, यौवन की मस्ती और प्रौढ़ता का उद्दीप्त कर्म-सौन्दर्य है। उसमें रुक्मणि-कृष्ण तथा सुभद्रा-अर्जुन के विवाहों जैसे रोचक प्रसंगों का भी वर्णन है और यह प्राकृतिक दृश्यों तथा जन्म एवं विवाहोत्सवों के वर्णन से भी गरिमायुक्त है। कृष्ण की रसमय लीलाओं एवं उत्साहपूर्ण कर्मण्यता के साथ कथानक अग्रसर होता है, पर उसमें वीर-भावना की ही प्रधानता है।

पौराणिक तत्व एवं अलौकिक घटनाएँ

'कृष्णावतार' पौराणिक प्रबन्ध है। इसलिए इसमें पौराणिकता, अतिमानवीय एवं अलौकिक तत्त्व का समाविष्ट हो जाना स्वाभाविक ही है। 'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) में एक भी चमत्कारपूर्ण अथवा अलौकिक घटना नहीं है। उसमें ऐतिहासिक यथार्थता का अवलम्बन लिया गया है, परन्तु 'कृष्णावतार' में कई स्थानों पर गंधर्व, किन्नर, यक्ष, इन्द्र, शिव, ब्रह्मा आदि भी कृष्ण की सहायतार्थ असुरों से युद्ध करने आते दिखाए गए हैं। अप्सराएँ नृत्य आदि से असुर योद्धाओं का ध्यान युद्ध से हटाकर अपनी ओर आकर्षित करती हैं और कृष्ण मृत्यु को अपने तीर पर बिठाकर शत्रुओं की ओर छोड़ते दिखाई पड़ते हैं।[१०८] यही नहीं, सभी देवता, शिव, ब्रह्मा आदि मिट्टी का पुरुष बनाकर उसमें प्राणों का संचार करते हैं और उसे अपराजय होने का वर देकर दैत्यों के संहारार्थ भेजते हैं।[१०९] इस प्रकार की अलौकिक घटनाओं का मध्ययुगीन कवियों ने अपने ऐतिहासिक प्रबन्धों में भी समावेश किया है, परन्तु 'दशमग्रन्थ' के पौराणिक प्रबन्धों में ही इस प्रकार की घटनाओं के दर्शन होते हैं, ऐतिहासिक काव्य में नहीं।

'कृष्णावतार' में कहीं-कहीं कृष्ण के अवतारत्व के प्रति आस्था एवं निष्ठा के भी दर्शन होते हैं।[११०] अन्त में कवि सांसारिक सुखों, बाह्याचारों एवं मिथ्या-डम्बरों[१११] का विरोध करते हुए भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन भी करता है[११२] परन्तु साथ ही अपने वीर-चरित्र का परिचय देते हुए कहता है कि असहाय अवस्था में बैठकर अन्याय और अत्याचार को सहते हुए भगवत्-भक्ति में लगे रहना उसे स्वीकार नहीं है। वह ब्राह्मण सुत नहीं है कि इस प्रकार अकर्मण्य बैठा रहे, वह क्षत्री-पुत्र है और उसका कर्त्तव्य है अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध

---

१०८. कृष्णावतार, १५४२-४४

१०९. वही, १६६२

११०. वही, ३६३, १५३१, १५८३

१११. वही, २४८४-८८

११२. वही, २४८४-८८

'धर्मयुद्ध' में लड़ना। इसीलिए वह अपने इष्टदेव से धर्मयुद्ध में जूझने का ही वर माँगता है, यथा—

छत्री को पूत हौं वामन को नहिं, कै तपु आवत है जो करों।
अरु अउर जंजार जितो ग्रह को तुहि तिआग कहा चित तामै धरो।
अब रीझ कै कहै हम कउ जोउ हउ बिनती कर जोर करों।
अब आउ की अउघ निदान बनै अति ही रन मैं तब जूझ मरों।२४८६

'कृष्णावतार' की रचना संवत् १७४५ (सन् १६८८) में पऊंटे में हुई थी।[113] इस समय गुरु गोबिन्दसिंह की आयु लगभग २२ वर्ष की थी। तारुण्य का जोश उनमें भरा हुआ था। अपने पिताश्री की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए वे दृढ़-प्रतिज्ञ थे और उसी के लिए यहाँ शक्ति संचय कर रहे थे। उसके साथ यहाँ कई सशक्त कवि थे जो हिन्दुओं में सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय जागरण के अभियान में अपनी काव्य-प्रतिभा से उनकी सहायता कर रहे थे। 'कृष्णावतार' इसी आन्दोलन का एक अंग था। इसके द्वारा वे कृष्ण-भक्ति का प्रचार करना नहीं चाहते थे, वरन वे दिखाना चाहते थे कि शत्रुओं के विरुद्ध वे उसी प्रकार से लड़ रहे हैं, जैसे कृष्ण असुरों के साथ लड़े थे और अपने अनुयायियों को इस 'धर्मयुद्ध' के लिए उत्साहित करने के लिए ही वे कृष्ण की वीर-कथाएँ सुनाते या सुनवाते थे।

इस प्रबन्ध में देश-काल की सीमाओं को भूल कर खड्गसिंह, अमिटसिंह, गजसिंह, धन्नासिंह, हरिसिंह, अणतसिंह, अजबसिंह आदि 'सिंह' नामधारी योद्धाओं की वीरता का निरूपण हुआ है, एवं सेरखाँ, सैदखाँ, दिलावरखाँ, दलेलखाँ, आजाइबखाँ आदि मीरों, सय्यदों, सेखों, पठानों के वध का वर्णन किया है जो कि रचनाकार के निहित उद्देश्य को ही प्रकट करता है। यहाँ अमितेस, अचलेस जैसे शत्रु-पात्र भी विद्यमान है। कवि के कल्पना-लोक पर उसका लक्ष्य इतना छाया हुआ है कि उस काल में भी वह 'सिंह' एवं 'खाँ' पात्रों की सृष्टि कर लेता है। 'सिंह' नामधारी योद्धा यद्यपि कृष्ण के प्रतिद्वन्द्वी भी हैं फिर भी उनके शौर्य, वीरता, धीरता, दृढ़ता, उत्साह, साहस, रणोल्लास आदि का ओजस्वी एवं विशद चित्रण किया गया है। केवल खड्गसिंह के युद्ध वर्णन में ३५० छन्द हैं। सभी योद्धा इन वीरों की वीरता की प्रशंसा करते हैं। कृष्ण भी उनके शौर्य-प्रदर्शन एवं साहस से मोहित होकर उनकी प्रशंसा करने लगते हैं। शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर भी उनके युद्ध कौशल एवं भयंकर प्रहारों से भयभीत होकर भाग खड़े होते हैं। प्रकारान्तर से कवि यहाँ अपने योद्धाओं की वीरता की प्रशंसा करके उनके उत्साह को ही बढ़ा रहा है।

युद्ध-कथा—'कृष्णावतार' के वर्णनों की एक विशिष्टता यह है कि कवि ने

---

११३. कृष्णावतार : २४९०

युद्ध का क्रमिक एवं पूर्ण विकास दिखाया है। यहाँ कृष्ण के जरासंध एवं शिशुपाल आदि के साथ अनेक युद्धों का पूरे ब्यौरे के साथ सजीव, विशद एवं ओजपूर्ण वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ जरासंध के साथ युद्धों में पहले कवि उनके कारणों पर प्रकाश डालता है। कंस के केश पकड़ कर भूमि पर खींचकर मारने का जो चित्रण कवि ने किया है, उससे इस तथ्य को व्यंजित किया गया है कि कवि के मन में दुष्टों, अत्याचारियों के प्रति किस प्रकार की घृणा है और उनका संहार वह किस प्रकार करना चाहता है—

केसन ते गहि कै रिप कौ धरनी पर कै बल ताहि पछार्यो ।८५१।
गहि केसन ते पटक्यों धर सो गहि गोडन ते तब घीस दयो।

कृष्ण द्वारा कंस को मार दिए जाने पर उसकी पत्नी क्षुब्ध एवं दुखी होकर अपने पिता जरासंध के पास जाकर अपने पति के कृष्ण द्वारा मारे जाने का समाचार सुनाती है, जिसे सुनकर क्रोध से उसके नेत्र लाल हो जाते हैं[११४]; और वह कृष्ण एवं बलराम को मारने का व्रत लेकर अपनी सेना एकत्रित करने में लग जाता है।[११५]

फिर कवि उसकी तैयारी और सेना की साज-सज्जा का वर्णन करता है। दूत भेज कर देश-देश से वह अपने सहायक राजाओं को बुला लेता है।[११६] हाथी, घोड़ों, रथों और पैदलों की बड़ी भारी चतुरंगिणी सेना एकत्रित करके, उसे अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सनद्ध-बद्ध कर लेता है।

इस प्रकार की शस्त्र-सनद्ध तेरह अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध के मारू बाजे बजाते हुए उसके प्रधान राजाओं ने कृष्ण पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया।[११७] प्रलय जल के समान फैली उस विशाल एवं भयंकर सेना का कवि ने आलंकारिक वर्णन किया है।[११८]

कृष्ण को दूतों से जब यह समाचार मिलता है तो वह तत्काल अपने मंत्रियों को मंत्रणा के लिए बुलाते हैं।[११९] जरासंध के इस आक्रमण से उनका वीर भाव जाग्रत हो उठता है और उससे मुकाबला करने के लिए क्रोधित होकर अपने वीरों को ललकारते हुए वे कहते हैं—

---

११४. कृष्णावतार : १०२९
११५. वही, १०३०
११६. वही, १०३१
११७. वही, १०३७, १०३९
११८. वही, १०३५, १०३६
११९. वही, १०३७-३९

तउ जदुबीर कह्यो उठि कै रिस बीच सभा अपने बल सो।
अब को बलवंड बड़ो हम मै चलि आगे ही जाइ लरै दल सो।
अपनो बल धार संहार कै दानव दूर करै सभ भूतल सो।
बहु भूत पिसाचन काकनि डाकनि तोख करै पल मे पल सो।

(वही, १०४०)

परन्तु, जरासंध भी विश्वविख्यात शूरवीर था और उसके साथ एक विशाल एवं शक्तिशाली सेना थी, इसलिए कृष्ण के किसी भी योद्धा की यह हिम्मत नहीं हुई कि उसका मुकाबला करने के लिए आगे बढ़े। कई सैनिक तो भयभीत होकर भाग जाने तक को तैयार हो जाते हैं। यहाँ कवि ने अपने सैनिक-मनोविज्ञान का भी अच्छा परिचय दिया है।[१२०] उनकी कायरता, निर्बलता एवं भय को देखकर वीर-योद्धा कृष्ण उत्तेजित हो उठते हैं और सावन के मेघों को लज्जित कर देने वाली सिंह-गर्जना करते हुए कहते हैं—

राजन चिंत करो मन में हमहूँ दोउ भ्रात सु जाइ लरैंगे।
बान कमान क्रिपान गदा गहि कै रन भीतर जुद्ध करैंगे।
जो हम ऊपरि कोप के आइ हैं ताहि के असत्र सिउ प्रान हरैंगे।

निर्भीकता, धैर्य, साहस, उत्साह, आत्मविश्वास एवं दृढ़ता से पूर्ण ये शब्द किसी भी सैनिक में नये प्राण फूंक सकते हैं; कायरों में भी अद्‌भुत साहस उत्पन्न कर देते हैं। ये कृष्ण के वीर-व्यक्तित्व को भी प्रकट करते हैं, जो अकेला ही भाई को साथ लेकर तेरह अक्षौहिणी सेना के साथ जूझने को तैयार हैं। गुरु जी भी ऐसे ही कुशल एवं साहसी सेना-नायक थे और ऐसे ही ओजपूर्ण शब्दों द्वारा अपने अनुयायियों को शत्रु-दल का धर्म-युद्ध में स्वागत करने के लिए उत्साहित किया करते थे।

अब कृष्ण अपना रथ तैयार करवा कर और उसमें कई प्रकार के अस्त्र-शस्त्र रखवाकर, कटि में निषंग कसकर तथा हलधर एवं अन्य योद्धाओं को साथ लेकर स्वयं भी उत्साह के साथ दैत्यों के विनाशार्थ युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं[१२१], और निर्भय एवं निःशंक होकर शत्रु-दल को ललकारते हुए उस पर टूट पड़ते हैं। यहाँ उनके रोष, अमर्ष, उत्साह तथा साहस आदि की भव्य व्यंजना की गई है।[१२२]

कृष्ण के तीरों की बौछार से बहुत-से योद्धा घायल हो गए। बहुत-से पैदलों को उन्होंने मार गिराया; रथियों को बेरथी कर दिया। अनेक योद्धा रण-क्षेत्र

---

१२०. वही, १०४०-४२
१२१. वही, १०४८-४९
१२२. वही, १०५०-५१

छोड़कर भाग गए। जिन्होंने भागने में लज्जा अनुभव की और फिर से सामने आकर युद्ध करने लगे वे फिर ब्रजनायक के प्रहार से जीवित घर को न लौट सके।[123] इसके पश्चात् दोनों सेनाएँ आपस में भिड़ पड़ती हैं। यहाँ योद्धाओं की मारा-मारी, प्रहार-प्रतिप्रहार, ललकार-प्रतिललकार, शस्त्र-अस्त्रों की कटा-कटी आदि का यथार्थ, ओजपूर्ण एवं सजीव चित्रण किया गया है। जब चारों ओर से योद्धा उत्साह में भर कर एवं क्रोधित होकर ललकारते हुए युद्ध में कूद पड़े तो रक्त की नदी बहने लगी। तीर मार-मार कर कृष्ण ने शत्रु के योद्धाओं के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। अनेक हाथी-घोड़े मार गिराए, रथ तोड़ दिये, कितने ही पैदल सैनिकों को ऐसे मार गिराया, जैसे सिंह मृगों का संहार करता है। इधर कृष्ण ने ऐसे प्रहार किये, उधर शत्रु-दल उन पर टूट पड़ा। हाथों में बाण, कमान, कृपाण लेकर योद्धा आपस में भिड़ पड़े और कट कर गिरने लगे। कहीं पत्तों की भाँति घोड़े एवं योद्धा कट-कट कर गिर रहे हैं। दोनों दल आपस में ऐसे भिड़ गए जैसे गंगा और यमुना का जल मिलता है—

इत ते हरि की उमड़ी प्रतना उतते उमड्यो नृप लै बल संगा।
बान कमान क्रिपान लै पान भिरे कटिगे भटि अंग पतंगा।
पत्त गिरे गजि बाज कहूं-कहू बीर गिरे तिन के कहूं अंगा।
ऐसे गए मिलि आपसि मै दल जैसे मिले जमुना अरु गंगा।

(वही, १०६४)

यहाँ दोनों दलों की भिडंत का अत्यन्त सजीव, यथार्थ, स्वाभाविक एवं संश्लिष्ट चित्रण हुआ है।

इस प्रकार के युद्ध-वर्णन इस प्रबन्ध में अन्यत्र भी मिलते हैं। विशेष रूप से द्वन्द्व-युद्ध के अनेक सुन्दर उदाहरण इस रचना में उपलब्ध हैं। कवि समान बल वाले दो योद्धाओं को आमने-सामने लाकर उनके शौर्य, साहस एवं युद्ध-कुशलता का परिचय देता है और फिर उनके क्रोध एवं रोषयुक्त होकर एक दूसरे पर विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार-प्रतिप्रहार करने का सजीव चित्र अंकित कर देता है। बलराम और कृष्ण के जरासंध के साथ द्वन्द्व युद्ध का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि "होश आने पर बलराम भी क्रोध में भारी गदा लेकर शत्रु का संहार करते के लिए उसकी ओर बढ़े। राजा ने जब बलराम को अपनी ओर आते

---

१२३. श्री जदुबीर सरासन ते बहु तीर छुटै छुटके भट घाए।
पैदल मार रथी विरथी करि सत्रघने जम लोक पठाए।
भाज अनेक गये रन ते जोऊ लाज भरे हरी पै पुनी आए।
ते ब्रिजनाथ के हाथ लगे ग्रह कउ फिर जीवत जात न पाए।।

(वही, १०५२)

देखा, तो उसका भी क्रोध बढ़ गया और वह हाथ में कमान लेकर युद्ध-हेतु सामने आ डटा। बलराम जो गदा लेकर आया था, उसे जरासंध ने एक ही तीर से काट दिया। गदा के कट जाने पर बलराम ने ढाल और कृपाण सँभाली और निःशंक होकर शत्रु पर वार करने के लिए दौड़ा। उसे आते देखकर जरासंध गरजते हुए भयंकर बाण-वर्षा करने लगा। उसने बलराम की ढाल के सौ टुकड़े कर दिये और तलवार के भी अनेक टुकड़े कर गिराए। जब कृष्ण ने देखा कि बलराम की गदा, खड्ग, ढाल आदि टूट गये हैं, तो यह सोचकर कि कहीं जरासंध बलराम को मार न दे, वह अपना चक्र सँभाल कर आगे आए और जरासंध को युद्ध के लिए ललकारा। कृष्ण की ललकार सुनकर राजा सामने आ डटा और धनुष तान कर जोर से तीर छोड़ने लगा। तब कृष्ण ने भी तीर-कमान सँभाला और खींच-खींच कर उसके छत्र पर तीर छोड़ने शुरू किए, जिससे वह खंड-खंड होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। ब्रजनाथ ने उसके धनुष को भी अपने तीरों से काट दिया। धनुष टूट जाने पर उसका क्रोध और बढ़ जाता है और वह खड्ग लेकर कृष्ण को ललकारता हुआ उसकी सेना पर टूट पड़ा। तब रण-भूमि में खड्ग से खड्ग, ढाल से ढाल ऐसे बजने लगीं मानो दावानल की ज्वाला से वन में पत्ते और तिनके चटक-पटक रहे हों।"[१२४]

यहाँ यह देखा जा सकता है कि कवि ने किस प्रकार उत्तरोत्तर तीव्र होती हुई युद्ध की स्थिति का सजीब चित्र अंकित किया है। बलराम और गजसिंह का द्वन्द्व युद्ध भी काफी सजीव और ओजपूर्ण बन पड़ा है।[१२५]

युद्ध-भूमि-- इसी प्रकार कवि युद्ध-भूमि के विकराल एवं भयानक वातावरण का भी बड़ी कुशलता से सजीव एवं यथार्थ चित्र अंकित करता है। "युद्ध-भूमि में कोई योद्धा तो घायल हुआ पड़ा है, जिससे भभक कर खून निकल रहा है, कोई क्षत-विक्षत धरा पर पड़ा है, जिसके शरीर को गिद्ध और गीदड़ नोच रहे हैं। किसी के मुख, होंठ और आँखों को काग चोंचों से कुरेद रहे हैं। किसी के हृदय से जोगिनें आंतें निकाल कर उछाल रही हैं। कोई प्राणरहित होकर पृथ्वी पर पड़ा है तो कोई सिर के बिना ही दौड़ रहा है; किसी की लोथ को हाथ में उठाकर योद्धा दूसरी ओर फेंक रहे हैं, किसी का कबन्ध ही तलवार लिए रणभूमि में घूम रहा हैं। किसी के पाँव कटे हैं, तो किसी के हाथ और किसी की कटी हुई भुजाएँ जलहीन मीन की तरह तड़प रही हैं। कहीं हाथियों की सूँड कटी पड़ी हैं, कहीं घोड़े मरे पड़े हैं। कोई योद्धा युद्ध कर रहा है तो कोई भागा जा रहा है। इस प्रकार युद्ध-भूमि

---

१२४. कृष्णावतार, १८५१-५७

१२५. वही, ११२९-३४

में हलाहली और खलबली मच रही है और वहाँ का वातावरण बहुत ही भयानक और भीषण है।"[१२६]

चित्र को अधिक भयानक बनाने के लिए कवि शोणित-सरिता में अश्व, गज, रथ आदि के खंड-खंड होकर बहने तथा भूत-प्रेत, भैरवी, योगिनी, डाकिनी, वीर-वैताल आदि के डकारने, रक्त-पान एवं नृत्य करने तथा शृगाल, काक, कंक, गिद्ध आदि के मांस नोचने का वर्णन करता है।[१२७]

जरासंध के साथ कृष्ण के प्रथम युद्ध में शत्रु सेना के कई योद्धा हताहत हुए और शेष के कृष्ण अथवा बलराम के पौरुष, साहस एवं वीरता के सामने पाँव न जम सके। कवि ने यहाँ भागती हुई सेना का भी वर्णन किया है।[१२८] जब सेना भाग कर जरासंध के पास पहुँचती है तो वह क्रुद्ध और क्षुब्ध होकर अन्य योद्धाओं को युद्ध के लिए भेजता है और इस प्रकार कृष्ण के साथ उसके अनेक युद्धों का क्रम चलता है। इन सभी युद्धों का कवि ने अत्यन्त सजीव, ओजस्वी एवं विशद चित्रण किया है। इसमें खडगेस, अमिटेस, अमितेस, गजसिंह और जरासंध आदि के युद्धों को अधिक विस्तार दिया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस प्रबन्ध में युद्ध-वर्णन केवल लोह-वर्षण तक ही सीमित नहीं है, वरन् कवि ने युद्ध-कथाओं के विकास का पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है।

इन युद्ध-वर्णनों में कवि ने दोनों पक्षों की विजय अथवा पराजय का वर्णन किया है। जहाँ शत्रु पक्ष की परास्त सेना के भयभीत होकर भागने का वर्णन है, वहाँ शत्रु-प्रहार से कृष्ण के मूर्छित होने[१२९]; उसके सैनिकों की मृत्यु[१३०] एवं भयभीत होकर भागने[१३१] का भी वर्णन किया गया है। इसी प्रकार सैनिकों के युद्ध मनोविज्ञान का परिचय देते हुए कवि ने दिखाया है कि राजा के हताहत होने पर उनका उत्साह मंद पड़ जाता है और वे भयभीत होकर भाग खडे होते हैं। अमिटेस जैसे बलशाली राजा की मृत्यु पर उसकी सेना की ऐसी ही दशा होती है।[१३२] ऐसे शूरवीर के मरने पर शत्रु दल में हाहाकार मच जाना भी स्वाभाविक

---

१२६. कृष्णावतार, १७८७-८८, १७७४-७६
१२७. वही, १८०८, १८५८, १०८०
१२८. वही, १०६९
१२९. वही, ११७३
१३०. वही, ११०७ और १२२७
१३१. वही, १०४१-४२, ११६५, १४४३-४४
१३२. वही, १२५६

ही है।[133]

'कृष्णावतार' के युद्ध-प्रबन्ध में योद्धाओं की चारित्रगत विशेषताओं का भी विशदता से निरूपण किया गया है। कवि ने कृष्ण और बलराम की शूरवीरता, धैर्य, निर्भीकता, दृढ़ता, उत्साह, आत्म-विश्वास, साहस, औदार्य एव दया आदि का तो विशदता से चित्रण किया ही है, विपक्षा दल के वीरों क शौर्य, धैर्य, दृढ़ता, उत्साह, साहस, निर्भीकता, रणोल्लास, युद्ध-कुशलता, सेना-संचालन आदि का भी खुलकर वर्णन किया है। अमिटेस, अमितस, खडगेस, जरासध, गजसिंह आदि वीरों का शौर्य प्रदर्शित करते हुए कवि ने उनकी भूरि-भूरि प्रशसा की है। खडगेस की अद्भुत वीरता का विस्तार से वर्णन करते हुए कवि ने दिखाया है कि बह्मा, शिव, इन्द्र, यक्ष, गंधर्व कोई भी उसके सामन ठहर नहीं सका।[134] "कृष्ण ने मृत्यु को बुलाकर अपने तीर पर बिठाकर उसे मारने के लिए भेजा, मगर वह भी उससे भय खाने लगी। असख्य योद्धाओं को उस अकेले न मार गिराया। अर्जुन, भीम आदि सभी पांडव भी उससे हार खा गये, उसकी अद्भुत वीरता से मोहित होकर कृष्ण भी मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशंसा करत हैं।"[135] इसी प्रकार अमिटेस के सम्बन्ध में लिखा गया है कि "जो भी उसके सामन आता है, उसे वह वीर मार गिराता है। कृष्ण भी उसक सम्मुख ठहर नहीं सके।"[136] इसी तरह गजसिंह के सम्मुख भी युद्ध में कोई नहीं ठहर सका।[137] अमिटसिंह तो ऐसा अद्भुत वीर है कि उसे काई हरा ही नही सका।[138] कृष्ण उसकी वीरता की भी अत्यधिक प्रशसा करते हैं।[139] शाक्तसिंह की वीरता की भी कृष्ण प्रशसा करते नहीं अघाते।[140] कवि ने भी योद्धाओं को ऐसे चित्रित किया है कि "वे युद्ध-भूमि में घायल होकर गिर पड़ते हैं, मगर गिर-गिर कर फिर उठ खड़े होते हैं और शत्रु को ललकारते हैं। सिर कट जाने पर कबंध ही लड़ता रहता है।"[141] वे आदर्श वीर हैं। घायल पर वे वार नहीं करते और युद्ध करना ही उनका मुख्य धर्म है। जरासंध की वीरता का आदर्श इन शब्दों में देखा जा सकता है—

---

१३३. वही, १२५६
१३४. कृष्णावतार : १३६५-१४४५
१३५. वही, १३६५-६७
१३६. वही, १२२१-३५
१३७. वही, १११८-३४
१३८. वही, १२५३
१३९. वही, ११४३
१४०. वही, १३२४-३०
१४१. वही, १००५

कहा भयो मम और के सूर हने संग्राम।
लरबो मरबो जीतबो इह सुभटनि के काम ।। (वही, १८४८)

युद्ध में लड़कर विजय पाना या मर कर वीर-गति को प्राप्त करना ही सच्चे वीर का धर्म है। भगवान कृष्ण ने 'गीता' में भी इस वीर-धर्म का प्रतिपादन किया है।

वीरता के इसी आदर्श की ओर संकेत करते हुए 'कृष्णावतार' के अन्त में कवि कहता है कि उस जीव का जीवन, धन्य है, जिसके मुख में हरि नाम है और चित्त में 'धर्म-युद्ध का उत्साह' है।[142]

गर्वोक्तियाँ—योद्धाओं के वीर-चरित्र को प्रकट करने के लिए जहाँ कवि ने उनके वीर-कर्म से उनके शौर्य, धैर्य, साहस, उत्साह, निर्भीकता आदि का प्रदर्शन किया है, वहीं उनके मन की दृढ़ता, आत्म-विश्वास, रोष, साहस आदि को व्यंजित करने के लिए उनकी उत्साहपूर्ण उक्तियों का भी उल्लेख किया है।

इस प्रकार की उत्साहपूर्ण उक्तियों का युद्ध-वर्णन में अत्यधिक महत्व है। इनमें जहाँ वीरों के उत्साह, निर्भीकता आदि की व्यंजना होती है, उनके चरित्र का प्रकटीकरण होता है, वहाँ इनसे युद्ध की गति भी तीव्र होती है, क्योंकि उनसे विपक्षी योद्धा उत्तेजित होकर युद्ध में प्रवृत्त होते हैं। रसोत्कर्ष में भी ये अत्यधिक सहायक होती हैं।

कवि ने कृष्ण-पक्ष और विपक्षी दल दोनों के योद्धाओं की वीरोक्तियों का उल्लेख किया है। कहीं-कहीं वीरों के प्रण अथवा प्रतिज्ञा का भी उल्लेख किया गया है[143], जिससे उनके दृढ़ वीर-चरित्र की झलक मिलती है।

जहाँ कवि ने दोनों पक्षों के योद्धाओं के उत्साह की व्यंजना की है, वहीं उनकी चिंता एवं भय आदि का भी वर्णन किया है। इन युद्धों में कितने ही योद्धाओं का एक सजीव एवं सशक्त चरित्र उभर कर सामने आता है। इस प्रबन्ध में कवि ने उद्धव एवं अक्रूर को भी साहसी शूरवीर दिखाया है।[144] अब तक हिन्दी साहित्य उद्धव के व्यक्तित्व से कृष्ण के संदेशवाहक के रूप में ही परिचित था। अक्रूर भी उनको जिवा लेने के लिए ही ब्रज गए थे, परन्तु यहाँ वे भी पराक्रमी योद्धा के रूप में सामने आते हैं। हिन्दी साहित्य में संभवतः सर्वप्रथम 'कृष्णावतार' में ही ये पात्र योद्धा रूप में चित्रित हुए हैं।

---

१४२. धन्न जीओ तिहको जग मैं मुख ते हरि चित्त मैं जुधु विचारै।
देह अनित्त न नित्त रहै जसु नाव चढ़ै भवसागर तारै। (वही, २४९२)

१४३. कृष्णावतार : ११४३

१४४. वही, ११६१-६२

अनुभाव—अपने पात्रों के वीर-चरित्र को और अधिक पुष्ट करने के लिए कवि उनके युद्धगत अनुभावों का भी निरूपण करता है। क्रोधित होकर जब वे शत्रु को ललकारते हैं, या युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं, तो उनके नेत्र लाल हो जाते हैं[१४५] मुख पर लाली छा जाती है, वे दांत पीसने[१४६] या होंठ काटने[१४७] लगते हैं और कुशलतापूर्वक अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से शत्रु पर द्रुतगति से प्रहार करने लगते हैं।

रस—'दशमग्रंथ' की अन्य वीर-रसात्मक रचनाओं की अपेक्षा रस-निष्पत्ति की दृष्टि से सबसे अधिक पुष्ट एवं परिपक्व उदाहरण 'कृष्णावतार' में ही मिलते हैं। यहाँ स्थायीभाव 'उत्साह' का उद्दीपन, अनुभाव एवं विविध संचारियों के संयोग से पूर्ण परिपाक दिखाया गया है। उदाहरण स्वरूप अमतेस-युद्ध का प्रसंग लीजिए —अपागेस के मारे जाने पर जरासंध अमतेस (अचलेस) को कृष्ण से युद्ध के लिए भेजता है। वह बाण, कृपाण, बरछे, परस आदि लेकर कृष्ण की सेना का संहार करने के लिए दौडता है। कृष्ण को भी वह घेर लेता है और गर्व से कृष्ण को ललकारते हुए कहता है—"तुमने रणसिंह आदि वीरों को मार गिराया है, गजसिंह और अपागेस को भी छल से तुमने मार दिया, मैं जानता हूँ कि तुम धनसिंह तथा अन्य वीरों को मारकर अपने को बड़ा वीर समझते हो, मगर इतना समझ लो कि गज तभी तक गरजता है जब तक सिंह सामने नहीं आता।"[१४८] साथ ही वह कस-कर कृष्ण पर प्रहार करने लगता है। उसके तीरों से बिधकर कृष्ण मूर्छित हो जाते हैं और जब सुध आती है तो अचलेस उन्हें फिर ललकारता है—"ठहरो, भाग कर कहाँ जाते हो; आज मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूंगा।"[१४९] उसके ये शब्द सुनकर कृष्ण क्रोध में भरकर उसके सामने रथ को ले जाकर खड़ा कर देते हैं, उस पर तीरों की वर्षा करने लगते हैं और शत्रु दल के असंख्य वीरों का संहार कर देते हैं।[१५०] अचलेस फिर सिंह-नाद करता हुआ गरजता है,[१५१] और अपनी वीरता का बखान करता है।[१५२] कृष्ण क्रोधित होकर उसे उत्तर देते हैं—"अरे मूर्ख, चिड़िया

---

१४५. 'तब ब्रिज भूखन कोप भरि बोल्यो नैन नचाई' (वही, १७०७)
१४६. 'यो सुनि के हरि की बतीयाँ भट दाँत पीस के क्रोध भरे। (वही, १७०२)
१४७. 'मार के बीर घने रन मैं बहु कोप के दाँतन ओठ चबावै।' (वही, ११६६)
१४८. कृष्णावतार, ११७२
१४९. वही, ११७४
१५०. वही, ११७५
१५१. वही, ११७६
१५२. वही, ११७७

बन में तभी तक चहकती है, जब तक बाज को क्रोध नहीं आता। तू व्यर्थ का अभिमान कर रहा है, जब मैं तेरा सिर काट दूंगा तभी तुझे पता चलेगा। अब बकवास बन्द करो और मुकाबला करो।"[१५३] अचलेस भी क्रोधित होकर उत्तर देता है, "क्यों इस प्रकार बोले जा रहे हो, कुछ लाज करो। मेरे सामने युद्ध में खड़े रहो तो जानूँ।"[१५४] यह कहकर वह फिर से तीर छोड़ने लगता है, जिन्हें कृष्ण बीच में ही काट गिराते हैं। कृष्ण भी क्रोधित होकर दामिनी की-सी तीव्र गति से शत्रु पर प्रहार करते हैं। उस दुष्ट का सीस काट कर वे पृथ्वी पर गिरा देते हैं, मानो शार्दूल ने वन में बलपूर्वक सिंह को मार गिराया हो।[१५५]

इस प्रसंग का विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि यहाँ कृष्ण आश्रय है, जिनमें दुष्टों, असुरों के संहार करने का अतुल 'उत्साह' स्थायीभाव के रूप में विद्यमान है। अमितेस आलम्बन है। आलम्बन के सामने आने पर कृष्ण का स्थायी-भाव 'उत्साह' संचेत हो जाता है और जब अमितेस शस्त्र धारण कर उनकी सेना का संहार करने लगता है तथा कृष्ण को घेर कर ललकारता है तो उसके ये उत्तेजक शब्द एवं शस्त्र-प्रहार कृष्ण के 'उत्साह' भाव को उद्दीप्त करने का कार्य करते हैं। कृष्ण उसके तीरों से मूर्छित हो जाते हैं और मूर्छा टूटने पर उसकी गर्वपूर्ण ललकार सुनकर उनमें अमर्ष, रोष, गर्व आदि संचारियों का उन्मेष होता है जो उनके 'उत्साह' को और भी उत्तेजित करते हैं और तब उनके 'अनुभाव' प्रकट होते हैं—'वे रथ को उसके सामने ले जाकर खड़ा कर देते हैं', 'उसे युद्ध के लिए ललकारते हैं', 'उस पर तीरों का वर्षा करते हैं' और 'शत्रु दल संहार का कर देते हैं।' अचलेस की गर्जना और गर्वोक्तियाँ, उनकी उत्तेजना में आहुति का काम करती हैं और वे क्रोध में भरकर कहते हैं—'जब मैं तेरा सिर काट दूंगा तभी तुझे पता चलेगा।" दोनों योद्धाओं की ललकार, प्रतिललकार से उनका उत्साह 'अमर्ष', 'रोष' आदि से युक्त होकर उत्तेजित होता जाता है और अन्त में वे चक्र से उसका सिर काट कर भूमि पर गिरा देते हैं। इस प्रकार यहाँ 'उत्साह' स्थायीभाव, अमितेस की ललकार से उद्दीप्त होकर 'अमर्ष', 'रोष', 'गर्व' आदि संचारियों से पुष्ट होता हुआ रस-रूप ग्रहण करता है और अनुभाव स्वरूप 'कृष्ण की ललकार', 'बाण-वर्षा' एवं 'चक्र-संचालन' आदि कृत्य देखे जा सकते हैं।

उत्तरोत्तर विकास प्राप्त वीर रस की सिद्धि का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ दुर्जन-असुर संहार के लिए वीरता-प्रदर्शन किया गया है, इसलिए उसमें उदात्तता भी है। देवताओं की जयजयकार का उल्लेख करते हुए कवि ने इस ओर

---

१५३. वही, ११७८

१५४. वही, ११७९

१५५. वही, ११८१

संकेत भी किया है—

धनि ही धनि कहै सब देव बड़े हरिजू भूअ भार निवार्‌यो।

(कृष्णावतार : १२१२)

कवि ने अन्यत्र भी उन्हें 'संत-सहायक', 'सब-लाइक' कहा है।[१५६] वीर रस की निष्पत्ति के ऐसे अनेक उदाहरण 'कृष्णावतार' में देखे जा सकते हैं जहाँ रस के सभी अवयव विद्यमान हैं।[१५७] अटलसिंह, गजसिंह, अरजनसिंह, अमिटसिंह, खड्गसिंह आदि के साथ युद्धों में भी वीर रस का इसी प्रकार उत्तरोत्तर विकास दिखाया गया है। जरासंध-कृष्ण युद्ध भी रस-सृष्टि की दृष्टि से उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। यहाँ कृष्ण आश्रय और जरासंध आलम्बन है।[१५८] जरासंध ने कृष्ण की सेना के अनेक योद्धा मार गिराए। यह संहार कृष्ण के 'उत्साह' को उद्दीप्त करता है। उसकी गर्वपूर्ण ललकार से अमर्ष, रोष आदि संचारी उत्पन्न होते हैं। क्रोधित होकर जरासंध पर टूट पड़ना और तीर मारकर उसे घायल कर देना 'अनुभाव' हैं। उसके घिघियाने पर उसे छोड देने में 'हर्ष', 'गर्व' आदि संचारी हैं। इस प्रकार यहाँ उद्दीपन, संचारी, अनुभाव आदि के संयोग से 'उत्साह' स्थायी-भाव रस की स्थिति को प्राप्त करता है। ऐसे स्थलों पर शत्रु सेना का भयभीत होकर भागना भी 'उत्साह' की वृद्धि में ही सहायक होता है।[१५९]

सभी अवयवों से पुष्ट वीर-रस के इतने उत्कृष्ट उदाहरण 'दशमग्रंथ' में अन्यत्र कम मिलेंगे। इन सभी युद्धों में अंगी-रस वीर ही है, सहायक रूप में रौद्र, भयानक एवं बीभत्स का भी संचरण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कृष्णावतार' एक उत्कृष्ट प्रबन्ध रचना है। उसमें शृंगार, वात्सल्य, करुण, अद्‌भुत, शान्त आदि अनेक रसों की सृष्टि हुई है, परन्तु मुख्य रस वीर ही है। वीर रस का उसमें धर्म-संस्थापन का उदात्त रूप भी है और कृष्ण-रुक्मिणी, अर्जुन-सुभद्रा आदि के विवाह-प्रसंगों में शृंगाराश्रित वीर रस का भी चित्रण हुआ है। इस प्रबन्ध में वीर-रस का युद्ध-वीर रूप ही प्रधान है। जरासंध को पकड़ कर बार-बार छोड़ देने में कृष्ण का दया-वीर रूप भी सामने आता है।[१६०] और कृष्ण द्वारा पुत्र-जन्म एवं पुत्र-पौत्र आदि के विवाहों के अवसर पर दान देने में उनकी दान-वीरता भी प्रकट होती है।

नौह कलंकी (कल्कि) अवतार—'कल्कि अवतार' भी ५८८ छन्दों का वीर-

---

१५६. कृष्णावतार, १३६९

१५७. वही, १२७८-८७, १३७१, १८४५, १८६१-६३

१५८. वही, १०२४-४२

१५९. कृष्णावतार, १०६९

१६०. वही, ११८१

रस प्रधान खण्ड-काव्य है, जिसमें आसुरी-शक्तियों पर दैवी-शक्तियों की विजय दिखाई गई है। कथा के आरम्भ में पृथ्वी पर फैले असत्य, अधर्म, अन्याय, अनाचार, अत्याचार, व्यभिचार एवं पापाचार का विस्तृत वर्णन करते[१६१] हुए कहा गया है कि "जब धरा इस प्रकार के अधर्म और पापाचार के भार से दुःखी हो गई और अपने उद्धार के लिए 'अकाल पुरुख' का ध्यान लगाकर रोने लगी,[१६२] तब आकाशवाणी हुई कि 'धर्म की स्थापना' एवं 'दीनों की रक्षा' के लिए कलियुग के अन्त में स्वयं 'अकाल पुरख' कल्कि रूप में संभल के स्थान पर अवतार धारण करेंगे और दुष्टों का विनाश करके पापाचार को समाप्त करेंगे।[१६३]

यहाँ कल्कि संभल के दुष्ट राजा और उसके सभी साथियों को मारकर धरा पर फिर से सुख, शान्ति और धर्म का राज्य स्थापित करते हैं। इस कथा का वातावरण एवं उद्देश्य भी गुरु गोबिन्दसिंह के युग के संदर्भ को ही व्यंजित करता है।

इस लघु प्रबन्ध में भी कवि ने लघु, क्षिप्रगति एवं संगीत छन्दों में अनुनासिक-युक्त व्यंजनों, संयुक्ताक्षरों, संगीतात्मक एवं ध्वनिपूर्ण शब्दों की सहायता से युद्ध का प्रचण्ड, उग्रतापूर्ण, ओजस्वी एवं सजीव चित्रण किया है। यहाँ 'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) की शैली में योद्धाओं की भिड़ंत अथवा लोह-वर्षण का ही अधिक वर्णन किया गया है तथा प्रहार-प्रतिप्रहार के अनेक उग्रतापूर्ण एवं ध्वन्यात्मक चित्र अंकित किए गए हैं।

पारसनाथ रुद्रावतार—विष्णु के २४ अवतारों के अतिरिक्त 'दशमग्रंथ' में ब्रह्मा एवं रुद्र अवतारों की कथाओं का भी निरूपण किया गया है। ब्रह्मावतारों में वीर रस नहीं है, परन्तु रुद्रावतार-कथा भी वीर रस प्रधान है। इस प्रबन्ध में ३५८ छन्द हैं और युद्धों का ओजस्वी एवं सजीव चित्रण हुआ है। एक उदाहरण देखिए—

काफी :

चहु दिस मारू सबद बजे।
गहि गहि गदा गुरज गाजी सब हट रण आन गजे।

---

१६१. निहकलंकी अवतार, १-१३६

१६२. वही, १३६-३७

१६३. वही, १३७-४१

(क) दीनन की रच्छा निमित्त कर है आप उपाइ।
परम पुरख पावन सदा आप प्रगट है आई। वही, १३९।

(ख) पाप समूह विनासन कउ कलिकी अवतार कहावहगे।
तुरकच्छि तुरंग सपच्छ बडो करि काढ़ कृपान खपावहगे।
वही, १४१।

बान कमान क्रिपान सैंहथी बाण प्रयोग चलाए ।
जानुक महामेघ बंदन ज्यों बिसिख ब्यूहि बरताए ।
चटपट चरम बरम सब बेधे सटपट पार पराने ।
खटपट सरब भूमि के बेधे नागन लोग सिधाने ।
झमकत खडग काठ नाना-विधि सैंथी सुभट चलावत ।
जानुक प्रगट बाट सुर पुर की नीके हिरदै दिखावत ।१०६।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इन अवतार-कथाओं में यद्यपि विविध मानवीय मनोवेगों की अभिव्यंजना हुई है, तथापि प्रधानता वीर-भावना (उत्साह) की ही है। 'कृष्णावतार', 'रामावतार' एवं 'कल्कि-अवतार' इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। वैसे मत्स्य, बराह, सूर्य, दत्तात्रेय आदि अन्य कथाओं में भी इन भावों की सुन्दर व्यंजना हुई है। कवि ने पौराणिक वीर-कथाओं का ओजस्वी चित्रण करके अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उनका समुचित उपयोग किया है। निर्बल और असहाय हिन्दू जनता में नया जीवन डालने के लिए तथा उनके सुप्त क्षत्रियत्व को जगाने के लिए ही ये वीर-कथाएं लिखी गई हैं। ऐसी उत्साहपूर्ण एवं साहसी कथाएँ किसी भी व्यक्ति में अपने धर्म और देश की रक्षा के लिए 'धर्मयुद्ध' का अतुल उत्साह और साहस उत्पन्न कर सकती हैं।

'कृष्णावतार' को छोड़कर अन्य सभी अवतार-कथाओं में योद्धाओं की भिड़ंत के वर्णन को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। 'चण्डी-चरित्र' में भी इसी की प्रधानता है। कारण स्पष्ट है, युद्ध-भूमि में योद्धाओं के उत्साहपूर्वक जूझने, तीक्ष्ण प्रहार-प्रतिप्रहार करने तथा उनकी गर्वपूर्ण उक्तियों या ललकार-प्रतिललकार का वर्णन ही युद्ध के लिए प्रस्तुत वीरों में उत्साह और साहस का संचार कर सकता है। कथा का ब्यौरेवार विस्तृत वर्णन रस-परिपाक की दृष्टि से भले समीचीन हो, परन्तु वह एकदम तलवार लेकर युद्ध-भूमि में कूदने के लिए तैयार नहीं करता। युद्ध-भूमि की विकरालता, भयानकता एवं भीषणता का चित्रण भी कवि इसीलिए करता है क्योंकि ऐसे वर्णन भी वीरों के उत्साह को बढ़ाते हैं। वस्तुतः, जिस उद्देश्य से ये अवतार-कथाएँ लिखीं गई थीं, उसकी पूर्ति के लिए उन्हें उपयुक्त एवं उपयोगी रूप में ढालकर प्रस्तुत करने में कवि सर्वथा सफल रहा है।

गुरु गोबिन्दसिंह की शक्ति-उपासना के प्रतीक : 'चण्डी चरित्र उक्ति विलास' एवं 'चण्डी चरित्र द्वितीय'

गुरु गोबिन्दसिंह ने जिस प्रकार 'चौबीस अवतारों' की कथा का वर्णन किया है, उसी प्रकार 'चण्डी चरित्र उक्ति विलास', 'चण्डी-चरित्र (द्वितीय)' तथा 'चण्डी दी वार' में 'मार्कण्डेयपुराण' के आधार पर चण्डी की कथा का निरूपण किया है। इन रचनाओं में उन्होंने चण्डी के मधु-कैटभ, महिषासुर, धूम्रलोचन, चंड, मुण्ड,

रक्तबीज, शुंभ, निशुंभ नाम के आठ दैत्यों से भयंकर युद्ध, उनके विनाश और देवी की विजय का अत्यन्त ओजस्वी और चित्रात्मक वर्णन किया है।

जिस प्रकार उन्होंने २४ अवतारों की वीर-कथाओं का वर्णन करके हिन्दुओं में वीरता, स्वाभिमान, निर्भीकता, उत्साह एवं साहस का संचार किया, उसी प्रकार देवी की असुर-संहारक कथाओं का ओजस्वी वर्णन करके उनके उत्साह और साहस को और अधिक उत्तेजित करने का प्रयास किया। 'चण्डी-चरित्र' में वे लिखते हैं कि "इस कथा को सुनकर कायर भी भीषण युद्ध करने लगता है—'सुने सूम सोफी लरे जुद्ध गाढ़े'(२६०)। अतः, 'चण्डी-चरित्र' में देवी के युद्धों का ही वर्णन किया गया है। वस्तुतः, ये काव्य-ग्रन्थ भक्ति-काव्य के रूप में नहीं लिखे गये हैं। वरन्, दशमगुरु ने देवी के दुष्टदमनकारी युद्धों में उसके पराक्रम और शौर्य-प्रदर्शन को अपनी युग-परिस्थितियों के परिवेश में आँका है। हिन्दुत्व और देश की उस संकटकालीन स्थिति में उसे शुद्ध 'शक्ति' के रूप में ग्रहण किया है। 'चण्डी-चरित्र' असुर-संहार (यवन अत्याचारी) के लिए भारतीय वीर-शक्ति का आह्वान करने वाला 'शक्ति-काव्य' है, जहाँ वे स्वयं देवी (शक्ति) से यह प्रार्थना करते हैं कि जिस प्रकार तुमने अधिक क्रोधित होकर शुंभ का संहार किया, उसी प्रकार संतों के सभी शत्रुओं को विकराल रूप धारण करके चबा जाओ—

जिमि संभासुर को हना अधिक कोप के कालि,
तिमि साधन के सत्र सभ चाबत जहि काल। (च० २१६)

वे चाहते थे कि प्रत्येक भारतीय देश और धर्म की रक्षार्थ खड्ग धारण करके वैसे ही उठ खड़ा हो और अत्याचारी एवं आतंकवादी शासकों को ललकारे और विनष्ट करे, जैसे देवी ने शुंभ-निशुंभ, महिषासुर आदि दैत्यों को ललकारा और विनष्ट किया था। राम, कृष्ण आदि अवतारों ने अत्याचारी असुरों का संहार करने के लिए इसी 'शक्ति' की उपासना की थी। गुरु गोबिन्दसिंह ने भी इसी 'शक्ति' की वंदना की है।

किसी देहधारी देवी की नहीं।

युद्ध-वर्णन—'चण्डी-चरित्र' में भी युद्ध के ऐसे गतिशील और ध्वनिपूर्ण चित्र ही प्रस्तुत किए गए हैं, जिनसे युद्ध की भीषणता प्रकट होती है। 'चण्डी-चरित्र उक्ति विलास' में भी यद्यपि योद्धाओं की भिड़ंत का चित्रण ही अधिक हुआ है तथापि यहाँ युद्ध-कथा के अन्य पक्षों पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। इस रचना में कवि ने युद्ध-चित्रों के अतिरिक्त असुरों के अत्याचारों से दुःखी देवताओं द्वारा देवी से अपने परित्राणार्थ प्रार्थना करने, देवी के युद्ध के लिए निकलने, असुर-सेना के प्रस्थान, शत्रु-सेना के भागने, शुंभ-निशुंभ द्वारा अपने वीरों को युद्ध के लिए भेजे जाने, शत्रुओं द्वारा अपने सैनिकों की मृत्यु पर मंत्रणा करने आदि के साथ वीरों के उत्साह, उनकी गर्वोक्तियों एवं कायरों के त्रास आदि का भी वर्णन किया

है। युद्ध में प्रयुक्त तीर, तलवार, मुगदर, त्रिशूल, गदा, बरछी आदि अस्त्र-शस्त्रों एवं शखों, घंटों, बंब आदि रणवाद्यों का भी उल्लेख हुआ है।

'चण्डी चरित्र द्वितीय' में कवि ने लघु छन्दों का प्रयोग अधिक किया है और संगीत छन्दों, टकारात्मक एवं ध्वन्यात्मक शब्दों, अनुनासिक तथा संयुक्त-अक्षरों, अनुप्रास तथा अनुकरणात्मक शब्दों के प्रयोग से युद्ध का गतिशील, उग्रतापूर्ण और ध्वनिमय चित्रण किया है। कुछ उदाहरण देखिए—

मुधुभार—

छूट्टंत बाण। झमकत क्रिपाण।
सांग प्रहार। खेलत धमार।२९।
बाहैं निसंग। उट्ठे झडंग।
तुपक तड़ाक। उट्ठत कड़ाक।३०।
बबकंत बाई। भभकंत धाई।
जुज्झे जुआण। नच्चे किकाण।३१।

संगीत भुजंगप्रायात छंद—

तागडदंग तीरं बागडदंग बाणं।
कागडदंग काती कटारी क्रिपाणं।
नागडदंग नादं बागडदंग बाजे।
सागडदंग सूरं रागडदंग राजे।४०।११७ (चण्डी चरित्र द्वितीय)

ऐसे उदाहरणों की इस रचना में भरमार है।

युद्ध-भूमि—इन रचनाओं में युद्ध-भूमि के भी कवि ने सजीव और यथार्थ चित्र अंकित किए हैं।

युद्ध के चित्रों को सजीव और चित्रात्मक बनाने के लिए अलकारो का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है। छन्द के तीन चरणों में कवि युद्ध का चित्रण करता हैं और चौथे चरण में समानांतर चित्र सामने लाकर उसे सजीव रूप प्रदान कर देता है। ऐसे प्रयोगों में उपमान योजना या तो पौराणिक घटनाओं से सम्बन्धित है या प्रकृति एवं सर्व-साधारण के व्यावहारिक जीवन से। उपमान सर्वग्राह्य, सामान्य एवं बिम्ब-विधायक हैं।

वस्तुतः, छन्दों की सरपट लय, यति-वैविध्य, संयुक्त-व्यंजन, अनुप्रास युक्त वर्ण-योजना, ध्वनिमय शब्द एवं अलंकृत शैली, तीरों की टंकार, तलवारों की झनक, डमरू की डंकार एवं शंख ध्वनि के साथ मिलकर युद्ध-भूमि के वास्तविक, यथार्थ एवं भीषण वातावरण की सृष्टि करते हैं।

वीरों का व्यक्तित्व—शुंभ-निशुंभ, रक्तबीज आदि दैत्यों के शौर्य, साहस, निर्भयता का भी कवि ने अच्छी तरह प्रदर्शन किया है। उनकी गर्वोक्तियाँ जहाँ उनके उत्साह की व्यंजक हैं, वहाँ उनका शस्त्र-संचालन एवं भयंकर लोह-वर्षण

उनके शौर्य और साहस को प्रकट करते हैं। देवी के शौर्य एवं शक्ति का तो अनेक स्थलों पर निरूपण हुआ है।

गुरु गोबिन्दसिंह ऐसी ही भारतीय वीरशक्ति को जागृत करना चाहते थे, जिससे यवन-शासक दहल उठें। इस कविता का प्रत्येक छन्द, प्रत्येक चरण, मुर्दों में भी जीवन की ज्वाला दहकाने वाला और कायरों में वीर-दर्प का संचार करने वाला है। श्रोता अथवा पाठक के अंग जोश से फड़कने लगते हैं और उनका खून उबलने लगता है।

शस्त्रनाममाला

यह एक ऐसी रचना है, जिसमें गुरु गोबिन्दसिंह के समय में प्रयुक्त होने वाले सभी अस्त्र-शस्त्रों का बिशद् वर्णन किया गया है। इसमें युद्ध के शस्त्रों का केवल विवरण मात्र नहीं है, वरन् उन योद्धाओं की वीरता का भी वर्णन है जिन्होंने युद्ध में इनका प्रयोग किया था। साथ ही इन्हें प्रयुक्त करने वाले देवताओं का भी उल्लेख किया गया है। आरम्भ में शस्त्रों का मानवीकरण हुआ है और अन्त में 'अकाल पुरुख' की भी अस्त्र-शस्त्रों के रूप में वंदना की गई है। यथा—

तुमी गुरज तुमही गदा तुम ही तीर तुफंग।
दास जान मोरी सदा रच्छ करो सरवंग।

'अकाल पुरुख' स्वयं असुर-संहारक, दुष्ट-विदारक एवं पाप-विनाशक हैं, इसलिए कवि ने अन्य रचनाओं में उनका 'असिपाणि' (रामावतार : ८६३), 'असिधुज' (चण्डी-चरित्र : ४०५), 'असिधारी' (शब्दहजारा : ४), 'ससत्रपण्णे', असत्रपाणे (जापु-५२), खड्गपाने (विचित्रनाटक २/३), खड्गधारि (वही, १/८५), बाणपाणे (वही १/८८) आदि के रूप में स्मरण किया है। इसीलिए गुरुजी के लिए भी खड्ग, असि, बाण, गुरज, गदा आदि अस्त्र-शस्त्र उपासना के केन्द्र है, क्योंकि वे भी इन्हीं की सहायता मे दुष्टों, अत्याचारियों, अधर्मियों का विनाश कर रहे थे। 'विचित्र नाटक' में उन्होंने इसीलिए खड्ग की जय जयकार की है—'जय तेगं' कहकर। 'शस्त्रनाममाला' में इनके पौराणिक महत्त्व की प्रतिष्ठा करके वे अपने योद्धाओं में इनके प्रति अनुराग और 'धर्मयुद्ध' के लिए उमंग उत्पन्न कर सके। इस प्रकार 'शस्त्रनाममाला' को भी वीर-काव्यों के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है।

निष्कर्ष—इन सभी रचनाओं के विवेचन से स्पष्ट है कि 'दशम ग्रन्थ' में संकलित सभी वीर-काव्यों में युद्ध का विस्तुत और विशद चित्रण हुआ है यद्यपि उसमें योद्धाओं की भिडंत अथवा प्रहार-प्रतिहार की ही प्रधानता है और उसका अत्यन्त ओजस्वी, उग्रतापूर्ण, प्रचंड एवं भीषण वर्णन करने में कवि पूर्ण सफल रहा है। द्वन्द्व युद्ध, दो दलों के पारस्परिक युद्ध एवं एक योद्धा के अनेक सैनिकों से जूझने के चित्रण में भी उसे पूर्ण सफलता मिली है। सेना-प्रस्थान, युद्ध-भूमि की

विकरालता, योद्धाओं की वीरता एवं शौर्य-प्रदर्शन तथा उनकी उत्साहपूर्ण उक्तियों आदि का भी सजीव चित्रण किया गया है।

युद्ध-भूमि में जूझते हुए वीरों, टकराते हुए अस्त्र-शस्त्रों, शरीर को बेधते हुए तीरों, हताहत होते हुए योद्धाओं, भीषण ध्वनि करते हुए रणवाद्यों, रक्तरंजित-भूमि, टूटते हुए खोल, ढलकते हुए ढोल, कट-कट कर गिरते हुए अगों, बिखरे हुए टोपों, कटे हुए धड़, फटे हुए सिर से बहते हुए रुधिर की छींटें, कटी हुई परन्तु फड़कती हुइ भुजाओं, रक्त और धूलि में लोट-पोट होते हुए क्षतविक्षत अश्वों, घायल चिंघाड़ते हुए हाथियों, फिसे हुए शिरस्त्राण, योद्धारहित त्रस्त घोड़ों, शस्त्रों से उठते हुए अग्नि पुंज, कराहते हुए सैनिकों, भागती हुई भीड़, घूमकर चक्कर खाकर गिरते हुए जवानों, टूटे हुए अस्त्र-शस्त्रों, मांस, मज्जा और रुधिर पर लपकते हुए काक, कंकों एवं गिद्धों, चीत्कार करती हुई डाकनियों, रुधिर पान करती हुई जोगनियो, नाचते हुए वीर वैतालों आदि का विशद वर्णन किया गया है।

युद्ध-वर्णन में प्रयुक्त होने वाले शंख, घंटा, ढोल, मृदंग, नफीरी, तबला, बंब, नगारे, परढे आदि रण-वाद्यों; बरछी, कमान, गदा, बाण, असि, कृपाण, मूसल, हल, चक्र, मुगदर, त्रिशूल, करघर, सैहथी, साँग, बरछा, शक्ति, निषंग, तुपक, तुफंग कवच, टोप आदि अस्त्र-शस्त्रों एवं हाथी, कई जातियों के घोड़ों, रथ और सिंह आदि वाहनों का वर्णन हुआ है।

इसी तरह इन युद्धों में शस्त्र संचालन की अनेक विधियों एवं युद्ध-कला की अनेक युक्तियों पर भी प्रकाश डाला गया है, जिसका उद्देश्य अपने अनुयायियों को युद्ध-विद्या से पारंगत करना था। कवि ने तत्कालीन युद्ध-विद्या की ओर कई स्थानों पर संकेत किया है। पहाड़ी राजा काठ के किले बनाकर आक्रमणकारी से लड़ते थे; युद्धों में तोप का बड़ा महत्त्व था; कई बार रात के समय आकस्मिक आक्रमण कर दिया जाता था; हाथियों से दुर्ग-द्वार तुड़वाने का काम लिया जाता था; युद्ध के समय सेनाओं के मार्ग में पड़ने वाले गाँवों को लूट लिया जाता था; युद्ध में साथ न देने वाले लोगों को अपने स्थान से निकाल दिया जाता था; लूट का माल बहुधा सैनिकों में बाँट दिया जाता था; शत्रु नगर का घेरा डाल कर भीतर के लिए मार्ग बन्द नरके उनके लिए अन्न संकट उत्पन्न कर देते थे; उस ओर जाने वाले जल-स्रोतों को या तो रोक दिया जाता था; या उसमें मुर्दा पशु फेंक कर उसके जल को खराब कर दिया जाता था—इत्यादि। कुछ स्थानों पर सैनिक मनोविज्ञान का भी अच्छा परिचय दिया गया है।

युद्ध-वर्णन के प्रसंगों में शूरवीरों के व्यक्तित्व, उनकी आकृति, डील-डौल, साज-सज्जा, वेश-भूषा, वीरता, साहस आदि के वर्णन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'दशम ग्रंथ' में युद्ध कार्य में व्यस्त योद्धाओं के व्यक्तित्व के इन सभी पक्षों का अंकन सूक्ष्मता और सजीवता से किया गया है। ऐसे स्थलों पर कवि ने निष्पक्षता

से काम लिया हैं और शत्रुपक्ष के वीरों की वीरता की भी प्रशंसा की है। उनके शौर्य, सैनिक-शक्ति, युद्ध-कुशलता, अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार आदि का वर्णन विशदता से हुआ है। इससे रचना में एक कलात्मक सौन्दर्य भी आ गया है, क्योंकि समान बल वाले योद्धाओं के युद्ध ही घोर संग्राम के रूप में सामने आते हैं और इससे वर्णन में सजीवता, स्वाभाविकता एवं ओज का उचित प्रदर्शन हो सकता है। इसी प्रकार जहाँ विपक्षी दल के कायरों के भय और उनकी पराजय का वर्णन किया है, वहाँ स्वपक्ष के वीरों की कमज़ोरियों पर भी प्रकाश डाला गया है।

'दशम ग्रंथ' के अनुसार सच्चा शूरवीर युद्ध-भूमि में हँसते-हँसते प्राणों की बलि दे देता है। ऐसा वीर वीर-गति पाकर विमानारूढ होकर स्वर्ग को जाता है और अप्सराएँ उसको वरण करती हैं। निःसन्देह, यह भावना वीरों को 'धर्मयुद्ध' के लिए उत्साहित और प्रेरित करती हैं। लेकिन, 'दशम ग्रंथ' में ऐसे भी वीर हैं जिन्हें विमानारूढ़ होकर स्वर्ग जाने की अपेक्षा रणभूमि में निरन्तर लड़ते रहना अधिक रुचिकर है। मारू बाजे उन्हें सुहावने लगते हैं और युद्धक्षेत्र उनके लिए क्रीड़ा क्षेत्र है।

ऐसे वीरों को कवि ने स्वामि-भक्ति एवं धर्म-भावना से प्रेरित होकर युद्ध-भूमि में उत्साह से लड़ते दिखाया है तथा उनके वीरोचित रणोल्लास की भी व्यंजना की है। युद्ध के लिए वे उत्कंठित दिखाई पड़ते हैं। किसी प्रतिद्वन्द्वी के न मिलने पर वे रुद्र से यही वर माँगते हैं कि कोई उनके साथ जूझने वाला हो। इन वीरों का व्यक्तित्व वहाँ और भी निखर आता है, जब वे मृत्यु उपरान्त भी युद्ध करना चाहते हैं। हाथ-पाँव कट जाने पर भी लड़ते रहते हैं, सिर के कट जाने पर कबंध ही खड्ग चलाते रहते हैं।

'दशम ग्रंथ' में वीरता के उच्च आदर्श के भी दर्शन होते हैं। शत्रु पक्ष के वीरों के मूर्छित हो जाने पर परपक्ष के वीर स्वयं उन्हें जलपान भी करवाते हैं। इतना समय देते हैं कि स्वस्थ होकर वे उनके साथ पूरी शक्ति से फिर युद्ध कर सकें।

'दशम ग्रंथ' में बहुत-से वीरों की ओजस्वी गर्वोक्तियों और जोश के साथ शस्त्र संचालन, दाँत पीसने, मुख एवं नेत्रों के लाल होने आदि 'अनुभवों' का भी यथेष्ट वर्णन हुआ है।

'दशम ग्रंथ' की यह भी विशिष्टता है कि उसमें युद्ध के गत्यात्मक चित्र बहुत मिलते हैं। युद्ध-दृश्यों को और अधिक चित्रमय एवं सजीव बनाने के लिए कवि ने चित्रमय अलंकार-योजना के रूप में अपनी बिम्ब-विधायिनी कल्पनाशक्ति से भी पूरा काम लिया है। युद्ध के गतिमय एवं ध्वनिपूर्ण दृश्यों के अनुकूल समान बिम्ब सामने लाकर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, उदाहरण आदि अलंकारों के के रूप में प्रस्तुत किया गया है, विशेष रूप से 'चण्डी-चरित्र उक्ति विलास' और 'कृष्णावतार' में उनकी प्रभावशाली एवं चित्रात्मक उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का

कमाल देखा जा सकता है। गेरू के पनारे के समान रक्त प्रवाह;[१६४] तिल के समान शत्रु को पीसना;[१६५] पृथ्वी को फोड़ कर निकलने वाले बीज की भाँति तीर का शरीर को बेंधकर निकलना;[१६६] मक्खन की मटकी फूटने पर उठने वाले मक्खन के छींटों की तरह फूटे सिर में से खून के छींटे उठना;[१६७] नक्षत्र अथवा वृक्ष के पत्ते या फल एवं कद्दू की भाँति सिर का टूट गिरना आदि अनेक ऐसे चित्र हैं जहाँ कवि ने अनूठी उपमान-योजना प्रस्तुत की है। दामिनी-सी चमक, बादल-सी गर्ज, वर्षा-सी तारों की बौछार आदि में भी प्रेषणीय उपमान देखे जा सकते हैं। पौराणिक घटनाओं, प्रकृति, वन, पर्वत, पवन, वर्षा, घन, पुष्प, वृक्ष, व्यापार, रीति-रिवाज, विवाह, होली आदि से दर्जनों बिम्ब इस ग्रन्थ मे आए हैं जो युद्ध वर्णन को सजीवता प्रदान करते हैं और रसोत्कर्ष में सहायक होते हैं।

वीररसानुकूल भाषा—भाषा पर भी कवि का असाधारण अधिकार है। भाषा मे शक्ति एवं सामर्थ्य व ओज है और शैली प्रवाहपूर्ण और प्रभावशाली है। एक कुशल जड़िया की भाँति शब्दों का चयन करके उन्हें उपयुक्त स्थान पर जड़ कर वह अनुकूल वातावरण की सृष्टि कर लेता है। उसके पास शब्दों का अक्षय भण्डार है। पंजाबी, फारसी, संस्कृत, अरबी, अपभ्रंश, डिंगल आदि के प्रचलित एवं अप्रचलित शब्दो का प्रयोग करते समय भी वह संकोच नहीं करता; यदि वे शब्द युद्ध का अभीष्ट वातावरण निर्मित करने में सहायक हों! उसकी वर्ण-योजना, अक्षर-विन्यास तथा शब्द-चयन ऐसा है कि युद्ध की गति एवं ध्वनि के अनुकूल वातावरण उपस्थित हो जाता है। आवश्यकता अनुसार कवि शब्दों के रूप या उच्चारण को विकृत करके या नये अर्थों में उनका प्रयोग कर लेता है। (असि-पाणि, खड्गकेतु, असिधुज, कालिका आदि का प्रयोग ब्रह्म के अर्थ में किया गया है)। अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने के लिए बहु-अक्षरात्मक शब्दों एवं मिश्रित विशेषणों का भी प्रयोग किया गया है (चण्डी-चरित्र द्वितीय : २४८, रामावतार : ५९६)। युद्ध वर्णन में ओजस्विता लाने के लिए अनुकरणात्मक शब्दों, अनुप्रास-युक्त वर्ण-योजना, संयुक्ताक्षरों, अनियमित अनुनासिक, टकरात्मक या रकारात्मक

---

१६४. इस सम्बन्ध में 'चंडी-चरित्र उक्ति विलास' के १६१, १६६, १८०, १९३ एवं 'कृष्णावतार' के ११०५, १३७२, १३८५, १४०५, १४११, १४१७, १४२३, १४२४, १४३०, १४३२, १४४०, १५१२, १५२०, १५४८, १५८७, १५८९, १५९७, १६०८ आदि छन्द देखे जा सकते हैं।

(ख) चंडी-चरित्र उक्ति बिलास, १८७

१६५. वही, १३३

१६६. वही, १९३

१६७. यही, १८०

व्यंजनों, ध्वनि-शब्दों एवं संगीत शब्दों का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक शब्द से युद्ध के अनुकूल ध्वनि निकलती है और तदनुरूप भाव का प्रेषण होता है। कवि ने बहुधा ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जिनसे खड्गों की खटाखट, कटारों की कटाकट, तोपों की तड़ातड़ तथा धौंसों की धुंकार सुनाई पड़ती है। शब्दों की ध्वनि युद्ध के वातावरण के अनुरूप है। प्रत्येक शब्द अपने में एक ध्वनि चित्र लिए हुए है। क्रिडडिड, ब्रिडडिड, द्रिडडिड, भ्रिडडिड, ज्रिडडिड आदि शब्द किसी विशेष अर्थ के सूचक नहीं है,[१६८] फिर भी अपनी ध्वनि से वे एक विशिष्ट वातावरण की सृष्टि करते हैं। ऐसे शब्दों से युक्त छन्दों के उच्चारण से भी युद्धोत्साह की वृद्धि होती है। वस्तुतः, कवि चित्रात्मक, बिम्ब-विधायक, ध्वन्यात्मक एवं भाव-व्यंजक शब्दों के प्रयोग में अति निपुण है।

छन्दों का भी कवि ने युद्ध की गति एवं वीररस की प्रकृति के अनुकूल कुशल प्रयोग किया है।

वस्तुतः, 'दशमग्रन्थ उदात्त वीरभाव से अनुप्राणित एक प्राणवान रचना है। जिस युग में रसिकतापूर्ण, शृंगारिक एवं चमत्कारपूर्ण काव्य रचना हो रही थी, उसी युग में वृहत्तर सामाजिक—चेतना, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक जागरण की भावना से ओतप्रोत 'दशमग्रंथ' जैसे वीररसप्रधान काव्य ग्रन्थों का लिखा जाना एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस रचना में क्षत्रियत्व का तेज और स्वाभिमान है तथा देश, धर्म एवं लोकरक्षा का भाव निहित है। इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से इतना अधिक महत्व है कि जब भी हिन्दी साहित्य के इतिहास का पुनर्मूल्यांकन होगा, तो उसकी वीर काव्य परम्परा में 'दशमग्रन्थ' का महत्त्वपूर्ण स्थान होगा। 'दशमग्रन्थ' के पश्चात् भी पंजाब में वीर काव्यों की एक समृद्ध एवं सशक्त परम्परा रही है और वीर-भावना, सांस्कृतिक-चेतना एवं काव्य-शैली की दृष्टि से 'दशमग्रन्थ' का ही उन पर अधिक प्रभाव है।

दशमग्रंथ का छन्दशास्त्र

राजशेखर ने छन्द को काव्य-पुरुष के रोम के समान कहा है। छन्द का निर्माण लयादर्श की नियमित आवृत्ति पर होता है। छन्द का मनोवेगों से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। कविता में छन्द के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति के लिए एक उपयुक्त एवं समर्थ साधन उपलब्ध हो जाता हैं और साथ ही इससे भावाभिव्यक्ति

१६८. त्रिडडिड ताजी। ब्रिडडिड बाजी।
ह्रिडडिड हाथी। भ्रिडडिड साथी।
ब्रिडडिड बाणं। ज्रिडडिड ज्वानं।
छ्रूडडिड छोरें। ज्रिडडिड जोरें। ४१२, पृ० ५९९

पर नियन्त्रण भी रखा जा सकता हैं ।

भारतीय साहित्य में छन्दों की एक समृद्ध एवं विकासोन्मुखी परम्परा रही है । वेदों के अधिकांश मंत्र छन्दोबद्ध हैं । वहाँ केवल वर्णिक संख्या अथवा अक्षर गणना के आधार पर छन्दों का स्वरूप निर्धारित किया जाता था । संस्कृत काल में अक्षर गणना के साथ गण-विभाग अथवा लघु-गुरु क्रम का भी पूर्ण निश्चय कर दिया गया और उन्हें वृत्त की संज्ञा दी गई । प्राकृत काल में इन छन्दों का प्रयोग भी होता रहा, साथ ही मात्रिक छन्दों का भी उदय हुआ। अपभ्रंश में मात्रिक छन्दों का इतना ज़ोर बढ़ा कि गोवर्धनाचार्य (आर्य सप्तशती) तथा जयदेव (गीत गोविन्द) जैसे संस्कृत के प्रसिद्ध कवियों ने भी मात्रिकों का प्रयोग किया । उस युग का अधिकांश जैन एवं सिद्ध-साहित्य इन्हीं छन्दों में रचा गया । हिन्दी में भी मात्रिक छन्दों का ही अधिक प्रयोग हुआ ।

संस्कृत महाकाव्य सर्गवद्ध होते थे और उनके एक सर्ग में एक छन्द प्रयुक्त करने का नियम था । किन्तु इस नियम का संस्कृत काव्यों में विकल्प से ही पालन हुआ है। एक 'सर्ग' में एक ही छन्द प्रयुक्त करने की परम्परा प्राकृत काल में बहुत कम रह गई। अपभ्रंश में तो यह प्रायः लुप्त ही हो गई । इस युग के जैन प्रबन्धकाव्य 'सन्धियों' में विभक्त है जिन्हें पुनः 'कड़वकों' में भी उपविभक्त किया गया है । इनमें कड़वकों का छन्द कभी सम्पूर्ण सन्धि में एक ही होता है और कभी बदल जाता है । कई-कई सन्धियों में एक ही छन्द भी चलता है और एक ही सन्धि में अनेक छन्द भी आए हैं । 'सुदसण चरिउ' (नय-नन्दी), 'सुलोचना चरिउ' (देवसेन), 'जिणिदत्त चरिउ' (पण्डित लाखू) इत्यादि चरित-काव्यों में इसी प्रकार की छन्द विविधता के दर्शन होते हैं । इसी पद्धति का विकास हिन्दी के उन रासो-काव्यों में हुआ जिनमें बहुत-से छन्दों का प्रयोग हुआ—अर्थात् छन्द-वैविध्य से युक्त रासों काव्यों में । अपभ्रंश के कड़वक-बद्ध शैली के प्रबन्धकाव्यों में प्रत्येक कड़वक के आरम्भ अथवा अन्त में 'धत्ता' या कोई अन्य छन्द होता है और फिर 'कड़वक' का विशेष छन्द चलता है। कड़वकों में अधिकतर पज्झटिका, पद्धडिया, पादाकुलक-अरिल्ल आदि १६ मात्राओं के छन्दों का प्रयोग हुआ है । धवल ने कुछ कड़वकों में चौपाई का प्रयोग भी किया है । परन्तु अन्त में 'धत्ता' दोहे का नहीं है । 'जिन प्रभसूरी' ने 'धत्ता' दोहे का दिया है, परन्तु कड़वक में चौपाई नहीं है । यशकीर्ति के 'पांडव पुराण' में दोहड़, दोधक तथा कहीं-कहीं चौपाई के भी दर्शन होते हैं । धनपाल के 'बाहुबलि-चरिउ' में 'कड़वक' के आरम्भ में भी दोहरा (दोहा) है। अपभ्रंश की इस पद्धति को हिन्दी में सूफी प्रेमाख्यानक-काव्यों की दोहा-चौपाई पद्धति के रूप में अपनाया गया और इसी का तुलसीदास ते 'राम-चरितमानस' में प्रयोग किया । तुलसी ने चौपाई के साथ दोहे के स्थान पर सोरठे का भी प्रयोग किया है, इसके बीज भी अपभ्रंश के 'प्रबन्धचिन्तामणि' में विद्यमान

हैं। एक ही छन्द के कई संधियों में प्रयुक्त करने की पद्धति का विकास उन रासो काव्यों में हुआ जो एक ही छन्द में लिखे गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी में मुख्य रूप से प्रबन्ध-काव्यों के लिए तीन प्रकार की पद्धतियों का प्रचलन हुआ—

१. छन्द विविधता वाले रासो काव्य : जैसे 'पृथ्वीराज रासो'। इस परम्परा का और अधिक विकास 'रामचन्द्रिका' में हुआ है जिसमें लगभग १०० छन्दों का प्रयोग हुआ है।

२. दोहा-चौपाई पद्धति में रचित 'पद्मावत' तथा 'रामचरितमानस' जैसे काव्य।

३. 'बीसलदेव रासो' आदि रासो-काव्य जिनमें एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है।

'दशमग्रंथ' में इनमें से प्रथम दोनों पद्धतियों के दर्शन होते हैं। उसमें छन्द-विविधता भी है और दोहा-चौपाई तथा कुछ अन्य पद्धतियों का भी प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त जिस समय 'दशम ग्रंथ' की रचना हुई उस समय हिन्दी में कवित्त एवं सवैया बहुत लोकप्रिय छन्द थे। पंजाब के साहित्य में भाई गुरुदास पहले ही बहुत अच्छे कवित्त, सवैये लिख चुके थे। अस्तु, 'दशम ग्रंथ' में इन छन्दों का आ जाना स्वाभाविक ही था। रासो की प्रसिद्ध छप्पय पद्धति को भी इसमें अपनाया गया है।

पंजाबी साहित्य में इस ससय 'वार' पद्धति का बड़ा प्रचलन था। 'गुरु ग्रंथ साहब' में अनेक वारें हैं। सिक्खमत के प्रसिद्ध व्याख्याता भाई 'गुरुदास' भी बहुत-सी 'वारें' लिख चुके थे। 'दशमग्रंथ' के कवि ने भी 'वार भगवती' को लिखकर इस परम्परा का प्रतिनिधित्व किया। सिद्धों और संतों की भाँति 'दशमग्रंथ' में शब्द और पद भी आये हैं, जिनकी 'आदिग्रंथ' में बहुलता है। 'शब्द हजारा' में रामकली, सोरठा, कल्याण, बिलावल, देवगंधारी, खियाल आदि की रचना रागों में हुई है।

इसी प्रकार 'दशमग्रंथ' में 'पउडी' का भी प्रयोग हुआ है। मध्ययुग में वीर-गाथाओं के उच्चारण के लिए चारण और भाट इस प्रकार के काव्य रूप का बहुत प्रयोग करते थे। युद्ध के अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने में इनको लय बहुत अधिक उपयोगी होती है। इसी प्रकार 'सिरखंडी' छन्द का प्रयोग भी 'दशमग्रंथ' की एक विशेषता हैं। पंजाबी का यह मुक्तक छन्द पंजाबियों की स्वतन्त्र प्रकृति का परिचायक है। गुरु गोबिन्दसिंह ने इस छन्द का प्रयोग पूर्ण कुशलता से किया है। पंजाब में उस समय फारसी साहित्य का काफी बोलबाला था, जिसकी रचना बहरों में होती थी। दशम गुरु ने फारसी के 'बहरे तबीयत पसचमी', 'बहरे मुतकारिब मुसम्मन मकसूर महजूफ' आदि छन्दों का भी सफल

प्रयोग किया। यही नहीं, फारसी कविता के लिए सवैये का प्रयोग करके एक वैशिष्ट्य प्रदर्शित किया। 'रेखता' एक विशेष काव्य शैली है, जिसमें दक्षिण की 'मणि प्रबाल' शैली की भाँति विविध भाषाओं की मणियाँ मंडित होती हैं। 'दशमग्रंथ' में इस काव्य शैली के भी दर्शन होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'दशमग्रंथ' में हिन्दी साहित्य की हर प्रमुख छन्द पद्धतियों को ही नहीं अपनाया गया, वरन् पंजाबी तथा फारसी साहित्य की प्रमुख पद्धतियों को भी स्थान दिया गया।

'दशमग्रंथ' के कर्तृत्व की समस्या बड़ी पेचीदा है। अभी तक विद्वान यह निर्णय नहीं कर पाये कि यह सम्पूर्ण ग्रंथ 'दशमगुरु' द्वारा रचित है अथवा कुछ अंश ही उनका लिखा हुआ है और शेष उनके हजूरी कवियों द्वारा लिखा गया है। यह बात तो सर्वमान्य है कि 'दशमगुरु' बड़े काव्यप्रेमी थे और उनके दरबार में कवियों का जमघट लगा रहता था। इन कवियों में बहुत-से कवि सुदूर हिन्दी-भाषी प्रदेश से आये थे और अपने साथ वहाँ की छंद-पद्धतियाँ भी लेते आये थे। पंजाबी और फारसी के कवि भी उनके आश्रय में विद्यमान थे। वे सभी अपनी-अपनी भाषा और छन्द पद्धतियों में काव्य-रचना किया करते थे। यही कारण है कि 'दशमग्रंथ' में हमें इन तीनों भाषाओं और उनकी प्रमुख छन्द पद्धतियों के दर्शन होते हैं। हम समझते हैं कि इन छन्द-पद्धतियों के समुचित अध्ययन से 'दशमग्रंथ' के कर्तृत्व की समस्या बहुत कुछ हल हो सकती है।

कहते हैं हिन्दी के प्रसिद्ध चमत्कारवादी कवि केशव का पुत्र कुरेश अथवा कुवरेश भी गुरु गोबिन्द सिंह के हजूर में रहता था। यदि यह सत्य है तो आते समय वह अपने पिता की प्रसिद्ध रचना 'रामचन्द्रिका' भी अवश्य लाया होगा। कुवरेश 'गुरु दरबार' में रहा हो या न रहा हो, 'रामचन्द्रिका' वह लाया हो या कोई और परन्तु 'दशमग्रंथ' और 'रामचन्द्रिका' के छन्दों की तुलना करने से यह निश्चय अवश्य हो जाता है कि 'दशम ग्रंथ' में कवि के सम्मुख यह रचना रही अवश्य है। छन्द-विविधता और छन्द-चमत्कार 'रामचन्द्रिका' की एक प्रमुख विशेषता है। कवि ने आरम्भ में ही लिखा है, 'रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हूँ बहु छन्द'। मानो रामकथा कहना कवि का उद्देश्य नहीं है, उसे विविध छन्दों के चौखटे में जड़कर खड़ा करना ही अभिप्रेत है। हम यह तो नहीं कह सकते कि 'दशमग्रंथ' के कवि का भी ऐसा कोई उद्देश्य था, परन्तु इतना अवश्य हैं कि उसमें छन्द-वैविध्य 'रामचन्द्रिका' से कम नहीं है। 'दशमग्रंथ' में अतिमालती (पादाकुलक), आभीर, (अहीर), अवतार (मृतगति), अडिल्ल, ऐला (डिल्ला), कलस, कुंडलिया, गाहादूजा (गाथा-प्राकृत), गीतिमालती, धत्ता (अपभ्रंश), चउबोला, चतुष्पदी, चरपट, चौपई, छप्पय, तोमर, हरिगीतिका, तिलोकी, त्रिभंगी, दोहरा, नवपदी, पउडी, पद्मावती, पद्धरि, अर्धपाधड़ी, पुनहा, बहड़ा (पुनहा), बहोडा,

बिसनुपद, बैत (बहरे मुतकारिब मुसम्मन मकसूर महजूफ), भ्रितगत (मृगगति), मकरा, मधुभार, माघा (करीरा), मोहन, मारह, मोहनी, विजया, सिरखंडी (पल्वंगम), सुखदा, सुप्रिया (डिल्ला), संगीत मधुभार, सोरठा, हरिगीता, हीर (हीरक), हंसा (हंसी), असंतर (भुजंगप्रयात), असता (किलका, तोटक), अकरा (शशिवदन, अजबा), अकबा (अजबा, तिलका, हरिबोलमना), अचकडा (स्रग-विनी), अजब (अकबा), अजा (अंजन), अनका (शशिवदना), अनहद (अकरा), अनाद, अनुभव, अनुपनराज (पंचचामर), अपूरब (अरूप, कीरा), अरूपा, अलका (कुसम बचित्रा), अडूहा (संजूता, प्रिया), अनन्त तुकभुजंगप्रयात, एक अच्छरी (इसमें कई छन्द हैं), उछला (हंसक), उगाध (यशोधरा), उटंकण (उतंगन), उतभुज (संखनारी, सोमराजी), कवित्त, किलका, कुसमविचित्र, कुमार ललित (मल्लिका), कुलका (शशिवदना), कण्ड आभूपण दोधक, क्रिपानक्रित (मधुभार), चरपट, चाचरी, चामर (सोमवल्लरी), चंचला (चित्रा), झूलना, झूला (सोम-राजी), तरनराज, तारक, तारका, तिलका, तोटक, त्रिगता, त्रिणणिण (अकरा), त्रिडका, तिलकारिया (उगाधा), नगस्वरूपणि, नगस्वरूपणी अर्ध, नराज, नराज अर्धुनराज ब्रिध, नराज लघु, नवनामक, निसपाल, पधिसटका (तोटक), पंकज-वाटिका, प्रिया, बहिर तबीतपसत्रमी (फारसी), वचित्रपद, बानतुरंगम, बेली-बिद्रम, विशेषक, बिराज, भगउती (भगवती), भडथुआ (संखनारी), भुजंग, भुजंग-प्रयात, भवानी (भगवती), मथान (मनथान), मधुरधुनि, मेदक (तोटक), मनोहर मत्तगयंद, मालती, रमान, रावणवाद, रुणझुण (अकरा), रुआमल (रुआल, सरस्वती), रेखता (मनहर कवित्त), रसाबत, समानका, सवैया, अनंततुक, सारस्वती, सुखदावृद्ध, सुन्दरी, सोमराजी, संगीत भुजंगप्रयात, संगीत नराज, संगीत पाघसटिका, संजुता (प्रिया), संखनारी, हरिकोलमना, दोहा (सुधि) आदि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, फारसी तथा पंजाबी के मात्रिक एवं वर्णिक, सम, विपम एवं मिश्र लगभग १३५ छन्दों का प्रयोग किया गया है। इन छन्दों में कुछ तो बहुप्रचलित छन्द हैं, जिनका हिन्दी के बहुत-से कवियों ने प्रयोग किया है। परन्तु, कुछ छन्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग बहुत कम कवियों ने किया है। 'रामचन्द्रिका' से तुलना करने पर विदित होता है कि ऐसे छन्द कवि ने उसी ग्रंथ से लिए हैं। दोहा, कवित्त, सवैया, चौपई, तोमर, तोटक, मोहन, मालती, सोरठा, कुण्डलियाँ, त्रिभंगी, नराज, छप्पय, भुजंगप्रयात आदि प्रसिद्ध छन्दों के अति-रिक्त 'दशमग्रंथ' में प्रयुक्त कुसमवचित्रा, कुमारललित, प्रिया, नवपदी, षटपदी, पादाकुलक, आभीर, हरिगीत, हीरक, चामर, चंचला, झूलना, नगस्वरूपणी, विशेषक, भगवती, विजया, तारक, सुखदा, मधुभार, मालती, निशिपालक, सुन्दरी, संयुक्ता, पद्मावती, पंकज वाटिका, मोदक, सोमराजी, हीरक आदि कितने ही ऐसे छन्द हैं जिनका हिन्दी में बहुत कम प्रयोग हुआ है और जो

'दशमग्रंथ' में 'रामचन्द्रिका' से ही लिये गये हैं। इनमें से बहुत-से तो 'पृथ्वीराज-रासो' या और किसी भी हिन्दी काव्य-ग्रंथ में नहीं आये। 'रामचन्द्रिका', 'दशम-ग्रंथ' के कवि के सम्मुख थी, और वह उससे प्रभावित भी था, उसके प्रमाण में हमें एक अन्तःसाक्ष्य और उपलब्ध हुआ है। 'दशमग्रंथ' में 'रामावतार' प्रबन्ध में सीताहरण के प्रसंग में राम की सहायतार्थ जाते समय लक्ष्मण रेखा का उल्लेख है। 'रामावतार' के कर्ता ने यह प्रसंग 'रामचन्द्रिका' से ही लिया है। एक बात और है, 'दशमग्रंथ' के 'चौबीस अवतारों' की पुराण-कथाओं में जितनी छन्द विविधता है, उतनी अन्य कथाओं में नहीं। लगभग १२० छन्द इन अवतार-कथाओं में आये हैं, जबकि 'अपनी कथा' में लगभग १४, 'चण्डी-चरित्र द्वितीय' में १७, 'पख्यान चरित्र' में १६ छन्दों का ही प्रयोग हुआ है। 'रामचन्द्रिका' भी पौराणिक अवतार-कथा है, उसमें भी ऐसी ही छन्द-विविधता है। दोनों ग्रंथों की अवतार-कथा में इस छन्द-विविधता की समानता एक के दूसरे पर प्रभाव की सूचक है। 'रामचन्द्रिका' की रचना संवत १६९८ में हुई और गुरु गोबिन्दसिंह की रचना काल है लगभग सं० १७६५ का, दोनों के समय में अधिक अन्तर नहीं है। इस समय तक 'रामचन्द्रिका' की काफी प्रसिद्धि हो चुकी थी। पंजाब में भी उसकी पहुँच अवश्य हो गई होगी। गुरुमुखी लिपि में रचित इसकी प्रतियाँ इसके प्रभाव एवं प्रचार की सूचक हैं। ऐसी स्थिति में हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि 'दशमग्रंथ' की छन्द-पद्धति पर सबसे अधिक प्रभाव 'रामचन्द्रिका' का पड़ा है। परन्तु, साथ ही उस पर चन्द, तुलसीदास, जायसी, सुर आदि अन्य प्रसिद्ध कवियों का भी प्रभाव है।

'दशमग्रंथ' की अवतार-कथाओं में छन्द-विविधता सबसे अधिक है। 'रामावतार' में ६८ तथा 'कल्कि अवतार' में ७० छन्दों का प्रयोग हुआ है। इन दोनों अवतार कथाओं में लगभग १२० छन्द प्रयुक्त हुए हैं। अन्य रचनाओं में छन्द-वैविध्य इतना नहीं है। उदाहरण के लिए 'जापु साहब' में चौपाई, भुजंगप्रयात, चाचरी, रुआल, भगवती, हरिबोलमना, चरपट, मधुभार, रसावल, एक अच्छरी आदि १० छन्दों का, 'अकाल उस्तति' में सवैया, तोटक, कवित्त, चौपई, तोमर, त्रिभंगी, दोहरा, निराज, पद्धरि, भुजंगप्रयात, रुआमल, लघु निराज आदि कोई १३ छन्दों का; 'बचित्र नाटक' (अपनी कथा) में सवैया, तोटक, त्रिभंगी, दोहरा, निराज, भुजंग-प्रयात, रसावल, चौपई, छप्पय, भुजंग, अरिल्ल, मधुभार, पद्धरि आदि लगभग १३ छन्दों का; 'चण्डी चरित्र' में सवैया, दोहरा, तोटक, कवित्त, सोरठा, पुनहा, रेखता आदि ७ छन्दों का, 'चण्डी चरित्र द्वितीय' में सोरठा, संगीत निराज, संगीत-भुजंग-प्रयात, संगीत-मधुभार, कुलका, चौपई, तोटक, दोहरा, निराज, विजै, बेली, विद्रुम, वृद्ध निराज, भुजंगप्रयात, मनोहर, रसावल, रुआमल, रुआल आदि १८ छन्दों का, 'मच्छ अवतार' में चौपई, त्रिभंगी, भुजंग, भुजंगप्रयात, रसावल, तोटक,

दोहरा, तोमर, वेलिविद्रम दोधक, नराज, अरिल्ल, पद्धरि, रुआमल, वृद्ध निराज, अर्धनिराज, मधुर धुन आदि लगभग २० छन्दों का और 'कृष्णावतार' में केवल १२ छन्दों का; 'पख्यान चरित्र' के ७५५८ छन्दों में केवल १६ छन्दों का (दोहा, चौपई, अरिल्ल, सवैया, भुजंग, कवित्त, सोरठा, छन्द, छप्पय, रुआल, तोमर, रुआमल, भुजंगप्रयात, नराज, तोटक) ही प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं तो केवल दो ही छन्द आए हैं। 'दशमग्रंथ' की इतनी छन्द विविधता के बावजूद, कुछ ही छन्द ऐसे हैं जिनका इस ग्रंथ में अधिक प्रयोग हुआ है, वे हैं—दोहा, सोरठा, चौपई, अरिल्ल, पद्धरि, रसावल, भुजंगप्रयात, त्रिभंगी, मधुभार, सवैया, कवित्त, तोटक, तोमर, छप्पय, नराज, विजया, चाचरी, रुआमल। इन्हीं छन्दों में से १७ का प्रयोग 'चण्डी-चरित्र' में हुआ है, १३ का 'पख्यान चरित्र' में (४०५ पख्यानों में अथवा लगभग आधे 'दशमग्रंथ' में) २४ का 'बचित्र नाटक (अपनी कथा में)। इसके अतिरिक्त 'चौबीस अवतार' कथा, 'जापु', ज्ञान प्रबोध आदि में भी ये छन्द बहुलता से आये हैं।

पंजाब में जो भी ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य बाद में लिखे गए, उनमें से 'नानक विजय' को छोड़कर, जिसमें छन्द विविधता 'दशमग्रंथ' जितनी ही है (लगभग १०० छन्द उसमें भी हैं); 'गुरु शोभा', 'महिमा प्रकाश', 'गुरु विलास' (सुक्खा सिंह), 'गुरु विलास छेवीं पातसाही', 'नानक प्रकाश', 'गुरु प्रताप सूरज' आदि में प्रायः इन्हीं छन्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। 'महिमा प्रकाश' में दोहा, चौपई, मधुभार, त्रिभंगी, तोमर, सवैया, मकरा, सोरठा, नराज, कवित्त आदि सभी छन्द 'दशमग्रंथ' के है। इसी प्रकार 'गुरुविलास' में भी दोहा, सोरठा, चौपई, अडिल, झूलना, सवैया, रुआमल, भुजंगप्रयात, रसावल, पाधड़ी, संखनारी, मधुभार, विजै, मनोहर, निराज, तोटक, भुजंग, कवित्त, तिलका आदि कोई २० छन्दों का ही प्रयोग हुआ है और वे भी 'दशमग्रंथ' से लिये गये हैं। 'गुरु प्रताप सूरज' (संतोख सिंह) इस युग की सर्वोत्कृष्ट रचना है। उसमें चौपई, हाकल, पाधड़ी, अडिल, निसानी, ललितपद, त्रिभंगी, दोहा, सोरठा, अमृतधुनि, छप्पय, चाचरी, रसावल, मधुभार, रुणझुण, हरिबोलमना, नवनामक, हसक, साबास, प्रमाणिका, तोमर, चम्पक-माला, भुजंगप्रयात, तोटक, निशिपालक, चंचला, नराज, सवैया, अनुष्टुप, कवित्त, अनंगशेखर, सिरखण्डी, बहरे मुतकारिब मसम्मन मकसूर महजूफ आदि जिन ३३ छन्दों का प्रयोग हुआ है, उनमें से चम्पकमाला, साबास, अनुष्टुप को छोड़कर सभी 'दशमग्रंथ' में आये हैं। इस विवेचन से स्पष्ट है कि 'दशमग्रंथ' का छन्द बिधान परवर्ती प्रबंधों के लिए आदर्श रहा है, परन्तु उनमें 'चण्डी चरित्र' तथा 'अपनी कथा', जितनी छन्द विविधता ही है, 'चौबीस अवतार' की सी छन्द-विविधता केवल 'गुरु नानक विजय' (संतेरण) में ही दिखाई पड़ती है।

'दशमग्रंथ' में एक ही छन्द के लिए कई-कई नामों का भी प्रयोग किया गया

है, यथा भवानी एवं भगवती, अगाध एवं तारका, तारक एवं कलका, अकरा, अनका, अनहर, शशिवदना एवं अनाद, अकबा एवं अजबा, अरूप एवं अपूरब, चरपट, हंसक एवं उछला, संखनारी एवं सोमराजी आदि छन्द एक-दूसरे के ही अनुरूप हैं। कवि ने कुछ ऐसे नामों का भी प्रयोग किया है, जो बहु प्रचलित नहीं है। हमने कोष्ठक में उनके प्रचलित नाम दे दिये हैं।

हिन्दी साहित्य में मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। रीतिकाल में आकर कवित्त एवं सवैया का प्रचार बहुत बढ़ गया था परन्तु मात्रिकों का प्रयोग भी बराबर होता गया। 'दशमग्रंथ' में भी मात्रिक छन्दों की संख्या अधिक है, यद्यपि वर्णिक छन्दों का भी इसमें प्रचुर प्रयोग हुआ है। 'दशमग्रंथ' के लगभग १८००० छन्दों में से ५५५५ तो चौपई हैं, ३१४७ दोहे, इसके अतिरिक्त अरिल्ल, पद्धरि, त्रिभंगी, सोरठा, छप्पय आदि मात्रिक छन्द भी काफी संख्या में आये हैं। सवैये केवल २२५२ हैं। इनमें से भी बहुत-से मात्रिक सवैये है। पंजाब के परवर्ती ऐतिहासिक प्रबंधों में भी मात्रिक छन्द अधिक हैं और वर्णिक कम। दोहा, चौपई, अरिल्ल, पद्धरि का प्रयोग इन सभी ग्रंथों में सर्वाधिक हुआ है। दोहे, चौपई के पश्चात् सवैये एवं कवित्त का स्थान है, तदनन्तर पद्धरि, अरिल्ल, रसावल, भुजंग-प्रयात आदि का।

पंजाब के प्रबंध काव्यों में सबसे पहले 'दशमग्रंथ' में संगीत छन्दों का प्रयोग हुआ है। इस ग्रंथ में संगीत मधुभार, संगीत छप्पय, संगीत बहड़ा, संगीत पाधड़ी, संगीत भुजंगप्रयात, संगीत नराज एवं संगीत पाधसटिका आदि अनेक संगीत छन्दों का प्रयोग किया गया है। इन छन्दों में सामान्य छन्द से नियम में तो कोई अन्तर नहीं, केवल कवि भावानुकूल वातावरण निर्मित करने के लिए अथवा छन्द में ध्वनि एवं संगीतात्मकता लाने के लिए ऐसे वर्ण, शब्दों या अनुस्वार आदि का प्रयोग करता है, जिनसे एक विशेष ध्वनि अथवा संगीत निकलता है। संगीत छन्द का एक उदाहरण देखिये—

कागड़ दंग काती कटारी कडाकं।
तागड दंग तीरं तुपकं तडाकं।
झागड दंग नागड़ दंग बागड दंग बाजे।
गागड दंग गाजी मही गज गाजे। ११२। (चण्डी चरित्र)

इन शब्दों से विशेष अर्थ भले ही न निकलता हो, परन्तु उनकी संगीत ध्वनि अवश्य ही एक विशिष्ट अर्थ की व्यंजक है। इन छन्दों का 'संगीत-छन्द' नाम उपयुक्त ही है। युद्ध की भीषणता को व्यक्त करने के लिए कवि ने ऐसे छन्दों का प्रयोग अधिक किया है। 'दशमग्रंथ' में कुछ ऐसे छन्दों का भी प्रयोग किया गया है जिनका नाम ही उनकी विशिष्ट प्रकृति का सूचक है। भडथुआ, त्रिगदा, त्रिणका, अजवा तथा त्रिडका ऐसे ही छन्द हैं। भडथुआ का अर्थ है भड़कना अथवा अत्य-

धिक उग्रता तथा त्रिडका का अर्थ तिड़कना, काँच के टुकड़ों की भाँति। युद्ध के आवेशपूर्ण उग्रता से भरे हुए वातावरण को प्रकट करने के लिए इन छन्दों का प्रयोग बहुत सार्थक सिद्ध हुआ है। त्रिडका छन्द का एक उदाहरण देखिए—

त्रिडडिड ताजी। त्रिडडिड बाजी ।
त्रिडडिड हाथी। त्रिडडिड साथी।
त्रिडडिड बाणं। त्रिडडिड ज्वानं ।
त्रिडडिड छोरें। त्रिडडिड जोरें ।

कितना व्यंजक एवं ध्वनिपूर्ण छन्द है। अश्वों, हाथियों, जवानों, तीरों के विभिन्न रूप, आकार एवं कृत्य ध्वनियुक्त होकर साकार हो जाते हैं। यह हैं 'दशमग्रंथ' के कवि की छन्द प्रयोग की कुशलता। उसकी एक विशेषता है युद्धानुरूप ध्वन्यात्मकता। ये छन्द अपभ्रंश साहित्य के अनुकरण पर लिखे गये हैं।

'दशमग्रन्थ' के युद्ध वर्णन में युद्ध की भीषणता और उत्तरोत्तर तीव्र होती हुई गति, आवेग, विविधता एवं ध्वनि को व्यक्त करने के लिए विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। उनमें अपेक्षाकृत लघु एवं क्षिप्रगति छन्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं। युद्धों का वातावरण ज्यों-ज्यों भीषण और भयावह होता जाता है, कवि लघुतर और तीव्रगति छन्दों का प्रयोग करने लगता है। दूसरे, युद्ध की एकरसता को भंग करने के लिए यहाँ छन्द विविधता भी अधिक है और छन्द बदलते भी जल्दी-जल्दी हैं। 'चण्डी चरित द्वितीय' के 233 छन्दों में 17 प्रकार के छन्द हैं और 57 बार छन्द परिवर्तन होता है। सबसे कम छन्द-विविधता 'परख्यान चरित्र' में है—कारण है विषय की एकरूपता।

'दशमग्रन्थ' में भाव अथवा प्रसंग के अनुकुल ही छन्दों का प्रयोग किया गया है। भक्ति-भावना को प्रकट करने के लिए चौपई, भुजंगप्रयात, चाचरी, रुआमल, भगवती, हरिबोलमना, मधुभार, रसावल, कवित्त, सवैया, निराज, त्रिभंगी, दोहा, तोमर, तोटक, लघुनराज जैसे छन्दों का प्रयोग किया गया है, जिनकी लय तीव्र है और जो उत्साह, वेग और उपासना की तीव्र भावनाओं को व्यक्त करने में बहुत समर्थ हैं। 'चण्डी चरित्र' वीररसात्मक रचना है इसलिए उसमें रसावल, भुजंगप्रयात, मधुभार, नराज, तोटक, बिजै, कुलक, रुआमल आदि क्षिप्रगति तथा संगीत छन्दों का अधिक प्रयोग किया गया है। 'परख्यान चरित्र' में नारी चरित्र का उद्‌घाटन विभिन्न कथाओं के माध्यम से किया गया है, जिसके लिए दोहा, चौपाई एवं सवैये को उपयुक्त समझ कर उन्हीं का अधिक प्रयोग हुआ है। इन प्रसंगों में जो अन्य भाव आये हैं, उनके अनुरूप बीच-बीच में ही अन्य छन्द आये हैं। 'बचित्रनाटक' में क्षिप्रगति वीर रसात्मक छन्दों का तथा "जापु साहब' एवं 'अकालउस्तुति' में चाचरी, एक अक्षरी,

भगवती, चरपट आदि छन्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। 'रामावतार' में कथा की विविधता है, इसलिए छन्दों में भी अधिक वैविध्य है। उसमें 66 छन्दों का प्रयोग किया गया है। युद्ध-वर्णन की भीषणता एवं तीव्र आवेग को चित्रित करने के लिए अजबा, त्रिणणिण, त्रिगदा, अनाद, रुणझुण, मधुभार, रसावल, चाचरी आदि लघु छन्दों का प्रयोग किया गया है। डॉ० हरिभजन सिंह के शब्दों में 'गुरु गोबिन्द सिंह छन्द के बाह्य आकार के निर्वाह में ही निपुण नहीं, वे उसकी आत्मा को भी पहचानते हैं। युद्ध से सम्बन्धित विविध व्यापारों, स्थितियों और आवेगों के उपयुक्त चित्रण के लिए वे अत्यन्त समर्थ छन्द का चयन कर लेते हैं। दीर्घ छन्द के अतिरिक्त तुक के प्रयोग द्वारा भी उन्हें लघु खण्डों में विभक्त करके गति तीव्र करने का प्रयास किया गया है।"[१६९] पंजाब के परवर्ती प्रबन्ध-काव्यों में भी युद्ध वर्णन में ऐसी ही छन्द-विविधता है और प्रायः इन्हीं छन्दों का प्रयोग हुआ है।

इसमें घटना एवं प्रसंग के अनुरूप छोटे-बड़े; मंदगामी तथा क्षिप्रगति छन्दों को प्रयुक्त किया गया है! छन्द परिवर्तन भी घटना अथवा घटना खंडों की आवश्यकता के अनुसार हुआ है। युद्ध-घटनाओं की गति को अनेक छोटे-बड़े छन्दों के द्वारा और युद्ध ध्वनियों को संगीत छन्दों द्वारा यथावत ग्रहण करने का प्रयास किया गया है। प्रगीतात्मक 'कृष्णावतार' में मनःस्थिति को लम्बे समय के लिए एक स्वर रखने के अभिप्राय से छन्द वैविध्य को उचित नहीं समझा गया। 'कृष्णावतार' का मुख्य छन्द एक ही है—सवैया। बीच-बीच में कवित्त, चौपई, दोहा आदि का प्रयोग हुआ है। यहाँ शृंगारिक छन्द सवैये का प्रयोग वीररस के लिए भी किया गया है और सूक्ष्म, दार्शनिक एवं भक्तिपरक भावों को व्यक्त करने के लिए भी। 'कल्कि अवतार' में भक्तिपरक छन्द हरि-बोलमना और मधुभार का प्रयोग वीररस के लिए किया गया है। इसी तरह वीर-रसात्मक छन्द भुजंगप्रयात का प्रयोग भक्ति के लिए किया गया है। परन्तु, ऐसे स्थलों पर लय भावानुरूप है और उन्हें उत्तेजित करने में सहायक ही सिद्ध हुई है और क्षिप्रगति के कारण वे उपयोगी ही रहे है, वैसे भक्ति-भावना को प्रकट करने के लिए भी इनका प्रयोग हुआ है।

'दशमग्रंथ' में चौपई छन्द का प्रयोग काफी मात्रा में हुआ है। परन्तु, यह सर्वत्र १५ मात्रा का चौपई ही नहीं है। कहीं तो यह १५ मात्रा का छन्द चौपई ही है और कहीं १६ मात्रा का चौपाई। वस्तुतः, पंजाब के हिन्दी साहित्य में चौपई एवं चौपाई का भेद लुप्त-सा हो गया है। 'दशमग्रंथ', 'गुरुशोभा', 'गुरु-

---

१६९. गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन; पृ० २११

विलास', 'महिमा प्रकाश', 'गुरु नानक विजय', 'नानक प्रकाश', 'गुरु प्रताप सूरज', 'पंथ प्रकाश', 'साहित्य सिरोमणि' आदि सभी ग्रंथों में इसे लिखा तो चौपई ही है परन्तु उसके अन्तर्गत बहुधा चौपाई का भी प्रयोग हुआ है। कई स्थानों पर तो ऐसा भी हुआ है कि एक चरण में १५ मात्राएँ हैं, शेष तीनों में १६। सम्भवतः, इसी असावधानी को देखते हुए राम सिंह ने चौपाई की १६ मात्राओं के नियम का उल्लेख किया है।[१७०] 'दशमग्रंथ' के निम्न चौपई छन्द में सर्वत्र १६ मात्राएँ ही हैं—

डमडम डम डमरू बाजे, भूत प्रेत दिसउ दिसि गज्जे।
झिम-झिम करत असन की धारा, नाचे रुंड मुंड विकरारा।

(बचित्र नाटक, १२, २२)

जैसा कि ऊपर कहा गया है 'दशमग्रंथ' में किसी निश्चित छन्द पद्धति को नहीं अपनाया गया। उसमें अनेक शैलियों का प्रयोग हुआ है। मुख्य शैली 'रामचरितमानस' एवं 'प्रेमाख्यानक काव्यों' के अनुकरण पर दोहा-चौपई की रखी गई है। 'बचित्र नाटक' (द्वितीय अध्याय) के अधिकांश में एवं 'पख्यान चरित्र' में मुख्य शैली दोहा-चौपई की है। परन्तु, कहीं भी उसमें स्थिरता एवं निश्चितता नहीं है। न ही कहीं तुलसी अथवा जायसी की भाँति चौपइयों की संख्या निर्धारित हैं। प्रायः अध्याय के आरम्भ में एक या दो दोहे आते हैं और अन्त तक चौपई चलती है, या कुछ ही छन्दों में चौपई आकर बीच में कई दूसरे छन्द आते जाते हैं। कई बार अध्याय या प्रसंग का आरम्भ ही दोहे के स्थान पर चौपई, कवित्त, सवैया, भुजंग, पद्धरि, तोटक, दोधक, रसावल, सुन्दरी, बिजै, मनोहर, तिलका, बहडा, सिरखण्डी, अडिल, गीतमालती, छप्पय, तोमर आदि छन्दों से होता है। एक, दो, चार या अधिक ऐसे छन्द आते हैं और फिर कुछ-कुछ दूर के लिए अन्य छन्द आते जाते हैं। वैसे कुछ ऐसी पद्धतियाँ हैं जिनका कुछ सीमा तक निर्वाह हुआ है। वे इस प्रकार हैं—

दोहा	—	सुखदा
दोहा	—	सवैया
दोहा	—	अडिल
दोहा	—	कवित्त
दोहा	—	भुजंगप्रयात
चौपई	—	रसावल
चौपई	—	भुजंगप्रयात
दोहा	—	छपै (छप्पय)

---

१७०. पंजाबी व्याकरण, पृ० १०१६

यहाँ हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इनमें से कोई भी पद्धति स्थिर अथवा निश्चित रूप में प्रयुक्त नहीं हुई। बीच-बीच में सर्वत्र अन्य छन्द आते जाते हैं। यह शैली अपभ्रंश की कड़वक शैली के बहुत निकट पड़ती हैं जिसमें एक धत्ता होता था और उसके साथ कड़वक का छन्द चलता था। यह धत्ता निश्चित रूप से धत्ता नामक छन्द का होना जरूरी नहीं था। हिन्दी में धत्ता का स्थान दोहे या सोरठे ने लिया। 'दशमग्रंथ' में दोहा सोरठा भी रहा और उसका स्थान नराज, पाधडी, रसावल, छप्पय आदि ने भी ले लिया। दूसरे, अपभ्रंश के काव्यों में पूरे कड़वक में उसका एक ही छन्द चलता था। 'दशमग्रंथ' में ऐसा नहीं है। आगे का छन्द अध्याय के अन्त तक भी वही हो सकता है और बीच-बीच में छन्द परिवर्तन भी हो सकता है, अथवा अन्य कई छन्द भी आ सकते हैं। इसीलिए कहा गया है कि 'दशमग्रंथ' में किसी स्थिर पद्धति का प्रयोग नहीं हुआ है। छन्द विविधता ही उसकी निश्चित पद्धति है।

पंजाब के परवर्ती ऐतिहासिक प्रबन्धों ने भी इस दृष्टि से 'दशमग्रन्थ' का ही अनुकरण किया। उनमें भी दोहा-चौपई की पद्धति प्रमुख है, परन्तु वहाँ भी चौपइयों की संख्या स्थिर नहीं है। बीच-बीच में अन्य छन्द सर्वत्र आते गये हैं। दोहा-चौपई के साथ ही 'दशमग्रंथ' के अनुकरण पर कुछ अस्थिर एवं अनिश्चित रूप में ही इन ग्रंथों में कुछ अन्य पद्धतियों का भी प्रयोग हुआ है, जैसा कि निम्न विवरण से प्रकट होता है—

गुरु नानक विजय—संतरेण

दोहा — चौपई ४/२/१-६
दोहा — कवित्त ८/१४/-१४
दोहा — नराज ९/११/१-४
दोहा — भुजंगप्रयात १९/१३/१-६
दोहा — अडिल १९/१७/१-५

गुरु प्रताप सूरज—संतोख सिंह

दोहा — हाकल रि० १/४४, रा० ४ : २८
दोहा — ललितपद रि० ६ : १२-१७
दोहा — भुजंगप्रयात रा० १ : ५३, रि० ४ : ९
दोहा — पद्धरि रि० ३ : ४, रि० २ : ३९, रा० ४ : १४
दोहा — निसानी रि० ६ : ४५, रि० ६ : ४९-५०, रि० ६ : ५५-५८
दोहा — तोटक रा० ३ : ३०

दोहा — अडिल ३ : ३४
दोहा — कवित्त रि० २ : ३७
दोहा — रसावल रा० ६ : ४१

'गुरु प्रताप सूरज' एक बृहद् रचना है। उसकी छन्द पद्धतियाँ 'दशमग्रंथ' से ही प्रभावित हैं। परन्तु, उसमें वैसी अस्थिरता नहीं है। उसमें कई जगह प्रायः सम्पूर्ण अंश (अध्याय) में एक ही पद्धति चलती है—या कई-कई अध्यायों में भी एक-सी पद्धति देखी जा सकती है।

पंथ प्रकाश

दोहा — चौपई—अधिकांश में
दोहा — पद्धरि-निवास १५
दोहा — ललितपद १६
दोहा — तोटक ४३
दोहा — रसावल ६, १०
दोहा — दुवैया १७, २९, ७०, ६६, ५३
दोहा — सवैया ६३, २६, ३९, ६५, ४६
दोहा — कवित्त ४६, १३, १०१, ११०
दोहा — निसानी ४४, ४५, ५३, ८१

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अपभ्रंश के अनुकरण पर दोहा-चौपाई के अतिरिक्त अन्य बहुत-सी पद्धतियों का 'दशमग्रंथ' में प्रयोग हुआ, परन्तु उनका स्वरूप अस्थिर-सा रहा। आगे के प्रबन्धों में 'दशमग्रंथ' के अनुकरण पर उन्हें कुछ निश्चित एवं स्थिर रूप में प्रयुक्त किया गया। 'अंशु', 'निवास' अथवा 'अध्याय' का आरम्भ प्रायः दोहे से हुआ और सम्पूर्ण अध्याय अरिल्ल, रसावल, निसानी, भुजंगप्रयात, कवित्त, सवैया, ललितपद आदि में लिखा गया। यद्यपि बीच-बीच में अन्य छन्द भी बराबर आते रहे, तथापि 'दशमग्रंथ' की-सी विविधता उनमें नहीं है। इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पंजाब की छन्द-पद्धति को छन्द-वैविध्य का रूप प्रदान करने में 'दशमग्रंथ' का ही मुख्य हाथ है।

'दशमग्रंथ' की छन्द रचना सर्वथा दोष रहित नहीं। मात्रा अथवा वर्ण-संख्या में घटा-बढ़ी होना तो साधारण बात है। कई स्थानों पर यति तथा लय में भी शिथिलता है। वस्तुतः, 'दशमग्रंथ' में छन्द प्रयोग स्थिर और सुनिश्चित नहीं है, उसमें कई स्थानों पर अस्थिरता एवं पंगुता है। बहुत-से छन्दों में शास्त्रीय नियमों की उल्लंघना एवं उपेक्षा की गई है। कहीं-कहीं दो यगण के छन्द को ही भुजंगप्रयात लिख दिया है। (पत्र संख्या ४) तरनराज दो चरणों का ही पूर्ण छन्द बन गया है (कल्कि अवतार : ३२)। चाचरी में ३ से ५ वर्ण तक तथा रसावल

में ६ से ९ वर्ण तक आ गये हैं, ८ मात्राओं के छन्द को 'सुखदा' नाम दे दिया गया है जबकि इसमें २२ मात्राएँ होती हैं। हरिबोलमना के दो सगण के नियम में भी शिथिलता आ गई है। कई छन्दों में प्रवाह की कमी है। लय की पूर्णता के लिए बहुधा शब्दों को विकृत करके पढ़ना पड़ता है। 'दशमग्रंथ' से प्रेरणा प्राप्त परवर्ती प्रबन्धों में ऐसी शिथिलता एवं अस्थिरता के दर्शन नहीं होते। 'गुरु प्रताप सूरज' इस दृष्टि से बहुत ही परिपक्व रचना है। 'दशमग्रंथ' में छन्द शिथिलता भी कहीं-कहीं ही है, सर्वत्र नहीं। क्या यह तथ्य इस ग्रन्थ के विभिन्न रचयिताओं की ओर संकेत नहीं करता ?

परिशिष्ट—१

नामानुक्रमणिका

अकबर ११७
अक्रूर १६६
अजामिल ६३
अणीराय १२०
अब्दाली १२१
(गुरु) अमरदास ४७, ४६, १२२
अमृतसर ४६, ५०
(गुरु) अर्जुनदेव ४७ से ५४, ५६, ६१, ६३ से ६७, ७० से ७६, ७६, ८१, ८४, ८६, १२२
अलफखां १५८
अलीकलंदर १८
आनन्दपुर ११८, ११६, १५७, १५८
आलवार २४
उद्धव १६६
ऐमनाबाद ६, २४
औरंगजेब ८८, ११७, १५१
(गुरु) अंगद देव १२२
कबीर ११, १३, २० से २७, २६, ४५, ५०, ५१, १४५
कुतबन १३१
कुतुबुद्दीन काकी १७
काशी २२
कृष्ण ११७, ११६ १८५
कुरेश-कुवरेश १६४
केशव १६४
खुसरो ४८
गज़नवी १२१, १५५
गणिका ६१
गंगाशरण २६
(भाई) गुरुदास २६, ४७, ५०, १६३
गुरदित्त सिंह (ज्ञानी) २१, २३, २६
(गुरु) गोबिन्द सिंह १०, २४, ५०, ८७, ८८, ६०, ११६ से १२५, १२७, १२६, १३०, १३१, १३३, १३४, १३६, १४० से १४५, १४७ से १५१, १५३, १५४, १५६, १५७, १५६, १६०, १६७, १६८, १७२, १८४, १८५, १८७, १६३, १६४, १६६, २००
गुरु गोबिन्द सिंह फाउंडेशन ८६
गोइंदवाल ४७
गोवर्धनाचार्य १६२
गोविन्द त्रिगुणायत २६
गौरी १२१
चंगेजखां ११५
चन्द (चन्दबरदाई) १६६
चन्दूशाह ४८

चन्द्रबली पांडेय २६
चमकौर १२३
चिंतामणि ११४
जगन्नाथ जी १४
जगन्नाथ पुरी ३६
जयदेव ५०, ५१, १६२
जहाँगीर ४८
जायसी १३१, १६६, २०१
जिनप्रभसूरी १६२
(ज्ञानी) जैलसिंह जी ८८
तुलसीदास ६, ११४, १६२, १६६, २०१
(गुरु) तेगबहादुर १०, ५०, ८६ से ६३, ६५, ६६, ६८, १०१, १०५, १०६ से ११५, १५१
तैमूर १२१
त्यागमल ८७
दशमगुरु १६४
दादू १२३
दिल्ली ४७, ४८, ८६, ८७, ११७
देवसेन १६२
धनपाल १६२
धन्ना ५०, ५१
धवल १६२
नंददास १६८
नयनंदी १६२
नादौन ११६, १५८
(गुरु) नानकदेव ६ से २६, ३१ से ३८, ४२ से ४७, ५१, ८८, ६६, १०१, १०७, ११७, १२२, १२४, १२५, १४४, १४५
नामदेव ५०
निजामुद्दीन औलिया १७
नीरू नीमा २२
पउंटा १६३
पंजाब १८, ३२, ३३, १२५, ११५ १६१, १६३, १६६, १६७, १६६, २००, २०१, २०३
परमानंद ५०, ५१
परशुराम चतुर्वेदी ३५
पलटू १३
पीपा ५०
पेशावर ४६
पंडित लाखू १६२
पैंदेखाँ ८७
प्रिथीचंद ४७
फरीद १८, १६, ५०, ५१
बगदाद १८, २०
बचित्र सिंह १२१
बनवारी ११४
बलदेव प्रसाद मिश्र ६५
बलराम ११६
बाबर ६, २४
बाबा बुड्ढा ५०
बिहारी ११४
बेनी ५०, ५१
भंगानी ११६, १५७, १५८
भीखन २०, ५०, ५१
भीमचंद १५८
मंकब १३१
मक्का १३
मतिराम ११४
मरदाना ३१
महादेव ४७
मियांमीर ४६
मीराबाई २०
मुइनुद्दीन चिश्ती १७
मुर्तज़ाखां ४८

मुलतान १८
मैकालिफ ५०
मोहन ५०
यशकीर्ति १९२
रविदास २०, ५०, ५१
राजशेखर ३१, १९२
रामचन्द्र शुक्ल २६
(गुरु) रामदास ४७, ४९, १२२
रामकुमार वर्मा २६
रामप्रसाद त्रिपाठी २६
रामानंद २०, २३, ५०, ५१
रामसिंह २०१
रुकनदीन १८
लक्ष्मीचंद १२२
लाहौर ४७
वफन ४६
वहवालहक १८
शमस तबरेज़ १८
शाह शरफ १८
शिवाजी १५१
शेख चिश्ती १७
श्याम सुन्दरदास २६
श्रीचंद १२२
संतोख सिंह १०, १५, १६, १७, १८, २७, ३३, ३४, ५०, ८६, ८८, ९१, ११९, १९७, २०२
संतरेण १९७, २०२
सधना २०, ५०, ५१
सरमद ८९
सिकन्दर लोधी २४
सिंध १८
सुक्खासिंह १९७
सुन्दरदास २६
सुलतानपुर ३०
सूर—सूरदास २०, ५०, १६७, १६८, १९६
सेन ५०, ५१
सेनापति ८८, ९०, १२१
(गुरु) हरगोबिंद ४७, ४८, ८६, ८७, ११७
हरभजन सिंह १४८
हरिद्वार १३
हीर १२०
हेमकूट ११७
त्रिलोचन ५०, ५१

परिशिष्ट—२

ग्रंथानुक्रमणिका

अकाल उस्तुति १२५, १२६, १२७, १३१, १३३, १४१ से १५२, १५४, १९६, १९९

अकाल स्तोत्र १३४

अध्यात्म रामायण १६३

अरहंतदेव अवतार-कथा १३२, १६१

आदि ग्रंथ २७, ४९, ५०, ५१, ५२, ९५, १२५, १२६, १२७, १३०, १४१, १४३, १९३

आर्य सप्तशती १९२

आसा दी वार २७, २९

इतिहास गुरु ग्रंथ साहिब २१, २६

उत्तररामचरित् १६३

कच्छ-अवतार कथा १६१

कबीर ग्रंथावली २६

कबीर चरित २६

कबीर दर्शन २६

कबीर मंसूर २६

कबीर साहित्य की परख ३५

कल्कि अवतार—निहकंलकी अवतार-कथा १६१, १८२, १८३, १८४, १९६, २००, २०३

कवितावली ११४

काली सहस्रनाम स्तोत्रं १३४

कृष्णावतार १०, ११८, ११९, १२६, १३१, १३२, १३३, १६१, १६७, १७० से १८२, १८४, १९०, १९७, १९७, १९९, २००

गरब गंजनी २७, ३३

गरीबदास की वाणी २६

गीत गोविंद १९२

गुरु ग्रंथदर्शन १४९

गुरु ग्रंथ साहिब १८, २०, २१, २६, २७, ५०, ७२, १२३, १३०, १४५, १९३

गुरु नानक विजय २२, १९७, २०१, २०२

गुरु प्रताप सूरज ५०, ८७, ८८, ९०, ९१, ११९, १९७, २०१—२०४

गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन १४८, २००

गुरु बिलास ९०, १९७, २००, २०१

गुरु विलास छेवीं पातसाही १९७

गुरु शोभा ८८, ९०, १२१, १९७, २०२

गोरखबानी १७
चण्डी चरित ८४, ११८, १२५, १५२, १५३, १८५, १९०, १९६, १९८
चण्डी चरित उक्ति बिलास १९०
चण्डी दी वार ११५, १५२
चौबीस अवतार कथा १२५, १२६, १३२, १५२, १५३, १६०, १६१ १९६, १९७
चन्द्र अवतार कथा १३२
जन्मसाखी १८
जपुजी २७, २९, ३२, ३४, १३४, १४५
जफरनामा ११७, १५२
जापु साहिब १२५, १२६, १२९, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १५१, १५२, १८७, १९६, १९७, १९९
जालन्धर अवतार कथा १३२, १६१
जिनिदत्त चरिउ १९२
तुरवारी २९
तुजके जहाँगीरी ४८
तुलसी दर्शन ९५, ९६
दत्तात्रेय अवतार कथा १८४
दशमग्रंथ ८८, १२५, १२६, १३१, १५१, १५२, १५८, १५९, १६०, १६९, १७०, १७१, १८०, १८७-१८९, १९१, १९३-२०४
दुर्गादिनाम स्तोत्र १३४
दुर्गा अवतार कथा १६१
धनंतरण अवतार कथा १३२
नर नारायण अवतार कथा १६१
नृसिंह अवतार कथा १६१
नानक वाणी १९
नानक प्रकाश १०, १९७, २०१
पउम चरिउ १६३
पृथ्वीराज रासो १९३, १९४
पख्यान चरित १२५, १५२, १९६, १९७, १९९, २०१
पद्म पुराण १६१
पद्मावत १९३
पंजाबी व्याकरण २०१
पंथ प्रकाश २०१, २०३
परचियां आनंददास २६
पांडव पुराण १९२
पारसनाथ अवतार कथा १३२, १८३
प्रबन्ध चिंतामणि १९२
बचित्र नाटक ८७, ८८, ११६, १२५, १२६, १३३, १३४, १४२, १५१ से १५४, १५७, १८७, १९६, १९७, १९९, २०१
बारहमासा २७, २९, ३२, ५२
बावन अखरी ५३, ५५, ७० से ७४
बीसलदेव रासो १९३
बाहुबलि चरिउ १९२
बीजक २६
ब्रह्मवैवर्त पुराण १६१
ब्रह्माण्ड पुराण १६१
ब्रह्मावतार कथा १२६
बावन अवतार कथा १३२, १६१
बौद्ध (बुद्ध) अवतार कथा १६१, १८४
भ्रमरगीत १६९
भविष्य पुराण १६१
मच्छावतार कथा १६१, १९६
मत्स्य अवतार कथा १९४
मनु अवतार कथा १३२, १६१

महिमा प्रकाश २२
मार्कण्डेय पुराण १६१, १८४
रुद्रावतार कथा १६, १३२
रामचरितमानस ६, १६३, १६२, १६३, २०१
रामचंद्रिका १३३, १६३-१६६
रामावतार १२६, १३२, १५५, १६१ से १६७, १८४, १८७, १६०, १६६, १६६
वार भगवती १६३
वाल्मीकि रामायण १३१, १६३
वाल्मीकि रामायण भाषा १५
विष्णु सहस्रनामस्तोत्रं १२६, १३४
शब्द हजारा १२६, १६३
शस्त्रनाममाला ११७, १२५, १५२ १८७
शिव पुराण १३१
शिवसहस्रनाम स्तोत्रं १३४
शेष शय्या अवतार-कथा १३२
श्याम स्तोत्रं १३४
श्रीमद्भगवद्गीता २६, ६५, ११७, ११८, १४१
श्रीमद्भागवत पुराण १६१
श्रीमुखवाक सवैये १२५, १२३, १५२
सर्वे आफ इंडिया २६
साखियां २१, २२
साहित्य शिरोमणि २०१
सिद्ध गोसटी २७, २८
सुखमनी ५३, ५६, ५७, ५८, ३१, ६२, ६५, ६६, ६७, ७३, ८०, ८१, ८४, १४३
सुदसण चरिउ १६२
सुलोचना चरिउ १६२
सूर सागर १६७, १६६
हनुमान नाटक १३१
हरिदास महाराज की वाणी २६
हरिवंश पुराण १३१
हाजरनामा १८
हिन्दी साहित्य का इतिहास २६
ज्ञान प्रबोध १२५, १२६, १५२, १६७

□□

लेखक परिचय

- गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी की अमूल्य साहित्य-निधि के अग्रणी अन्वेषक/अनुसन्धाता; समीक्षक, चिन्तक, लेखक तथा मध्ययुगीन साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् डॉ० जयभगवान गोयल (जन्म : ३०.६.१६३१, छछरौली —हरियाणा) के पच्चीस शोधात्मक ग्रन्थ पंजाब, पंजाबी, कुरुक्षेत्र विश्व-विद्यालयों, पंजाब भाषा-विभाग, गुरु गोविन्दसिंह फाउंडेशन, हरियाणा साहित्य अकादमी आदि संस्थाओं द्वारा प्रकाशित।
- देश की सभी प्रतिष्ठित शोध-पत्रिकाओं, विश्वकोश, आकर-ग्रन्थों तथा समीक्षा-ग्रन्थों में शताधिक शोध-पत्र प्रकाशित।
- राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के लगभग पचास सेमिनारों में शोधपत्र-वाचन।
- हरियाणा सरकार, हरियाणा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पंजाब हिन्दी अकादमी, शिरोमणि गुरु-द्वारा प्रबन्धक कमेटी, श्री गुरु सिंध-सभा, दिल्ली गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी आदि संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत-सम्मानित। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय 'हू-इज-हू' में उल्लेख।
- अनेक साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्बद्ध।
- सम्पादित प्राचीन काव्य-ग्रंथ (विस्तृत भूमिकाओं सहित)—

  १. गुरुशोभा २. जंगनामा गुरु गोबिन्दसिंह ३. गुरु गोबिन्दसिंह का वीरकाव्य ४. संक्षिप्त गुरु प्रताप-सूरज ५. वार अमरसिंह ६. गुरुविलास ७. गुरु नानक प्रकाश (दो भाग) ८. गुरु प्रताप सूरज (पहला भाग) ९. संक्षिप्त गुरु प्रताप सूरज (पंजाबी) १०. हरियाणा साहित्यकार निदेशिका ११. हरियाणा : पुरातत्त्व, संस्कृति एवं साहित्य। (प्रकाश्य)

- प्रमुख शोधात्मक ग्रन्थ

  १. 'गुरु प्रताप सूरज' के काव्य-पक्ष का अध्ययन २. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-साहित्य ३. गुरु गोबिन्दसिंह : विचार और चिन्तन ४. वीरकाव दशमेश ५. मध्ययुगीन काव्य : नया मूल्यांकन ६. रीतिकाल का पुनर्मूल्यांकन ७. गुरु तेग बहादुर : चिन्तन और कला ८. सूफी दरवेश शेख फरीद और उनका काव्य ९. साहित्य-चिन्तन १०. महा-कवि भाई संतोखसिंह और उनका काव्य ११. महाकवि भाई संतोखसिंह : जीवन ते रचना (पंजाबी) १२. संत साहित्य : नये आयाम